CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आ. 20

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा. २०५६

नं० १२८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

कवि और काव्य

सा. २०५६

(संस्कृत तथा प्राकृत के कवियों तथा उनकी रचनाओं का प्रामाणिक वर्णन)

लेखक—

आचार्य बलदेव उपाध्याय

एम० ए० साहित्याचार्य

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

सम्पादक—

हजारी प्रसाद द्विवेदी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक—
गिरजाशङ्कर वर्म्मा
अभिनव-भारती-ग्रंथमाला
१७१-ए, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

८91 2105
७११

१९४७ ई०
प्रथम बार
मूल्य ३)

मुद्रक—
रुलियाराम गुप्त
दी बंगाल प्रिंटिंग वर्क्स,
२१, सिनागाग स्ट्रीट, कलकत्ता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा. २०५६

कैलासवासिनी

प्रिय पुत्री

वसुमती देवी

की

पुण्य स्मृति में

सप्रेम समर्पित

—बलदेव उपाध्याय

—०*०—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय सूची

—::००::—

विषय — पृष्ठ

(क) काव्य

१—संस्कृत भाषाकी महत्ता १
संस्कृत काव्योद्यान २
२—कविचर्या ३
काव्यहेतु ४
प्रतिभा ५
कविसृष्टि ७
कवि वेशभूषा ८
कवि निवास ९
दिनचर्या ११
कवि विभाग १२
आलोचक १३
३—सूक्ति-संग्रह १५
मुक्तक के भेद १५
मुक्तक काव्य १६
सूक्ति साहित्य १६
४—संस्कृत कविताकी विशेषता १९
माधुर्य २०
अनुप्रास २२
श्लेष २३
स्वभावोक्ति २४
कल्पना २५
सौकुमार्यवर्णन २८
५—महाकाव्यका विकास ३४
रसमय पद्धति ३५
अलंकृत शैली ३८

(ख) कवि

६—आदि कवि वाल्मीकि ४२
'कवि' का अर्थ ४३
रामायणमें मुख्य रस ४५
रामायणमें गृह-चरित्र ४७
रामचरित्र ४८
वैदेही चरित्र ५१
७—कालिदासकी एक उपमा ५३
विचारणीय प्रश्न ५५
साहित्य परम्परा ५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय	पृष्ठ
८—कालिदास और शिक्षण समस्या	५६
शिक्षण प्रकार	५७
शिक्षक	५९
विद्यार्थी	६०
शिक्षाका उद्देश्य	५१
९—कालिदासकी राष्ट्रीय वाणी	६३
अखण्ड भारत	६४
राष्ट्र मंगल	६५
'राजा' की व्युत्पत्ति	६६
१०—कालिदासकी अध्यात्म-भावना	६८
शिवका स्वरूप	६८
त्रिमूर्ति	६९
योग विधि	७१
अद्वैतवाद	७२
११—कालिदासका सन्देश	७३
विश्व मंगल	७४
आशावाद	७५
धर्म तथा काम	७६
आदर्श समाज	७७
यज्ञ	७८
दान	७९
तप	८०
आर्य संस्कृतिके साधन	८१
,, सन्देश	८३
१२—बाणभट्टके काव्यगुरु	८४
बाण का परिचय	८५
गुरुका नाम	८६
भर्वुकी ख्याति	८७
भर्वुके पद्य	९०
१३—दण्डीकी अवन्ति-सुन्दरी कथा	९३
भारवि और दण्डी	९४
भारवि का परिचय	९६
दण्डी का वृत्त	१००
दण्डी का काल	१०२
दण्डीके ग्रन्थ	१०५
पूर्व कवि प्रशंसा	१०७
शूद्रक	१०९
भास	१०९
सेतुबन्ध	१०९
कालिदास	११०
नारायण	११०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय			पृष्ठ

बाण-मयूर	१११
कथाका परिचय	१११
१४—कविराज धोयी	११३
पवनदूतके संस्करण	११४
पवनदूतका काल	११४
कविराज	११६
ग्रन्थ	११८
समकालीन कवि	११८
जयदेव	१२०
कथाका महत्त्व	१२१
आलोचना	१२२
धोयी और कालिदास	१२४
१५—व्येङ्कटाध्वरि	१२६
कविका वृत्त	१२७
धार्मिक विचार	१२९
ग्रन्थ-परिचय	१३०
लक्ष्मी-सहस्र	१३१
आलोचना	१३२
१६—संस्कृतकी कवयित्रियाँ	१४१
(१) विज्जका	१४२
(२) सुभद्रा	१४९
(३) फल्गुहस्तिनी	१५१
(४) मोरिका	१५२
(५) इन्दुलेखा	१५४
(६) मारुला	१५५
(७) विकट नितम्बा	१५६
(८) शीला भट्टारिका	१५८
(ग) आलंकारिक	
१७—उद्भट भट्ट	१६१
प्रसिद्धि	१६१
देश	१६२
समय	१६३
ग्रन्थ	१६४
भामह विवरण	१६५
अलंकार सार-संग्रह	१६७
भामहसे सादृश्य	१६८
भामहसे वैलक्षण्य	१६९
विशिष्टतायें	१७०
१८—शिंग भूपाल	१७२
समय	१७४
१९—आशाधर भट्ट	१७६
दो आशाधर	१७७
जीवन चरित्र	१७८
समय	१७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय	पृष्ठ
ग्रन्थ	१८१
कोविदानन्द	१८१
त्रिवेणिका	१८२
अलंकार दीपिका	१८५
अद्वैत विवेक	१८७
प्रभापटल	१८८
(घ) पाली-प्राकृत	
२०—पाली रामायण	**१८६**
दशरथ जातक	१८९
जातकका काल	१९०
जातकका अनुवाद	१९२
विवेचना	१९७
बौद्धोंमें रामकथा	२०१
२१—वाल्मीकिके प्राकृत सूत्र	**२०३**
त्रिविक्रम	२०३
लक्ष्मीधर	२०५
सिंहराज	२०५
सूत्रोंका कर्त्ता	२०६
शम्भु रहस्य	२१०
२२—अपभ्रंश-साहित्य	**२१२**
भविसयत्तकहा	२१२
कुमारपाल प्रतिबोध	२१२
उपदेशसतरंगिणी	२१३
सुपासनाह चरित्र	२१३
संयममञ्जरी	२१३
महद्त्त	२१४
अप्रभंशमें खण्डकाव्य	२१६
अप्रभंशमें महाकाव्य	२१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्तव्य

कई महीनों की अव्यवस्थित छपाई के अनन्तर 'कवि तथा काव्य' नामक यह ग्रन्थ साहित्य प्रेमियों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। इस ग्रन्थ में मेरे संस्कृत, पाली तथा प्राकृत से सम्बन्ध रखने वाले लेखों का संग्रह है। संस्कृत हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं की जननी है, परन्तु उसकी सुषमा तथा सौन्दर्य की समीक्षा की ओर आज भी हमारी कुम्भकर्णी निद्रा का अवसान नहीं हो पाया है। संस्कृत-साहित्य विशाल तथा व्यापक है। उसके अनुशीलन से हमारी भाषा की समृद्धि बढ़ेगी, यह कथन पुनरुक्तिमात्र है। इस साहित्य का हिन्दी के द्वारा परिचय देने का उद्योग मैं अनेक वर्षों से करता आ रहा हूँ। इस दिशा में यह मेरी छठीं पुस्तक है। 'संस्कृत कवि चर्चा' में संस्कृत के उच्चकोटि के महाकवियों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन है जिसमें उनके जीवन चरित, समय, ग्रन्थ के विवरण के साथ उनकी चुनी हुई सूक्तियाँ भी संकलित हैं। 'संस्कृत वाङ्मय' में देववाणी में निबद्ध साहित्य का संक्षिप्त परन्तु प्रामाणिक विवेचन है। 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' वस्तुतः विवेचनात्मक इतिहास है जिसमें वेद, पुराण, इतिहास, काव्य, नाटक, अलंकार आदि का वर्णन ऐतिहासिक पद्धति से पुंखानुपुंख रूप से किया गया है। 'आर्य संस्कृति के मूलाधार' नामक ग्रन्थ वैदिक, बौद्ध और जैन मतों के धार्मिक साहित्य का व्यापक समीक्षण है। हमारी संस्कृति निगमागम मूलक है। वह निगम—वेद तथा आगम-तन्त्र के ऊपर आश्रित है, परन्तु इन दोनों स्तम्भों का परिचय साधारण जनों को कौन कहे, शिक्षित जनों को भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं है। इसी कमी की पूर्ति इस ग्रन्थ के द्वारा की गई है। 'आचार्य सायण और माधव' नामक ग्रन्थ वेद के भाष्यकार का विस्तृत समीक्षण है। साथ ही साथ वेदार्थपद्धति का विशिष्ट इतिहास भी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ भी इसी परम्परा के अन्तर्भुक्त है। यह उपर्युक्त ग्रन्थों का पूरक ग्रन्थ है। इसके चार भाग हैं—काव्य, कवि, आलंकारिक और पाली-प्राकृत। काव्य विभाग में प्रथम पाँच लेख हैं जिनमें संस्कृत कविता की विशिष्टता तथा महाकाव्य के विकास का पर्याप्त वर्णन है। 'कवि चर्या' ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कवि के लिए आवश्यक निवास, वेशभूषा, दिनचर्या के विषय में संस्कृत आलंकारिकों के विचारों का यहाँ एकत्री-करण है। 'कविविभाग' में वाल्मीकि तथा कालिदास के काव्य की विविध दृष्टि से समीक्षा की गई है। कालिदास की प्रतिभा की परीक्षा अभी तक समुचित रीति से नहीं हो पाई है। हमारे इतिहास के प्रेमी पण्डित कालिदास के समय-निरूपण में ही अभी तक उलझे हुए हैं। ज्यों-ज्यों वे इसे सुलझाना चाहते हैं त्यों-त्यों यह उलझता जाता है। आज हमारे लिए कालिदास के सन्देश की आवश्यकता है, ऐतिहासिक छानबीन की नहीं। भारतीय सभ्यता कालिदास के काव्यों में हम से बोलती है और उनके नाटकों में अपना भव्य रूप दिखलाती है। ऐसे महनीय कवि की इतनी विस्तृत समीक्षा इस विभाग की विशिष्टता है। संस्कृत साहित्य के मान्य स्त्री कवि-जनों का संक्षिप्त वर्णन इस विभाग में किया गया है जो अनेक दृष्टियों से महिलाओं की साहित्यिक प्रतिभा का पर्याप्त परिचायक है।

आलंकारिक विभाग में उद्भटभट्ट के ग्रन्थों तथा सिद्धान्तों की विशिष्ट समीक्षा है। उद्भट काश्मीर के विशिष्ट आलंकारिक थे और आद्य आलं-कारिक आचार्य भामह के 'अलंकार 'सम्प्रदाय' के उन्नायक थे। शिंगभूपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'रसार्णवसुधाकर' नामक नाट्यग्रन्थ के रचयिता हैं तथा आशाधर भट्ट 'त्रिवेणिका' जैसे वृत्तिविषयक ग्रन्थ के कर्त्ता हैं। इस विभाग में उद्भटभट्ट का समीक्षण विशेष उपादेय तथा व्यापक हुआ है।

'पाली-प्राकृत' विभाग में तीन लेख हैं और तीनों नितान्त रोचक और महत्त्वपूर्ण हैं। रामचन्द्र का पावन चरित्र बौद्धों में 'दशरथ जातक' के द्वारा विशेष विख्यात है। भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की कथायें 'जातक' के नाम से प्रसिद्ध हैं और दशरथ जातक उनमें अन्यतम है। कतिपय पश्चिमी विद्वानों की सम्मति है कि यह बौद्ध कथा वाल्मीकि रामायण की रामकथा से पुरातन है। इसका इस लेख में भरपूर खण्डन किया गया है। दूसरे लेख में वाल्मीकि एक विशिष्ट प्राकृत व्याकरण के रचियिता सिद्ध किये गये हैं। ये रामायण के कवि से नितान्त भिन्न हैं। अन्तिम लेख 'अपभ्रंश साहित्य' के विषय में है। अपभ्रंश का साहित्य विस्तृत तथा महत्त्वशाली है, परन्तु उसके ग्रन्थरत्न अभी तक अप्रकाशित ही पड़े हैं। प्रकाशित ग्रन्थों के संक्षिप्त परिचय से ही हमने यहाँ सन्तोष किया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में साहित्य तथा भाषा के प्रेमियों के लिए अनेक ज्ञातव्य सामग्री पहिली वार प्रस्तुत की गई है। मुझे पूरा विश्वास है कि इसके अनुशीलन से पाठकों के मनोरञ्जन के साथ-साथ ज्ञान की भी किञ्चित् वृद्धि अवश्य होगी।

इन साहित्यिक लेखों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने के लिए मेरे अनुज पं० कृष्णदेव उपाध्याय एम० ए० शास्त्री ने बड़ा आग्रह किया तथा उत्साह दिखाया। इसके लिए उन्हें आशीष। पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के कारण यह पुस्तक इस अभिनव ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रही है। एतदर्थ उन्हें धन्यवाद। पुस्तक के प्रूफसंशोधन में मेरे चिरञ्जीवी पुत्र गौरीशंकर उपाध्याय एम० ए० बी० टी० ने मेरी बड़ी सहायता की है। इसके लिए उन्हें मेरा आशीर्वाद।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस ग्रन्थ को मैं अपनी दिवंगता पुत्री **वसुमती देवी** की पुण्य स्मृतिमें अर्पित कर रहा हूँ। वह शील की जीती जागती प्रतिमा थी—स्वभाव इतना सरल तथा मधुर था कि एक बार भी परिचित होने वाला व्यक्ति उसे भुला नहीं सकता था। उसके उदार हृदय में सहानुभूति की धारा प्रवाहित होती थी। पढ़ने-लिखने में विशेष तेज तथा चतुर थी। स्वभाव से उसमें संकोच की विशेष मात्रा थी। दूसरे के चित्त को दुखाना वह जानती ही न थी। काव्यकला से विशेष स्नेह था। उसके चले जाने से आनन्द का एक सोता ही सूखा सा प्रतीत हो रहा है। पिता की अपेक्षा उसकी माता के हृदय पर उसके वियोग से गहरी ठेस लगी है। उसीकी पुण्यस्मृति में यह ग्रन्थ समर्पित है।

हिन्दू विश्वविद्यालय
काशी
१०-१०-४७

—बलदेव उपाध्याय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक द्वारा सम्पादित
तथा
रचित पुस्तकें:--

हिन्दी-ग्रन्थ:—

(१) भारतीय दर्शन
(२) बौद्ध दर्शन
(३) धर्म और दर्शन
(४) आचार्य सायण और माधव
(५) आचार्य शंकर
(६) संस्कृत साहित्य का इतिहास
(७) आर्य संस्कृति के मूलाधार
(८) संस्कृत वाङ्मय
(९) संस्कृत कविचर्चा
(१०) रसिक गोविन्द
(११) वैदिक कहानियाँ

संस्कृत-ग्रन्थ:—

(१२) भारत-नाट्यशास्त्र
(१३) काव्यालंकार
(१४) शंकर दिग्विजय
(१५) नागानन्द नाटक
(१६) सायण वेद भाष्य-भूमिका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपक्रम

राजकीय-संस्कृत ... पुस्तकालय

संस्कृत भाषा की महत्ता

संस्कृतभाषा संसार-भर की भाषाओं में श्रेष्ठ है। यदि इस भूमिवलय पर कोई भाषा सबसे प्राचीन होने की अधिकारिणी है, तो यही हमारी संस्कृत भाषा ही है। इस भूमण्डलपर आज-कल अपनी उच्च सभ्यता पर गर्व करनेवाली जातियाँ जब जङ्गलों में घूम-घूमकर केवल अंग-संकेत से अपने मनोगत भावों को व्यक्त किया करती थीं तथा शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति किया करती थीं, उस समय अथवा उस समय से भी किसी बहुत प्राचीन अतीतकाल में हमारे पूजनीय पूर्वज आर्य लोग इसी देववाणीके द्वारा सरस्वती नदी के किनारे भगवान् की विभूतियों की पूजा में रहस्यमयी ऋचाओं का सस्वर उच्चारण किया करते थे तथा आध्यात्मिक जगत् की विकट समस्याओं को सुलझाया करते थे। संसारके सर्व-प्रथम ग्रन्थ तथा हमारे धर्म-सर्वस्व वेद भगवान् इसी गौरवमयी गीर्वाणवाणी में आराधनीय ऋषियोंके द्वारा भगवान् की आन्तरिक प्रेरणा से दृष्ट हुए थे। अध्यात्म की गुत्थियों को सुलझानेवाले तथा मानव-मस्तिष्क के विकाश की चरम सीमाको निदर्शन करनेवाले उपनिषद्-ग्रन्थ भी इसी भाषा में अभिव्यक्त किये गये हैं। इस पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक का विस्तृत तथा विविध इतिहास प्रस्तुत करनेवाले पुराणों की रचना इसी सुन्दर भाषा में की गई है। आर्यों की प्राचीन रीतियों, रूढ़ियों तथा परम्पराओं की प्रशस्त तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन उपस्थित करने वाले धर्म-शास्त्रों को निर्मिति भी इसी भाषा में हुई है। सारांश यह है कि लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक निःश्रेयससिद्धि के साधन जितने ज्ञान–विज्ञान हैं, जितने कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड हैं, जितने शास्त्र–पुराण हैं, उन सबके अवगत करने का उपाय इसी संस्कृतभाषा के द्वारा है। एक वाक्यमें हम कह सकते हैं कि परा तथा अपरा विद्याओंका यह निधान है—यह उनके ज्ञान प्राप्त करनेका श्लाघनीय साधन है। ऐसी है हमारी परममहनीया विद्वज्जन-माननोया सौभाग्य-शोभनीया संस्कृत-वाणो।

संस्कृत-काव्योद्यान

इस समय हमें संस्कृतिके उपरिनिर्दिष्ट विभागों की ओर न जाकर उसके परम कोमल विभाग—काव्य विभाग— की ओर दृष्टि-निक्षेप करना है। यह वह विभाग है, जो सहृदयों की हृदय-कली को खिलानेवाला है, अमृत की वर्षा करनेवाला है, आनन्दरस को बरसानेवाला है। अहा! संस्कृति का काव्योद्यान भी कितना अभिराम है। यहाँ कितने सरस-सुमन भीनी-भीनी गन्ध से रसिकोंका मानसोल्लास कर रहे हैं; कितनी लोनी-लोनी लताएँ मलयानिल को मधुर स्पर्श की शीतलता से उन्मादित होकर हर्ष से नाच रही हैं। इस कमनीय काव्य-वटिका में कहीं **कालिदास** आम्रमञ्जरी की तरह रसभरो सरसता-पगी सूक्तियों के द्वारा श्रृङ्गार का मजा चखा रहे हैं, तो कहीं **भवभूति** अपनो भावमयी भव्य-नव्य रचनाओं के द्वारा पवित्र प्रेम की अभिव्यक्ति कर परम मङ्गल-मय आदर्श की सृष्टि कर रहे हैं। कहीं **भारवि** अपने अर्थ–गौरव से भरे काव्य के द्वारा प्रतापी अर्जुन के पाशुपत अस्त्र पाने की कथा सुना रहे हैं, तो कहीं **माघ** अपने पद-लालित्य-पूर्ण महा-काव्य के द्वारा भगवान् ब्रज-चन्द्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नन्द-नन्दन के विविध विचित्र चरित्र सुनाकर सदस्यों का सतत मनोरञ्जन कर रहे हैं। कहीं **बाणभट्ट** अपने सरस मसृण गद्य-काव्य के द्वारा त्रिलोक-सुन्दरी कादम्बरी को कमनीय कथा सुना-सुनाकर लोगों को मत्त बना रहे हैं, तो कहीं **आचार्य-दण्डी** दस कुमारों की आश्चर्यमयी आख्यायिकाओं से सहृदयों के हृदय में अद्भुत रस का सतत सञ्चार कर रहे हैं। कहीं **अमरुक** कवि अपने मनोहर 'सततरसस्यन्दी' 'प्रबन्धायमाण' मुक्तकों के द्वारा शृङ्गार की ललित लीलाभङ्गियों का भावमय चित्र खींच रहे हैं, तो कहीं **जयदेवजी** अपनी कोमल कान्त पदावली के द्वारा सरस मानस में वृन्दावनचन्द्र की सुचारु चन्द्रिका छिटकाते हुए अद्भुत अध्यात्म रहस्यों की अभिव्यञ्जना करते हुए मधुररस की वर्षा कर रहे हैं। कहाँ तक कही जाय, इस सुभग वाटिका की मनोमुग्धकारिणी रमणीयता। इसे चतुर मालियोंने नेह से सींचकर हरा-भरा बनाया है, कमनीय क्यारियाँ काट-काटकर इसे खूब उपजाया है, बड़ी दक्षता के साथ अनावश्यक काँट-कुशोंको काटकर स्वच्छ किया है; मृदुल-मञ्जुल बनाया है, कमनीय-रमणीय किया है; सरस-सुभग उपजाया है। उद्यान है अवश्यमेव अवलोकनीय; उपवन है सचमुच सेवनीय, वाटिका है वास्तव में विचरणीय—ऐसा है संस्कृत का रमणीय काव्योद्यान; ऐसी है मनोरम संस्कृत की कवि-जन-कमनीया काव्य-वाटिका !

* * * *

(२)

कवि-चर्या

संस्कृत-काव्योपवन का सामान्य दृश्य कतिपय पंक्तियों में ऊपर दिखलाया गया है। अब यह देखना है कि जिन्होंने इस उपवन को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शोभा वृद्धि की है, इसके सौन्दर्य-सम्पादन का स्तुत्य कार्य किया है, उनकी शिक्षा-दीक्षा कैसी होती थी, किस प्रकार के खाद से उनके काव्यका अंकुर पनपता था; किस वातावरण में उनकी कवित्व-लता लह-लही होती थी तथा भाव-सुमनों की प्रचुर प्रचुरता परिलक्षित होती थी। इस विषय का विचार हमारे यहाँ 'कवि-शिक्षा' कहलाता है और अलङ्कार शास्त्र के ग्रन्थोंमें बड़ा-बहुत सर्वत्र इसका वर्णन पाया जाता है। इसके ऊपर स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं; परन्तु सबसे सुन्दर और रोचक वर्णन उपलब्ध होता है कविवर **राजशेखर** की **'काव्यमीमांसा'** में। इस अनूठे ग्रन्थ के बहुत-से अधिकरण थे; परन्तु अभी तक 'काव्य-रहस्य' नामक एक ही तथा पहला अधिकरण मिला है तथा गायकवाड़-प्राच्यमाला में प्रकाशित हुआ है।

काव्य-हेतु

कविता के कौन-कौन से उपकरण हैं? इस विषय में आलङ्कारिकों में गहरा मतभेद है। कोई प्रतिभाको कविका सर्वप्रधान बतलाता है, तो कोई व्युत्पत्ति को ही एक मात्र उपकरण मानता है; परन्तु वही मध्य मार्ग ठीक है, जो इन दोनों के समुचित समन्वय को ही सच्चा साधन स्वीकार करता है। ध्वन्यालोक के रचयिता **आनन्दवर्धन** दोनों में प्रतिभा को श्रेष्ठ मानते हैं; **'मंगल'** नामक प्राचीन आलंकारिक व्युत्पत्ति पर मुग्ध हैं; परन्तु **राजशेखर** प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति दोनों का साथ-रहना आवश्यक बतलाते हैं।

प्रतिभा है ईश्वरीय दान। यह है कवि की वह भीतरी शक्ति जमो उसके जन्म के साथ-साथ भगवत् की कृपा से उसे प्राप्त हुई है, अथवा जो अत्युत्कट तपस्या के फल से किसी देवता के विशेष प्रसाद से जन्म के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पीछे भी आविर्भूत हुई है। **आनन्द** का कथन है, कि व्युत्पत्ति के न होने से जो दोष काव्य में होते हैं, उन्हें प्रतिभा ढक लिया करती है। अतः वही श्रेष्ठ है। प्रतिभा की आवश्यकता सब स्वीकार करते हैं; वह तो एक प्रकार से आवश्यक ही है। Poeta nascitur, non fit (कवि पैदा होते हैं, गढ़े नहीं जाते) [Poets are born, not made—इस लैटिन कहावतका भी यही अर्थ है कि कवि-प्रतिभा जन्म-गत होती हैं, व्युत्पत्ति से साध्य नहीं। यह पक्ष है बहुत ठीक; लेकिन इसी को सब मान लेना उचित नहीं। हीरा स्वभावसे ही—जन्म से ही—हीरा है; परन्तु खान से निकालने पर उसमें वह चमकाहट कहाँ, वैसी लावण्य कहाँ, जो उसे खराद पर चढ़ाने से प्राप्त होती है। हीरा होते हुए भी वह संस्कार के पहले मलिन है। संस्कार से उसमें चमक आती है, संस्कार से उसमें मनोहरता आती है, संस्कार से उसमें बहुमूल्यता आती है। अतः संस्कार को बड़ी आवश्यकता होती है। इसके लिये अध्ययन की बड़ी जरूरत है। विद्या और उपविद्या का ज्ञान उसके लिये अवश्य करना चाहिए। काव्यविद्या चार हैं—नाम तथा धातु का परायण (व्याकरण), कोश, छन्दःशास्त्र तथा अलङ्कारशास्त्र। उपविद्याएँ हैं, चौसठों कलाएँ। इनका अध्ययन करना उसे अवश्य चाहिए। अच्छे कवियों की उसे संगति करनी चाहिए; देशवार्ता का ज्ञान करना चाहिये; विदग्धवाद, लोकयात्रा, विद्वद्गोष्ठी तथा पुरातन कवियों के निबन्ध ये काव्य की माताएँ हैं। राजशेखर ने आठ **'काव्यमातरः'** का नाम निर्देश किया है—स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्कथा, बहुश्रुतता, स्मृतिदृढ़ता, तथा अनिर्वेद (उत्साह)। ये काव्य के उत्पादक तथा पोषक हैं। लोक तथा शास्त्र का परिचय सदा कवि को प्राप्त करना चाहिए। इससे कवि को व्युत्पत्ति प्राप्त होती है। ऐसी कौन विद्या है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कौन कला है, कौन शास्त्र है, जिसका ज्ञान कवि को न चाहिए। इसीलिए आलोचकों ने आश्चर्यचकित होकर कहा है—'अहो भारो महान् कवेः। कवि का भार बड़ा है—उसके ऊपर बड़ी भारी उत्तरदायिता है। काव्य में सब विद्याओं का उचित सन्निवेश उचित स्थान पर अवश्य होना चाहिए। प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति के संग में काव्यज्ञाता के पास रहकर कविता का अभ्यास भी करना चाहिए। इन तीनों का ज्ञान काव्य के लिये आवश्यक है। इसीलिये मम्मट ने काव्यप्रकाश की निम्निलिखित कारिका में काव्य के कारणों का उल्लेख करते समय शक्ति, निपुणता तथा अभ्यास इन तीनों की आवश्यकता दिखलाने के लिये हेतु शब्द का एक वचन में प्रयोग किया है:—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

मिथिला के प्रसिद्ध साहित्यिक, 'काव्य-प्रदीप' के रचयिता, गोविन्द ठक्कुर के विषय में पण्डित समाज में एक रोचक आख्यान प्रख्यात है। कहते हैं कि एक बार बड़ी सभा जुटी थी। उसमें बाल की खाल निकलने वाले, कर्कश तर्क के सतर्क होकर अध्ययन करनेवाले तार्किकपुंगव मैथिलों की भीड़ लगी थी। दर्शन के एक-से-एक अच्छे विद्वान वहाँ उपस्थित थे। इसी बीच में गोविन्द ठक्कुर भी आ पहुँचे। वह मिथिला भर में साहित्य के नाते से प्रसिद्ध थे। पाँचों पण्डितों ने सोचा कि इन्हें नीचा दिखलाने का अच्छा अवसर है। वे मजे में जानते थे कि इन्होंने अध्ययन तो किया है केवल साहित्य का, इस दार्शनिक मण्डली में भला ये क्या कह सकते हैं। अतः उन्हें धर दबोचने का माकूल मौका आया देख वे लगे एक स्वर से पूछने—किमधीतं भवद्भिः? आपने क्या पढ़ा है? आपने किस शास्त्र का अध्ययन किया है? गोविन्द ठक्कुर ने उन रटू

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पण्डितशुकों पर बाज की तरह झपेटा मारते हुए अकड़कर झट उत्तर दिया—साहित्यमेवाधीतमस्माभिः, तदङ्गतया तु सर्वाणि शास्त्राणि अधीतानि। अध्ययन किया है मैंने केवल साहित्य शास्त्र का; परन्तु उसके अंग रूप से हमने सब शास्त्रों का अध्ययन किया है। यह उत्तर सुनते ही पण्डितोंका मुँह फीका पड़ गया। गोविन्द ठक्कुर ने कहा बहुत ही ठीक। क्या साहित्यिक केवल साहित्य ही को लेकर सन्तुष्ट होता है? उसका ज्ञान बहुत विस्तृत होता है, उनकी दृष्टि खूब दूर तक पड़ती है, वह बहुश्रुत होता है।

कवि-सृष्टि

कवि की सृष्टि भी क्या ही अनूठी है। वह तो दूसरा प्रजापति है। जैसा उसे रुचता है, सृष्टि तैयार है, नये भावों का समुदाय लाकर उपस्थित कर देता है; परन्तु कवि की समता इस विश्वके समुत्पादक ब्रह्मा से देना क्या युक्तियुक्त है? नहीं, कदापि नहीं। दोनों की सृष्टि में महान् अन्तर है—बड़ा भेद है। यद्यपि दोनों स्रष्टा हैं, एक है काव्य-जगत् का, दूसरा है पदार्थ-जगत् का; परन्तु दोनों की कृतियों में प्रचुर विभेद है। ब्रह्मा की सृष्टि नियति-कृत नियमके अधीन है; परन्तु कवि की सृष्टि उन नियमों के अधीन नहीं। ब्रह्मा की सृष्टि त्रिगुणमयी है। उसमें कभी आनन्द हृदय को उत्फुल्ल बनाता है, कभी दुःख चित्त को धर दबाता है और कभी मोह मन को विक्षिप्त बना डालता है; परन्तु काव्य-जगत में केवल आनन्द-ही-आनन्द है, दुःखका नाम निशान तक नहीं। यहाँ तो हृदय को खिलानेवाली मस्ती है; हर वक्त मन में मौज का दौरा है; मन आनन्द की पुण्यपियूष-पूर्ण धारा में गोते लगाया करता है। न है यहाँ दुःख का नाम और न है मोह का निशान। ब्रह्मा बाबा की सृष्टि कारण-कलापों के परतन्त्र है। बिना मिट्टी और कुम्हार के इस संसार में घड़ा तैयार नहीं हो सकता; परन्तु कवि की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सृष्टि सिवा उसके किसी अन्य के अधीन नहीं, वह अनन्य परतन्त्र है—उसका प्रजापति स्वयं कवि है। बिना किसी कारण के ही नई-नई सुन्दर वस्तुओं को गढ़ा करता है। ब्रह्मा ने तो स्वयं छही रसों को बनाया है और वे भी सब-के-सब बिलकुल अच्छे ही नहीं हैं। उनके कारण यह ब्राह्मो सृष्टि सदा रुचिर ही नहीं है। मधुर रसके आस्वादन करने पर अवश्य तबीयत प्रसन्न होती है, परन्तु नीम की तिताईका मजा कैसा? परन्तु यहाँ काव्य जगत् में तो नव रस हैं; और इनसे यह सृष्टि सदैव रुचिर बनी रहती है। रुचिरता को छोड़कर अन्य कोई आस्वाद ही नहीं। इन्हीं कारणों से बाध्य होकर कहना पड़ता है कि हमारे कवि महोदय ब्रह्माजी से भी बढ़ कर हैं। उनकी प्रजापति से उपमा देना क्या है, उनके गुण-गौरव को न समझना है। इसीलिये मम्मटने प्रसिद्ध साहित्य ग्रन्थ 'काव्य-प्रकाश' का मंगलाचरण कवि-भारती को तथ्य प्रशंसा से ही किया है—

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥

अब तक कवि का सामान्य वर्णन उसके सच्चे स्वरूप के प्रदर्शन के साथ किया गया है। अब उसके रहन-सहन का, बोलने-चालने का, ढंग दिखलाया जायगा—एक प्रकार से कविचर्या की सामान्य चर्चा यहाँ की जायगी।

कवि-वेष-भूषा

कवि को सदा शुचि रहना चाहिए। वचन की तथा मानस की शुचिता के संग में काय-शुचिता भी अवश्य होनी चाहिये। उसके कपड़े-लत्ते ऐसे हों कि देखते ही कविजी मालूम पड़ जायँ, यह नहीं कि किसीको उसकी प्रशंसा कर उसका स्वरूप परिचय कराना पड़े। हाथ-पैरके नख कटे होने चाहिये; मुँह में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होनी चाहिये ताम्बूल की वीटिका—पान का बीड़ा, शरीर चाहिये अंगराग से मनोहर, देह के ऊपर चाहिये बेशकीमती अच्छे कपड़े और गले में होना चाहिये सुगन्धी फूलों का गजरा। यह प्रशस्त 'कवि वेष-भूषा' है। उसके बोलने का ढंग भी निराला हुआ करता है। जब बोलता है, तब मुसकराहट के साथ; शब्दोंमें वक्रोक्ति-भरी रहती है; शब्द उचित अर्थ के कहने के लिये मानो ठीक नपे-तुले से होते हैं। इस प्रकार उसके वेष से ही कवित्व नहीं प्रगट होता वरन् उसके सरस शब्दों से भी उसका सच्चा कवि होना पाया जाता है—यह नहीं कि कहाने को तो कवि-सम्राट्; परन्तु उनके वेश में है भोंड़ापन भरा हुआ और बोलचाल में गँवारपन। उनके श्रीमुखसे न कभी कोई चुटोली उक्ति ही सुनी जाती है और न कोई अनूठा रिमार्क। न शब्दों में ही कोई बांकपन है, न अर्थ में ही कोई नयापन। बस, केवल साधारण कैंड़े के आदमी की तरह कुछ बोल लेते हैं, किसी प्रकार अपने मन के भाव को प्रगट कर लिया करते हैं। यह कवि का ढंग नहीं है—इसमें न है कोई बाँकपन और न कोई सयानपन। हमारे संस्कृत कवियों का ढंग सदा निराला था। कविजी के चेहरे से—साथ-साथ वार्तालाप से भी उनका कवित्व टपकता था—उनके सरस कवि-हृदय का पता चलता था।

कवि का निवास-स्थान

कवि का घर भी साफ-सुथरा होना चाहिए। छहों ऋतुओंमें सुख देने वाले विविध स्थान चाहिये। घर के सामने रमणीय विविध तरु-समन्वित वाटिका चाहिये। उसमें हो कहीं कमनीय क्रीड़ा शैल। कहीं स्वच्छ सलिला दीर्घिका में कमलों का समूह मन को मोह लेता हो, तो कहीं कृत्रिम झरनों के झरने से चित्त नाच उठता हो। कहीं हरिण, हारीत तथा मयूरों की विचित्र लीलाएँ देखने को मिलती हों, तो कहीं सारस, चक्रवाक और हंस जल में कल्लोलें करके हृदय को उभारे लेते हों। सघन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतना हो कि घाम का कभी डर ही नहीं। बीच-बीच में फौवारें छूट रहे हों, लताओं का झुट मुट मन को बरबस अपनी ओर खींच रहा हो, झूलने के लिए सुन्दर झूले पड़े हुए हों। स्थान इतना सुभग होना चाहिए कि उसमें बैठते ही तबीयत उमड़ पड़े—नये भाव की अभिव्यञ्जना आप-से-आप हो जाय। कोमल-कान्त पदावली की सूझ स्वयं हो जाय। ऐसे स्थान में कवि का घर होना चाहिए। अन्तः पुर की स्त्रियाँ संस्कृत तथा प्राकृत भाषा की जानने वाली होनी चाहिए। मित्र भी सब भाषाओं के जाननेवाले तथा बोलनेवाले चाहिए। नौकर तथा नौकरानियों को चालाक तथा भावुक-हृदय होना चाहिए।

सुनते हैं, कि फारस के किसी मशहूर शायर के पास अपनी शायरी के घमण्ड में चूर कोई दूसरे शायर इस गरज से आये, कि चलो, नाम तो उनका बहुत सुना है, आज अपने कानों उनका कलाम सुनें और जहाँ तक हो उनको कविता में दोष दिखाकर उन्हें नीचा दिखावें। दुर्भाग्यवश इस घमण्डो शायर की दाहिनी आँख में फूली थी। जब ये उस मशहूर शायर के दौलतखाने में पहुँचे, तो दरवाजा घर का बन्द था। बाहर से हो उन्होंने उसे खोलने के लिये आवाज दी। शायर बड़े बूढ़े थे—बाँदो से कहा—कि देख तो, दरवाजे पर कौन हाँक मार रहा है। बाँदो ने धीरे से किवाड़ा खोला और दरवाजे पर खड़े उस शायर साहब को देखा। पूछने पर उन्होंने अपना नाम अब्दुल्ला बतलाया। बाँदी उलटे पाँव लौटी और मालिक से कहने लगी कि कोई मियाँ ग़बदुल्ला आपसे मुलाकात करने के लिये तशरीफ लाये हैं। शायर ने डाँटकर कहा—कि हरामजादो कहीं की, भला किसी का नाम ग़बदुल्ला हुआ करता है; अबदुल्ला कह। बाँदी ने कहा—हजूर, यहाँ सिर्फ 'ऐन' (ع) नहीं है, बल्कि उसके ऊपर खुदा ने एक नुकता पहलेसे बैठा रखा है (उनकी आँख की तिल की ओर इशारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था, 'एन' (ع) पर एक नुकता रखने से 'ग़ैन' (غ) हो जाता है।) इसीलिए मैं इन्हें गबदुल्ला कह रही हूँ। बूढ़े शायर इस पर बेतरह रीझ गए। उधर जब घमंडी शायर ने यह बात-चीत सुनी, तो दुम दबाये बैरन लौट गये, दिल में सोचा कि जिसकी बाँदी इतनी चुस्त-चालाक है; उस मालिक की हालत कैसी होगी। बेचारे आए थे दूसरे का घमंड चूर करने, उलटे लौटे अपना-सा मुँह लिये हुए।

दिनचर्या

कवि को चाहिए कि प्रहर के अनुसार दिन-रात को चार विभागों में बांटे। प्रातः काल उठकर सन्ध्यावन्दन कर एक पहर तक विद्याओं तथा उपविद्याओं का अभ्यास करे। दूसरे पहर में काव्यक्रिया करे—काव्य की रचना करे। लिखने के जितने सामान चाहिए, उतने उसके पास सदा प्रस्तुत रहने चाहिए। मध्याह्न के आस-पास स्नान करे तथा भोजन करे। अनन्तर काव्यगोष्ठी में समय बितावे। चौथे पहर में अकेले बैठकर या परिमित मित्रगोष्ठी की योजना कर पूर्वाह्न में विरचित कविता की आलोचना प्रत्यालोचना करे। रसावेश में आकर कविता करनेवाले की दृष्टि विवेकिनी नहीं होती; अतः रचनाके अनन्तर उसकी परीक्षा करना परमावश्यक है। कविता ठीक हो जाने पर रात के पहले पहर में उसका अच्छे जक्षरों में लिखा जाना चाहिए। कविता की अनेक कापियाँ करके रखनी चाहिए। यह उपदेश किसी दुर्घटना से काव्य को बचाने के लिए है। रात के दूसरे तथा तीसरे पहर में सोवे तथा चौथे पहर ब्राह्ममुहूर्त में जगकर काव्यार्थ की भावना में दत्तचित्त हो। मित्र आदि के सामने आधी बनी कविता कभी न पढ़े। इसका फल यह होता है कि वह कविता कभी पूरी नहीं होती। नवीन कविता अकेले किसी के सामने न पढ़े। यदि वह उसे अपना बना बतावे, तो साक्षी कौन मिलेगा? अपने काव्य को बहुत न माने। पक्षपात, कवि को एक प्रकार अन्धासे बना देता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह अपने काव्य के गुण-दोष का विचार नहीं कर सकता। कभी गर्व न करे। गर्व का लेश भी सब संस्कारों को आमूल नष्ट कर देता है। काव्य की दूसरों से परीक्षा भी करानी चाहिए। यह सर्वत्र प्रख्यात बात है कि उदासीन पुरुष जो कुछ काव्य में देखता है, वह उसका रचयिता कभी नहीं देख सकता। दृष्टि भिन्न होती है; श्रोता सुनते ही काव्य के दोष की उद्भावना झट से कर लेता है। राजशेखर के ये उपदेश कवि-मात्र को न्य हैं—चाहे वह संस्कृत का कवि हो या भाषा का। ये उपदेश वास्तव में अनूठे हैं, अतः उनपर चलना कविका कर्तव्य होना चाहिए।

कवि-विभाग

राजशेखर ने कवि को चार विभागों में बाँटा है—असूर्य-म्पश्य, निषण्ण, दत्तावसर तथा प्रायोजनिक। 'असूर्य-म्पस्य' कवि वह है, जो अपने भूमिगृह में घुसकर सदा कविता किया करता है। इसके लिये समय का कोई बन्धन नहीं, जब इच्छा हुई मस्ती में कविता करने लगे। 'नषण्ण' वह है जो काव्यक्रिया में अभिनिविष्ट होकर रचना करता है, नैष्ठिकवृत्ति से नहीं। इसके लिये कालका निर्धारण है। 'दत्तावसर' कवि के लिमे कभी-कभी कविता के लिये समय मिल जाया करता है। वह अन्य कामों से अवकाश मिलने पर रचना में संलग्न हुआ करता है। 'प्रायोजनिक' कवि किसी प्रयोजन-विशेष पर--किसी प्रस्तुत संविधानक के उद्देश्य से—कविता करना है। प्रयोजन के वश से इसके लिये समय की व्यवस्था है। यह नियममुद्रा 'बुद्धिमद्' और 'आहार्यबुद्धि' कवियों के लिये है। औपदेशिक कवि के लिये न तो नियम का कोई बन्धन है और न समय की कोई रुकावट। जब तबीयत उमड़ी, बेलाग कहने लगे, बिना रोक-टोक रचना करने लगे।

'कवि-चर्या' का यह संक्षिप्त वर्णन यहीं समाप्त किया जाता है। इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नियम से यदि कवि लोग काव्य-रचना में प्रवृत्त हों, तो वास्तव में अत्यन्त लाभ होने की सम्भावना है। परन्तु जैसा अभी कहा गया है, प्रातिभ-चक्षु-सम्पन्न कवयिता के लिये यह बन्धन नहीं है, नियममुद्रा नहीं है। यह कवि अपनी मस्ती में न वैयाकरणों के कटु वचनों की पर्वाह करता है, और न तर्किकों के कर्कश शब्दों का खयाल। उसका अपने विषय में यही कहना है—

वदन्तु कतिचिद्धठात् खफछठेति वर्णच्छटान्
घटः पट इतीतरे पटु रटन्ति वाक्पाटवात्।
वयं वकुलमञ्जरीगलदलीनमाध्वीभरी—
धुरीणपदरीतिभिर्भणितिभिः प्रमोदामहे ॥

कोई लोग (वैयाकरण) हठपूर्वक खफछठथ आदि वर्णों को कहा करें, और दूसरे (नैयायिक) लोग घट पट आदि सदा रटा करें। हमें ऐसे लोगों से कुछ कहना नहीं है, वे लोग नीरस शब्दाडम्बर में अपना समय बिताया करें। हम (कवि) लोग तो वकुलमञ्जरी से झरते हुए मकरन्द के समान मधुर पदवाले काव्यों से आनन्द उठाया करते हैं। हमारा समय सदा कोमल कविता के मनन तथा अनुशीलन में बीता करता है। दूसरे लोग कर्कश शब्द जालमें भले फँसे, हम तो काव्यामृत का पान कर आनन्द मनाया करते हैं।

आलोचक

ये कवि लोग भी गुण-ग्राहक भावुक के न मिलने के कारण प्रायः अपनी पूरी कला का विकाश नहीं कर पाते उत्साह-वर्द्धक के होने पर लड़ने वाले पहलवान का जोश दूना हो जाता है, सराहने वाले के होने पर कवि अपना जौहर खुलकर दिखाता है ; अतः भावुक के विना कवि का काव्य विशेष चमत्कार नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिखलाता। यह कुछ ही कवियों को विशेषता होती है कि प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी मस्ती-भरी कविता करते रहते हैं। साधारण रीति से भावुक ज्ञाता की बड़ी आवश्यकता होती है। जब कोई जानकार आदमी किसी कवि को कविता पर दाद देता है, तब उसका उत्साह खूब बढ़ जाता है, वह बढ़-बढ़कर काव्य रचना में प्रवृत्त होता है। जर्मनी के सबसे श्रेष्ठ कवि गेटे ने कितने ही व्यक्तियोंको उनकी रचनाओं की प्रशस्त प्रशंसा कर, बड़ा भारी कलाविद् बना दिया। यदि उन्हें इस प्रकार उत्साह वर्द्धन न होता तो शायद वे इतने बड़े न होते। हमारे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी कितनों को कवि बना दिया। जब कोई उन्हें अपनी कविता सुनाता तो उसे वह दिल खोलकर सराहते, खूब उसका उत्साह बढ़ाते। देखते-देखते वह दिन-प्रति-दिन अच्छा कहने लगता, अच्छी कविता करने लगता। इस प्रकार किसी सच्चे भावुक के न मिलने से नितान्त विषण्ण किसी कवि की दुर्दशा देखिये। कवि और एक अन्य व्यक्ति के बीच बातचीत हो रही है।

कस्त्वं भोः कविरस्मि काप्यभिनवा सूक्तिः सखे! पठ्यतां
त्यक्ता काव्यकथैव सम्प्रति मया कस्मादिदं श्रूयताम्।
यः सम्यग् विविनक्ति दोषगुणयोः सारं स्वयं सत्कविः
सोऽस्मिन् भावक एव नास्त्यथ भवेद् दैवान्न निर्मत्सरः॥

तुम कौन हो भाई? मैं तो कवि हूँ। तो मित्र! कोई नई सूक्ति पढ़ सुनाइए। मैंने आजकल कविता करना ही छोड़ दिया है। क्यों भाई! ऐसा क्यों कह रहे हो? तुम्हारे काव्यकथा छोड़ने का क्या कारण है? भाई, बात यह है कि जो कविता के गुण-दोष का ठीक ढंगसे विचार कर सकता है, तथा स्वयं अच्छा कवि है; ऐसा भावुक ही इस संसार में नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिलता। यदि मिलता भी है, तो भाग्यवश वह निर्मत्सर नहीं है--सदा वह द्वेषी हुआ करता है। यही कारण है कि मैंने काव्यकी चर्चा करनो ही छोड़ दी है। कविका कहना बिल्कुल ठीक है:—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥

* *

[stamp]

(३)

सूक्ति-संग्रह

मुक्तक के भेद

मोटे ढंग से काव्य के दो भेद होते हैं—प्रबन्ध तथा मुक्तक। प्रबन्ध काव्य किसी एक चरित-विशेष का अवलम्बन कर लिखा जाता है। जैसे कुमारसम्भव, शिशुपालवध आदि महाकाव्य। मुक्तक काव्य अपने अर्थ तथा रस के लिये स्वतन्त्र हुआ करता है। उसके समझनेके लिये पूर्वापर कथा-सन्दर्भ जानने की कोई जरूरत नहीं होती। इस प्रकार पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त होने के कारण इसे 'मुक्तक' कहते हैं। मुक्तक पांच प्रकार के होते हैं—शुद्ध, चित्र, कथोत्थ, संविधानक तथा आख्यानकवान्। जो इतिवृत्त से मुक्त हो—जो शृङ्गाररस की किसी घटना को लेकर लिखा गया हो, उसे 'शुद्ध मुक्तक कहते हैं। वही सप्रपञ्च होने से 'चित्र' कहलाता है। बीती हुई किसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर रचित मुक्तक 'कथोत्थ' नामसे पुकारा जाता है। यदि घटना सम्भावित हो, तो 'संविधानक'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं तथा परिकल्पित इतिवृत्त पर विरचित मुक्तक 'आख्यानकवान्' को संज्ञा प्राप्त करता है। इस प्रकार 'मुक्तक' के पाँच भेद राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में दिखलाये हैं और इनके उदाहरण भी अलग अलग दिये हैं।

मुक्तक-काव्य

पद्यों की संख्या के कारण मुक्तक काव्यों के भिन्न-भिन्न नाम के संग्रह संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं। एक सौ पद्य होने पर उन्हें 'शतक कहते हैं; जैसे शृङ्गारशतक, नीति शतक आदि। सात सौ पद्य एकत्रं सम्मिलित होने पर उसे 'सप्तशती' कहेंगे, जैसे गाथा-सप्तशती तथा आर्यासप्तशती। मुक्तक के विषयों में शृङ्गार, वीर तथा नीति की प्रधानता है। मुक्तकों के, विशेषतः शृङ्गार-रस के मुक्तकों के, अचार्य महाकवि '**अमरुक**' हैं। इनके मुक्तक रस से चुहचुहाते होते हैं तथा आनन्दवर्द्धन की माननीय सम्मति में वे 'प्रबन्धायमाण' होते हैं; अर्थात् जितने भाव, रस तथा अर्थ का सन्निवेश एक पूरे प्रबन्ध में किया जा सकता है, उतना अमरुक के एक-एक पद्य में पाया जाता है। इनका 'अमरुकशतक' सहृदयों के गले का हार है—सुभाषितों का सुन्दर आगार है। अमरुक के अतिरिक्त गोवर्धनाचार्य की आर्या-सप्तशती, मूक को पञ्चशती, भर्तृहरि की सुभाषित-त्रिशती मुक्तक-काव्य के विभिन्न विषयों पर लिखे गये अच्छे उदाहरण हैं।

सूक्ति-ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

चमत्कारपूर्ण चुटीली उक्तियों के चुनने का कार्य संस्कृत में बहुत दिनों से होता चला आया है। इन संग्रह-ग्रन्थों में मुक्तकों का संग्रह है, साथ-ही-साथ प्रबन्ध काव्य के भी भाव-पूर्ण कतिपय पद्यों का संकलन किया गया; परन्तु इन सुभाषित ग्रन्थोंमें विशेषतया मुक्तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का ही संकलन रहता है। इसीलिए ऊपर मुक्तकों के विषय में थोड़ी-सी चर्चा कर दी गई है। जहाँ तक लेखक को स्मृति जाती है, सबसे प्राचीन सुभाषित ग्रन्थ संस्कृत में न होकर प्राकृत में है। उसका नाम तद्गत छन्द के कारण **गाहासत्तसई (गाथा सप्तशती)** है तथा संग्रहकर्ता के नाम पर उसे **हाल सत्तसई** के नाम से भी पुकारते हैं। **हाल** या शालिवाहन दक्षिण के राजा थे। वे विक्रम की प्रथम शताब्दी में उत्पन्न हुए माने जाते हैं। उस समय महाराष्ट्री प्राकृत का वहुत प्रचार था। कवि लोगोंने उसमें श्रृङ्गाररस से सनी लाखों गाथाएँ कही थीं। उन्हीं में से हाल ने केवल सात सौ रसभरी उक्तियाँ चुनकर एक साथ रख दीं, जो उनकी सम्मति में सुन्दर तथा रस-भाव-पेशल प्रतीत हुईं।

सत्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि
हालेण विरइआइं सालंकाराणँ गाहाणम्।
[सप्त शतानि कवि - वत्सलेन कोटेर्मध्ये
हालेन विरचितानि सालङ्काराणां गाथानाम्॥]

— १ । ३ ।

अर्थात् कविवत्सल हाल ने एक करोड़ अलंकारयुक्त गाथाओं में से सात सौ गाथाएँ वनाईं (चुनकर एकत्रित कीं)। अतः सुभाषित-संग्रहों का प्रथम ग्रन्थ यही 'हालसप्तशतो' है। पीछे संस्कृत सूक्तियों का भी संग्रह होने लगा और सबसे प्राचीन संस्कृत सूक्ति-ग्रंथ जो आज-कल उपलब्ध है—**कवीन्द्र-वचन-समुच्चय है**। उस संग्रह के कर्ता का पता नहीं कि वह कौन था और किस देश का रहनेवाला था। जिन कवियों की कविता का संकलन इस ग्रन्थ में है, उनमें से कोई भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१००० ईस्वी के इधर का नहीं है। अतः इसका रचना काल लगभग ११ वीं शताब्दी के आरम्भ में माना जाता है। इसमें अप्रसिद्ध बौद्ध कवियों के भी पद्य होने के कारण कुछ लोग इसके संग्रहकर्ता को बौद्ध मानते हैं। दूसरा ग्रन्थ **सदुक्तिकर्णामृत** है। इसको बंगाल के प्रसिद्ध राजा लक्ष्मणसेन के धर्माध्यक्ष बटुदास के पुत्र **श्रीधरदास** ने १२०५ ई० में संकलित किया था। अतः, इसका समय १२ वीं शताब्दी का अन्त तथा १३ वीं का आदि है। बंगाल आदि पूर्वीय देश के उस समय के प्रसिद्ध और आज-कल नितान्त अज्ञात कवियों के पद्यों का संग्रह इसकी विशेषता है। सूक्ति-साहित्य का तीसरा ग्रन्थ **सूक्ति-मुक्तावली** है। इसके रचयिता का नाम **जह्लण** था। ये अपने पिता लक्ष्मीदेव के समान ही दक्षिण भारत के राजा कृष्ण के मन्त्री थे। इनका समय १३ वीं सदी है। संस्कृत के प्राचीन कवियों के विषय में प्रशंसात्मक पद्यों का संकलन इसमें विशेषतया पाया जाता है। चौथा ग्रन्थ **शार्ङ्गधर पद्धति** है जिसकी १३६३ ईस्वी में दामोदर के पुत्र **शार्ङ्गधर** ने रचना की। यह सुभाषितावली से श्लोक संख्या में बढ़कर है। इसमें ४६८९ पद्य हैं। वैद्यक, नीति आदि अनेक ज्ञातव्य विषयों का समुचित संग्रह इसमें किया गया है। पाँचवा नाम **वल्लभदेव** की **सुभाषितावली** का है। इसकी रचना संभवतः १५ वीं शताब्दी में हुई। इसमें भिन्न-भिन्न विषयों के साढ़े तीन हजार (३५२७) श्लोकों का संग्रह किया गया है। सूक्ति-संग्रहों में ये ही प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। १५ वीं सदी के अनन्तर भी सूक्तियों का संग्रह होता चला आया है। बंगाल के **रूप गोस्वामी** ने भी कृष्ण-परक सुन्दर सूक्तियों का एक संग्रह **पद्यावली** के नाम से किया था। **लक्ष्मणभट्ट** ने **पद्यवेणी** के नाम से एक अच्छा संग्रह १८ वीं सदी में प्रस्तुत किया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था। समय-समय पर अनेक सूक्ति-संग्रह बनाये गये ; परन्तु वे विशेष विख्यात नहीं हुए। इधर निर्णयसागर प्रेस ने **सुभाषित-रत्न-भाण्डागार** नामक एक ग्रन्थ निकाला है। आकार में यह ग्रन्थ अवश्य बड़ा है ; परन्तु गुणोंमें तथा सूक्तियों के चुनने में यह ग्रन्थ उतना महत्त्व नहीं रखता। कलकत्ते से पूर्णचन्द्र दे ने प्राचीन कवियों की फुटकल रचनाओं का संग्रह **उद्भटसागर** के नाम से किया है। इस प्रकार बहुत प्राचीन काल से लेकर अब तक सूक्तियों का संकलन बराबर होता चला आया है। हर एक संग्रह में संग्रहकर्त्ता की मनोवृत्ति का पता चलता है।

इन सूक्तिग्रन्थों का उपयोग यही नहीं है, कि इनमें सुन्दर कविताओं का संग्रह एक जगह मिलता है, प्रत्युत अनेक अज्ञात कवियों की कविता भी यहीं मिलती है। अनेक कवियों के नाम का भी पता हमें इन्हीं सूक्ति-ग्रन्थों से चलता है। यदि ये ग्रन्थ न होते, तो बहुत-से सुकवियों के नाम सदा विस्मृति-गर्त में विलीन हो जाते। अतः हमें संस्कृत-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी इन संग्रहकों का अतिशय उपकार मानना चाहिये।

* * *

(४)

संस्कृत-कविता की कुछ विशेषताएँ

संस्कृत-कविता अपने ढंग की एक निराली चीज है। जिसे

माधुर्य

इसका चस्का लग गया, उसे दूसरी कविता सुहाती ही नहीं। इसका मिठास तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। जिसे कविता सुनने से वैराग्य हो गया हो, वह भी इस भाषा की मधुरता से पगी कविता सुनने का आनन्द उठा सकता है। जब इसकी सगी बेटियाँ व्रजभाषा, अवधी तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्जाबी आदि में इतनी मधुरिमा है, तो इनकी जननी संस्कृत की बात क्या कही जाय ? इन भाषाओं की मधुरता भी चखते चलिये—

ब्रजभाषा--

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह वहै बरराय उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन को अभिलाख अनेक भरी छतिया।
मन तें मुख लौं नित फेर बड़ो कित ब्योर सकौं हित की बतिया।
'घन आनन्द' जीवन प्राण लखौं सु लिखी किहि भाँति परै पतिया।

—घनानन्द

अवधी--

रंग भरि भरि भिजवइ मोरि अँगिया
दुहु कर लिहिस कनक पिचकरवा।
हम सन ठनगन करत डरत नहिं
मुख सन लगवत अतर अगरवा।
अस कस बसियत सुनु ननदी हो
फगुन के दिन एहि गोकुल नगरवा।
मोहि तन तकत बकत पुनि मुसुकत
'रसिक गुविंद' अभिराम लँगरवा॥

—रसिक गोविन्द

पञ्जाबी—

रोलियाँ मुक्ख लगावदां लाल,
गुलाल अबीर उड़ावदां झोलियाँ;
खोलियाँ गालियाँ तालियाँ दें दाँ,
करैंदाँ गली विच बोलियाँ ठोलियाँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घोलियाँ कित्ति न साउड़ी जिंदि,
उसी से लगी दिल प्रीति कलोलियाँ ;
चोलियाँ रंग 'गुबिन्द' भिजावदाँ,
गावदाँ रंग रंगीलियाँ होलियाँ ॥

—रसिक गोविन्द

संस्कृत की मधुरता के विषयमें बिहारी का यह दोहा सर्वथा ठीक जँचता है—

दाख दुखी मिसरी मुरी सुधा रही सकुचाय ।

संस्कृत की मधुरिमा चखना हो, तो दूर जाने की कोई जरूरत नहीं। **जयदेवजी** के कोमल-कान्त-पदावली-कलित गीतगोविन्दजी का पाठ कीजिए ; क्या अष्टपदी, क्या पद्य—सर्वत्र पदविन्यास इतना सुन्दर हुआ है कि एक भी पद अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता। यहाँ न तो इतना समय है, न स्थान, कि गीतगोविन्द से पद्य उद्धृत किये जाँय। अतः **विश्वनाथ कविराज** का एक पद्य माधुर्य की चाशनी चखने के लिये यहाँ दिया जाता है—

लताकुञ्जं गुञ्जन्मदवदलिपुञ्जं चपलयन्
समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन् ।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि ॥

मन्द-मन्द बहनेवाले मारुत का मनोरम वर्णन है। वह लता-कुञ्ज को हिला-हिलाकर चपल बनाये जा रहा है—उस कुञ्ज को, जिसमें मदमत्त अलिपुञ्ज गुञ्जायमान है। वह अङ्गको आलिंगन कर रहा है ; काम को जल्दी से प्रबल बना रहा है ; मन्द-मन्द बह रहा है ; खिले हुए अरविन्द को तरल कर रहा है; फूलों से परागवृन्द को ग्रहण कर वह प्रत्येक दिशा में मकरन्द को बिखेर रहा है। इस शिखरिणीको ठीक स्वर से पढ़िये, तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मालूम पड़ता है कि मन्द सञ्चारी समीर की गति का यथार्थ अनुभव हो रहा है। कितनी माधुर्य-व्यञ्जक पदों की शय्या है। कितना रसानुकूल रमणीय अनुप्रास है। **रसिक गोविन्दजी** का व्रजभाषा में इसका यह अनुवाद भी इतना ही सरस है:—

करि कुञ्ज लतानि की गुञ्जित मंजु, अलीन के पुञ्ज नचावतु है।
अङ्ग-अङ्ग अलिंगि, उतंग-अनंग गुबिन्द की सौ सरसावतु है॥
बिकसे बन कंजिनी सौं मिलिकै, रजरञ्जित ह्वै चलि आवतु है।
यह मन्द समीर चहूँ दिसि वृन्द सुगन्धनि के बरसावतु है॥

अनुप्रास

संस्कृत में अनुप्रास की बहार भी खूब है। शायद ही कोई भाषा होगी, जिसमें अनुप्रास की छटा इतनी सुन्दरता से दिखलाई जा सकती है। अंग्रेजी में How high His Highness holds his haughty head के Alliteration, को देख कर आनन्द से मस्त हो जाने वाले अंग्रेजीके प्रोफेसर लोग संस्कृत में किसी प्राचीन **पाजक पण्डित** के प्रकार पटुतामयो-पदावली-समन्वित इस प्रौढ़ पद्य को पढ़कर क्या कहेंगे? उन्हें तो आश्चर्य-चकित हो हो जाना पड़ेगा; क्योंकि इस शार्दूल-विक्रीड़ित में जितने शब्द हैं, वे सब प्रकार से शुरू होते हैं। यहाँ 'पकार' का अनुपम अनुप्रास अवश्यमेव अवलोकनीय है। देखिये, पशुपति के पुण्यमय पादों के अवलोकन करने की इच्छा पण्डित पाजकजीने इस पद्य में किस सुचारु रीति से अभिव्यक्ति की है:—

पूजा पद्म-परम्परा-पुलकितौ पाण्यों: परं पेलवौ
पुण्यौ पातकिपापपाटनपटू पृथ्वीं प्रपन्नौ प्रथाम्।
प्रायः पर्वतपुत्रिकापृथुपटैः पस्त्ये पुरा पूरितौ
पादौ पण्डितपाजकः पशुपतेः प्रीत्या पुरः पश्यतु॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्लेष से भी संस्कृत कविता में बड़ा चमत्कार आ जाता है। इने-गिने शब्दों में विपुल भाव भर देने की कलाबाजी श्लेष के द्वारा संस्कृत में ही दिखाई जा सकती है। श्लेष-जन्य चमत्कार अन्य भाषाओं में इतनी विचित्रता के साथ कभी दिखलाया ही नहीं जा सकता। जान पड़ता है, कि 'श्लेष' संस्कृत के भाग में पड़ा है। एक दो श्लोकों में श्लेष की विशिष्टता दिखलाई जायगी। देखिये, महाकवि वेंकटाध्वरि ने इस छोटे-से श्लोक-गागर में कितना भाव-सागर भर रखा है—

श्लेष

> परमादिषु मातरादिमं यदिमं कोषकृताह मध्यमम्।
> अमरः किल पमरस्ततः स बभूव स्वयमेव मध्यमः॥

कवि लक्ष्मीजी की कटि का विचित्र वर्णन कर रहा है। यह कटि सृष्टि के सबसे पहले पैदा होनेवाली वस्तुओं में पहली है—यह सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि इसकी रचना इस विश्व में सबसे पहले हुई; परन्तु ऐसी उत्तम कटि को कोशकार अमर 'मध्यम' कहता है ('मध्यम' कटि का पर्याय-वाचक शब्द है—मध्यमं चावलग्नं चेत्यमरः।)—नीच बतलाता है। इस पातक से वह अमर पामर बन स्वयं इस मर्त्यलोक में आकर मध्यम बन गया है—नीच हो गया है। ये हजरत चले थे दूसरे को नीचा बतलाने, उत्तम को मध्यम कहने का साहस किया था, फल यह हुआ है, कि वह स्वयं नीच हो गये। वह ठहरा अमर-देवता, उत्तम लोक का निवासी; परन्तु इस कुकर्म के कारण वह पातकी बन इस मर्त्यलोक में आ बसा। था अमर, परन्तु बन गया मर्त्य; रहता था उत्तम लोक में, अब आ धमका मध्य लोक में। भगवती के विषय में किये गये पातक का फल उसको खूब मिला। अब जरा शब्दों की बारीकी का खयाल कीजिये। 'पर म' का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ है जिसके अन्त में 'म' है ; 'मध्य-म' का अर्थ है, जिसके वीच में मकार है, उसी प्रकार 'आदि-म' का अर्थ है आदि में मकारवाला शब्द। भगवती का मध्यम भाग-कटि देश-परम शब्दों में आदिम है अर्थात् मकारान्त शब्दों में आदि मकारवाला है—मध्यम के आदि तथा अन्त दोनों में मकार है, मध्य में 'ध्य' है ; परन्तु कोशकार अमर ने उसे 'मध्यम' कह डाला है—उसके वीच में 'मकार' वतलाया है। इसका फल यह हुआ, कि वह पामर अमर स्वयं मध्यम बन गया—अर्थात् उसी के नाम के बीच में आकर जम गया—दूसरे को मध्यम वनाया ; परन्तु वही मध्यम हो गया ? बात ठीक ही है ; क्योंकि 'अमर' के बीच में 'म' है तथा 'पामर' के वीच में भी। अतः पाप का परिणाम उसी के सिर आ धमका। कहिये, इस छोटे से अनुष्टुप् में कितना अर्थ भरा हुआ है। कवि ने यहाँ गागर में सागर भरने की लोकोक्ति चरितार्थ की है। यह विपुल अर्थ-सम्पत्ति श्लेष के कारण सिद्ध हुई है।

स्वभावोक्ति — स्वाभावोक्तियाँ संस्कृत में इतनी सुन्दर हैं कि जान पड़ता है कि वह चीज हू-बहू सामने आकर खड़ी हो गई है, मानों उसे आँखों देख रहे हों। जरा इस दृश्य को देखिए। प्रातः काल हो रहा है। चौकीदार अपने समय को विता कर सोना चाहता है। वह दूसरे पहरेदार को 'जागो' 'जागो' कह कर पद-पद पर जगा रहा है। वह पहरेदार जागते हुए भी सो रहा है। नींद के मारे अनर्थक आँय-बाँय कुछ शब्द वह कहता है अवश्य ; परन्तु फिर भी वह सो जाता है, जाग कर भी अपने पहरे पर नहीं जाता। प्रातः काल में झपकी लेने वाले सिपाही का क्या ही खासा स्वाभाविक वर्णन **माघ** कवि ने किया है :—

प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः
प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुहुरविशदवर्णां निद्रया शून्य-शून्यां
ददद‍पि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ॥

इस ग्रामीण दृश्य पर जरा दृष्टिपात कीजिये—

वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं
कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्ताऽपि नो ।
यत्नात् सञ्चिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति ॥

पति बूढ़ा है, साथ-ही-साथ अन्धा है, वह सदा मचान पर सोया रहता है। घर में केवल खंभे ही शेष रह गये हैं, उसपर छप्पर का नामो-निशान नहीं। बरसात बिलकुल नजदीक आई हुई है। बेचारा लड़का गया है परदेश, अभी तक उसके कुशल समाचार नहीं मिले। बूँद-बूँद करके घड़े भर तेल इकठ्ठा किया था, कि बरसात के दिनों में रात के समय दीया तो जलेगा, घर में रोशनी तो होगी; परन्तु हाय! वह घड़ा भी फूट गया। इधर पतोहू को लड़का होने वाला है। वह गर्भ के भार से इधर-उधर जा नहीं सकती। इसे देख-देखकर सास बहुत देर तक रोती रहती है। अहा, कितना दर्दनाक नजारा है। बूढ़ी सास की दुरवस्था का कितना सच्चा करुण वर्णन है। भारतीय ग्रामों में आज भी ऐसी सास एक नहीं, अनेकों हैं, जो घर में सिसक-सिसक कर अपने दुःखपर रोया करती हैं, और अपने भाग्य को कोसा करती हैं। दैन्य का कितना सुन्दर चित्र है।

अनोखी कल्पना

संस्कृत में कवियों की एक-से-एक अनोखी सूझ मिलती है। उक्तियाँ एक दम अपूर्व हैं, अर्थ बिल्कुल विलक्षण है। यह पूरी पुस्तक ही अनोखी उक्तियों से भरी पड़ी है। पाठक उसे पढ़कर आनन्द उठावें। हाँ, एक-दो यहाँ दी जाती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। देखिए, एक कविजी स्तनों पर कैसी विचित्र कल्पना कर रहे हैं। यह तो सब जानते हैं कि नायिका के स्तन हृदय में घाव करने वाले होते हैं; परन्तु इसका क्या कारण है? कवि कह रहा है:—

स्वकीयं हृदयं भित्वा निर्गतौ यौ पयोधरौ।
अन्यदीयस्य हृदयस्य भेदने का कृपा तयोः॥

जो पयोधर अपने हृदय को फाड़कर बाहर निकले हुए हैं, भला उन्हें दूसरे के हृदय फाड़ने में कैसी दया होगी? कविजी ने बात बहुत ठीक कही, जिसे अपने हृदय के फाड़ने में दया नहीं, भला उन्हें दूसरों के हृदय फाड़ने में दया कहाँ से आवे? कितने सीधे शब्दों में बात कही गई है।

* * *

कोई पथिक नगर की ओर से आ रहा था। रास्ते में उसे दूसरा आदमी मिला और वह लगा उस पथिक से पूछने—भाई आप कौन हैं? पथिक ने उत्तर दिया—मैं तो राही हूँ। फिर पूछा—आप इस समय कहाँ से चले आ रहे हैं? राही ने जवाब दिया मैं गाँव से चला जा रहा हूँ। तो भई, क्यों गाँव में कोई नया समाचार सुना है; पथिक ने कहा—हाँ इस सुहावने पावस में भी प्रिया को छोड़ लोग जीवित हैं, यही बात सुनी है। उस आदमी को इस विषमता पर बड़ा आश्चर्य हुआ, उसके विस्मय की सीमा न रही, जब उसने सुना कि इस मनभावन सावन में कोई पुरुष अपनी प्रियतमा को छोड़कर जीवित रह सकता है। अतः उसने अचम्भे में आकर पूछा—क्या यह कोई गप्प है या सची खबर है। पथिक ने कहा—भाई, लोगों को आपस में इस प्रकार की बात-चीत करते हुए मैंने भी सुना ही है। उस मनुष्य ने बड़े विषादपूर्ण स्वर से कहा—हाय रे दैव। समय भी कितना कुटिल आ गया है, लोग भी कितने तरह के हो गए हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किस चीज की सम्भावना अब नहीं की जा सकती, इस पापी कलिकाल में। 'सर्वं सम्भाव्यतेऽस्मिन् पापिनि कलौ'। यह कथानोपकथन कितना रोचक है। वर्षाकाल में प्रियतमा के वियोग होने पर भी जीवित रहने की बात अनहोनी घटना है। यही कारण है कि कवि ने इस घटना को सुनकर अत्यन्त विस्मय प्रकट किया। देखिये, कितने अच्छे ढंग से यह बात कही गई है:—

भ्रातः पान्थ ! कुतो भवान्? नगरतो वर्ता नवा वर्तते।
बाढं, ब्रूहि, युवा पयोदसमये त्यक्त्वा प्रियां जीवति ॥
सत्यं जीवति ? जीवतीति कथिता वार्ता मयापि श्रुता।
विस्तीर्णा पृथिवी जनोऽपि विविधः किं किं न सम्भाव्यते ॥

इस पद्य का अन्तिम चरण इसकी जान है। कितने साफ शब्दों में संभावना की द्योतना की गई है। यह पद्य कुवलयानन्द में संभवालङ्कार के उदाहरण में दिया है।

* * *

कोई कविजी किसी राजा दरबार में गये। राजा था एक नंबर का कंजूस। कविता सुनकर पारितोषिक देने की बात अलग रही, उसने कमनीय कविता के प्रशंसा में अपना सिर तक नहीं हिलाया। कविजी इस व्यवहार से बेतरह बिगड़ खड़े हुए और सामान्यरूप से ऐसे कंजूस धनिकों का बड़ा सुन्दर वर्णन कर डाला:—

एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैकवैज्ञानिकाः
सन्त्येके धनिनः कलासु सकलास्वाचार्यचर्याचणाः।
अप्येते सुमनोगिरां निशमनात् बिभ्यत्यहो श्लाघया
भूते मूर्धनि कुण्डले कषमनः क्षीणे ... ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आपका कहना है कि इस संसार में एक-से-एक बढ़कर धनिक मिलेंगे, जो स्वयं सकल कलाओं में प्रवीण हैं तथा दूसरोंके गुणोंको अच्छी तरह से जानते हैं—उनकी क़द्र करते हैं। परन्तु कुछ ऐसे कंजूस भी मिलेंगे, जो विद्वानोंके वचनों को सुनकर उनकी प्रशंसा करनेसे इसलिये डरते हैं कि सिर हिलाने पर उनके कानोंके कुण्डल रगड़ से कहीं घिस न जायँ! वाह! क्या खूब कहा! कविजी को कुछ देने की तो कथा ही अलग रही—रुपया पैसा देने की बात ही जुदा रही, यहाँ तो कविता को प्रशंसा करने में भी कंजूसी है। **बाणभट्ट** की यह उक्ति बड़ी अनूठी है। कंजूसी की एक प्रकार से हद हो गई।

*   *   *

सौकुमार्य-वर्णन

सुकुमारता के वर्णन करने में उर्दू शायरों ने बड़ा नाम कमा रखा है। किसी अंशमें उनकी अतिशयोक्तिपूर्ण उक्तियाँ सचमुच बड़े मज़ेदार होती हैं; परन्तु संस्कृत साहित्य में भी इस प्रकार की उक्तियोंका अभाव नहीं। जब उर्दू के मशहूर शायर **नासिख़** की विरह-कृशा माशूका को खोजने के लिये आशिक आता है और जब वह अत्यन्त तनुता के कारण दीख नहीं पड़ती, तब वह बिस्तर के झाड़ने की तजवीज करता है, मानो वह खटमल सी कहीं पर चिपक गई हो।

इन्तहाए-लाग़री से जब नजर आया न मैं।
हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये॥

नासिख़—

यह वर्णन नितान्त अस्वाभाविक प्रतीत होता है; परन्तु अब हमारे यहाँ वियोग विधुरा की कृशता का मुलाहिजा फर्माइये। देखिये, यह कितना सच्चा है—कितना स्वाभाविक है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्ध येत नतभ्रूः पक्ष्मनिपातोद्भवैः पवनैः ।
इति निर्निमेषमस्या विरहवयस्या विलोकते वदनम् ॥

सखी वियोगिनी नायिका को विना पलक गिराये हुए देख रही है। पलक इसलिये नहीं गिराती, कि कहीं नायिका पलक गिरानेसे पैदा हुई हवा के झोंके से उड़ न जाय। वह इतनी कृश हो गयी है कि वह पलकों के गिरने की हवा से उसके उड़ जाने का अन्देशा है। कृशता की पराकाष्ठा है! सखीके निर्निमेष अवलोकन में कितनी सहानुभूति भरी हुई है! कितना अनुराग ओत-प्रोत है! पलक न गिरने से स्वयं कष्ट भले हो, सखी तो उड़ने से बच जायगी। कहिये, सहृदय कवि ने कितने अच्छे शब्दों में विरह-विधुरा की कृशता अभिव्यक्त की है!

सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी
गत्वा जवात् त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्य सकृद् ब्रुवाणा।
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥

शिरीष फूल की तरह सुकुमार सीता रामचन्द्र के साथ जङ्गल में जा रही हैं। अभी वह अयोध्या नगरी के आस-पास ही हैं। यह जल्दी-जल्दी तीन-चार डगें भरकर रामजीसे पूछती हैं—कि कहिये, अब कितना दूर चलना है। इस वचनको सुनते ही राम की आँखों से पहले-पहल आँसू बह चलते हैं। अहा, सीता की सुकुमारिता की क्या ही सुन्दर अभिव्यक्ति है। रामको जाना है अभी दूर विकट जङ्गलों में; परन्तु तीन—चार पग चलनेमें ही सीता थक जाती हैं और चलने की समाप्ति के बारे में पूछने लगती हैं। धीरोदात्त राम के नेत्र से प्रथम अश्रुपात दिखलाना राम के सरस हृदय की मधुर व्यञ्जना है—उनकी [illegible] वृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के प्रगटीकरण का नितान्त सुन्दर निदर्शन है। सुकुमारता की बात तो साफ ही है।

जरा इधर तो नजर फेरिए। पण्डितराज जगन्नाथजी बड़े फेर में पड़े हैं। वे चाहते हैं कि उस तन्वी के अंगों का समुचित वर्णन पाठकों के सामने किया जाय, उनकी कोमलता की बात सहृदयों को समझाई जाय, परन्तु ठीक वर्णन हो नहीं पाता—

नितरां परुषा सरोजमाला
न मृणालानि विचारपेशलानि ।
यदि कोमलता तवाङ्गकानां
बत का नाम कथापि पल्लवानाम् ॥

तुम्हारे सुकुमार अंग नितान्त कोमल है, उनके सामने कमलों की माला अत्यन्त कठोर मालूम पड़ती है। मृणाल की बात क्या कही जाय, वे तो विचार में भी सुकुमार नहीं प्रतीत होते, वास्तवमें कहना ही क्या! कवियोंने सुकुमारता के नाते अंगोंकी पल्लव से उपमा दी है, परन्तु यहाँ तो बेचारे पल्लवोंकी बात उठाना ही व्यर्थ है। जिनके सामने कमल कठोर जँचते हैं, मृणाल मनमें गड़ते हैं, भला पल्लवों की क्या कूवत कि उन्हीं अंगों के सामने आ खड़े हों। ठीक है पण्डितराजजी, आपका कहना बजा है! भला उस सचेतन कोमलता के सामने इन अचेतनों की पहुँच कभी हो सकती है? नहीं, कभी नहीं।

* * *

हिन्दी के रसिक पाठक नज़ाकत-पसन्द उर्दू शायरों के क़लामों से भली भाँति परिचित होंगे, उस गुल-बदन माशूक के वर्णन पर रीझते होंगे, जिसके आरिज़ इसलिये नीले पड़ गये हैं, कि आशिकने ख्वाब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में उसकी तस्वीर का बोसा लिया था—स्वप्न में केवल उसके चित्रकी चुम्बन किया था :—

क्या नजाकत है कि आरिज उनके नीले पड़ गए।
हमने तो बोसा लिया था ख्वाब में तसबीर का॥

उस नाजुक-बदन से वे खुश होते होंगे, जिसके पैर मखमल के फर्श पर फिसला करते हैं—

नाजुकी वहीं तक खतम है जो कि यह फरमाते हैं।
फर्श मखमल पै कि जिनके प्रैर फिसले जाते हैं॥

वे विहारी की उस सुन्दरी को सुकुमारता की भी बेतरह दाद देते होंगे, जिसके पैर जमीन पर केवल शोभा के भार के कारण सूधे कहीं पड़ते—

भूषण भार सम्हारिये, क्यों वह तन सुकुमार।
सूधे पाँव न धरि परत, महि शोभा के भार॥

ऐसे सरस-हृदय पाठक संस्कृत कवियों के सुकुमारता-वर्णन के कतिपय स्थलों का निरीक्षण करें और देखें कि ये वर्णन क्या किसी तरह सौकुमार्य की कल्पना में किसी उर्दू शायर से घटकर हैं—ये कोमलता की कल्पना में किसी प्रकार उनसे क्या न्यून ठहरते हैं ?

महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बरी का वर्णन करते समय गन्धर्व-लोक की नायिकाओं के सौन्दर्य का थोड़ा-सा वर्णन किया है।

यत्र चालक्तकरसोऽपि चरणातिभारः, बकुलमालिका मेखला-कलनमपि गमनविघ्नकरम्, अङ्गरागगौरवमपि अधिकश्वास-निमित्तम्, अंशुकभारोऽपि ग्लानि कारणम्, अवतंसकुसुमधारण-मपि श्रमः, कर्णपूरकमलतरलमधुकरपक्षपवनोऽप्यायासकर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहाँ महावर का रस भी चरणों के लिये बड़ा भारी बोझा था; बकुलमालिका की मेखला बनाना चलने में विघ्न उपस्थित करना था; शरीर में अंगराग लगाना अधिक श्वास का कारण था। मल-मल का कपड़ा भी ग्लानि पैदा करता था; कानों में कमलों के रस लोभी चञ्चल भौरों के पंख से पैदा हुई हवा भी आयास करने वाली थी। इस स्वाभाविक वर्णन से सौन्दर्य तथा सुकुमारता की सुभग व्यञ्जना होती हैं। इस वर्णन में तनिक भी कृत्रिमता नहीं दीख पड़ती।

अब जरा इस सुन्दरी की सुकुमारता पर गौर कीजिये। कितना अलोकसामान्य सौन्दर्य उसके शरीर में विधाता ने भर रखा है। सुन्दरी के मन में इच्छा जागी कि फूल तोड़ूँ। उसने फूल को देखा, सो भी केवल एक बार। बस क्या था, उँगलियाँ लाल हो गईं। फूल तोड़ने की तो कथा ही दूर रहे, अभी तो केवल सुन्दरी ने उसे देखा है; परन्तु यहाँ तो केवल फूल के देखने से ही उस सुकुमारी की उँगलियाँ लाल हो उठी हैं। यदि वास्तव में उसने अपने कोमल करों से फूल तोड़ा होता, तो भगवान् ही जाने उँगलियों को कैसी दुरवस्था हो गई होती। उधर पैर में महावर लगाने की बात उठी और इधर पैर के तलवे लाल हो गये। बेचारों में महावर के बोझ सहने की ताकत कहाँ? यहाँ तो केवल लगाने की चर्चा छिड़ते ही तलवे चर्चा मात्र से ही लाल हो जाते हैं। नायिका भी क्या ही नाजुक बदन है। भला कहीं चर्चा से इतना प्रभाव पड़ता है; परन्तु हमारे कविजी की नायिका के तलवे केवल आशंका से लाल हो जाते हैं। अनुलेपनका स्मरण भी अंगों में अत्यन्त खेद पैदा कर रहा है। यदि अंगराग के लगाने से अंगोंमें क्रान्ति पैदा हो जाती, तो एक बात भी थी। यहाँ तो कुछ विचित्र ही हाल है। अभी भविष्य में अनुलेपन लगाया जायगा। बस, उसको याद ने ही शरीर में थकावट पैदा कर दी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और अधिक उसके विषय में क्या कहा जाय। उसके केशों की जो सुगन्ध है, वह भी बोझ सी हो गयी है। यदि कारे लटकारे केश भार से लगते, तो एक बात भी थी, यहाँ तो उनकी सुगन्ध भी भार का काम कर रही है। नायिका उनके भार से लची जाती है। कहिये, सुकुमारता की कितनी मधुर अभिव्यञ्जना है। वास्तवमें यह सुन्दरी सुकुमारता की सलोनी सूरत है; कोमलता की कमनीय मूरति है। निःसन्देह सौकुमार्य की यह कल्पना एकदम निराली है। कुवलयानन्द में चपलातिशयोक्ति के उदाहरण में दिया गया किसी अज्ञात कवि का यह पद्य कितना सुन्दर है—

आदातुं सकृदीक्षितेऽपि कुसुमे हस्ताग्रमालोहितं
लाक्षारञ्जनवार्तयापि सहसा रक्तं तलं पादयोः।
अङ्गानामनुलेपनस्मरणमप्यत्यन्तखेदावहं
हन्ताधीरदृशः किमन्यदलकामोदोऽपि भारायते॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(५)

महाकाव्य का विकास

लौकिक संस्कृत में कविता लिखने का उदय वाल्मीकि से हुआ। रामायण हमारा आदि काव्य है। वाल्मीकि हमारे आदि कवि हैं। क्रौञ्चवध की घटना जो साधारण दर्शकों के हृदय में थोड़ी-सी सहानुभूति उत्पन्न करने में ही समर्थ होती, वाल्मीकि के रससिक्त हृदय में शोकतरङ्गिणी के प्रवाहित होने का कारण बनती है और रसावेश में महर्षि का शोक श्लोक के रूप में परिणत हो जाता है। जिस अवसर पर 'मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वं' के रूपमें वाल्मीकि की करुणरसाप्लुत वैखरी वाणी स्खलित हुई उसी समय भारतीय काव्य की दिशा का परिचय सहृदयों को मिल गया—काव्य तरङ्गिणी रसकूल का आश्रय लेकर ही प्रवाहित होती रहेगी, इसकी पर्याप्त सूचना उसी समय मिल गई। वाल्मीकि का आदिकाव्य संस्कृत भारती का नितान्त अविराम निकेतन है। सरसता और स्वाभाविकता ही इसका सर्वस्व है। नाना रसों का मञ्जुल समन्वय, वर्णन में पूर्ण स्वाभाविकता, छोटे-छोटे मनोरम पदों के द्वारा भावपूर्ण मधुर अर्थोंको अभिव्यक्ति, इस काव्यकी विशिष्टता है। स्थान स्थान पर वाल्मीकि ने अपने काव्य को अलंकारों से भूषित करने का भी उद्योग किया है, पर इन अलङ्कारों से वस्तु का सौन्दर्य और भी अधिकता से फूटता है और रसिकोंके हृदय को हठात् मुग्ध बना देता है। अलङ्कारोंके द्वारा रस की अभिव्यक्ति होती है, शोभा का विकास होता है, गुण की गरिमा बढ़ती है। वाल्मीकि के काव्य में अलङ्कार को छटा कम सुहावनी नहीं है। गरुड़ की यह उपमा रामचन्द्रको उदात्तता के अनुरूप ही है—

राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुड़ो महान्
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् (राम० ।२१।२७)

सीताके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का यह प्रकार कितना अनूठा है—

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने (५।२०।१३)

यह समासोक्ति भी सरसता का भव्य निदर्शन है—

चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका

अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम् । (४।३०।४५)

वाल्मीकि ने बाह्य प्रकृति का बड़ा ही मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। उनके प्राकृतिक वर्णनों में सर्वत्र बिम्बग्रहण का प्राधान्य है। बिम्बग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उसके आसपास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट वर्णन देता है। यह तभी सम्भव है जब कविके हृदयमें प्रकृति के लिये सच्चा अनुराग रहता है। वाल्मीकि का यह हेमन्त वर्णन अनुपम है—

अवश्यायनिपातेन किञ्चित् प्रक्लिन्नशाद्वला

वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥

स्पृशंस्तु विपुलं शीत मुदकं द्विरदः सुखम् ।

अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥

वन की भूमि जिसकी हरी-हरी घास ओस गिरने से कुछ गीली सी बन गई है तरुण धूप के पड़ने से कैसी शोभा दे रही है। अत्यन्त प्यासा जङ्गली हाथी अधिक शीतल जल के स्पर्श मात्र से ही अपनी सूँड़ को सिकोड़ लेता है।

वाल्मीकि की काव्य शैली को हम 'रसमय पद्धति' कह सकते हैं रस ही उसका जीवन है। स्वाभाविकता उसका भूषण है। कालिदास ने इसी शैली को अपनाकर इतना यश अर्जन किया है। इस पद्धतिके दो श्रेष्ठ कवि हैं—वाल्मीकि और कालिदास।

कालिदास में वाल्मीकीय शैली का उदात्त उत्कर्ष मिलता है। कालिदास ने अपने आपको वाल्मीकि की कविता में लिप्त कर दिया था। उनसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बढ़कर रामायण का भक्त शायद ही कोई दूसरा कवि मिले। इसीलिए उनके काव्य में वाल्मीकि की मनोरम पद्यावली तथा मञ्जुल भाव पूर्णतया भरे पड़े हैं। वाल्मीकि को बिना समझे कालिदास का अध्ययन पूरा नहीं हो सकता। रघुवंश (१।४) में कालिदास ने 'पूर्व सूरिभिः' के द्वारा वाल्मीकि की ओर संकेत किया है। रघु० (१५।३३) से रामायण को 'कविप्रथम पद्धति' कहा गया है। वाल्मीकि के सरस हृदय का परिचय कालिदास ने सुन्दर शब्दों में इस प्रकार दिया है—

तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी
मुनिः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः
श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥

कालिदास को अपनी काव्यकला को पुष्ट रहने में वाल्मीकि से स्फूर्ति तथा प्रेरणा मिली है, यह सिद्धान्त सन्देहहीन है। कालिदास प्रकृति के प्रवीण पुरोहित थे। उनकी दृष्टि में प्रकृति तथा मानव का परस्पर सम्बन्ध विश्वमें विराजनेवाली भगवद्विभूति की एक विपष्ट अभिव्यक्ति है। प्रकृति मानव पर प्रभाव डालती है—वह मनुष्य के दुःखमें दुःखी होती है और सुखमें सुखी। मानव भी प्रकृति को अपनी चिरसंगिनी समझता है। शाकुन्तल के चतुर्थ अंक भी सुषमा इसी उभयपक्षीय सम्बन्ध की अभिराम अभिव्यक्ति में है। प्रकृतिका सूक्ष्म निरीक्षण कविकी विशेषता है वह प्रकृति के नानारूपों में रमता है तथा अपनी पैनी दृष्टि से व: अपनी सूक्ष्म अंशों को भी देखता है जिसे अन्य कवियों की आँखें देखकर भी नहीं देखती। कुमार सम्भव में कालिदास सूर्य के किरणों को झरनों के जलकणों पर पड़ने में इन्द्रधनुष का दृश्य देखते हैं—एक नहीं दो नहीं, प्रत्युत हजारों इन्द्रधनुष रविरश्मिरञ्जित जलकणों में अपना सप्तरंगी रूप सदा दिखलाया करते हैं,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परन्तु कालिदास की दृष्टि इन रंगों को पहचानती है और सन्ध्याकाल में सूरज के लटकने के कारण इन्द्रधनुष का अभाव उसे बेतरह खटकता है।

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिदूरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी॥

—कुमार ८।३१

यह उक्ति रूढ़ि का अनुसरण करनेवाले किसी कवि की नहीं है, बरन् उस कवि की है जो मुग्ध दृष्टि से प्रकृति के सौन्दर्यको देखकर अपने आपको भूल जाता है।

इस निसर्ग भावना के समान ही कालिदास की कविता की कमनीयता है। वह सरस, मधुर तथा प्रसादमयी पदावली का मनोरम शृङ्गार है। अलङ्कारों की झङ्कार का वह युग न था। रसमय बोली पर ही रसिक समाज अपने को निछावर करता था। कालिदास की कविता में अलङ्कारों का भव्य विन्यास है—परन्तु वह विन्यास इतना भड़कीला नहीं है कि पाठकों का वर्ण्य वस्तुको छोड़कर अलंकारों की छटा की ओर आकृष्ट हो जाय। उस अलङ्कार से वस्तु का सौन्दर्य निखरता है, उसका सलोनापन अधिक बढ़ता है, वह रसिकों के हृदय में बरबस घर कर लेती है।

कालिदास की शैली को परवर्ती कवियोंने बड़ी सफलता के साथ अपनाया है। अश्वघोष के ऊपर कालिदास की स्पष्ट छाप है। गुप्त काल के प्रशस्ति लेखक हरिषेण और वत्सभट्टि ने कालिदास के काव्यों का गहरा अनुशीलन कर उसी के आदर्श पर अपनी कविता लिखी थीं। इतना ही नहीं कालिदास के काव्यों की ख्याति भारतवर्ष के बाहर भी कम्बोज देश (आजकल का इण्डोचीन) तक फैली थी। भारतीय विद्वान् जिन जिन उपनिवेशों में धर्म और सभ्यता के प्रचार के लिये गये वहाँ उन्होंने कालिदास के काव्यों का प्रचार किया। इसीलिये सुवर्ण द्वीप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(सुमात्रा) और कम्बोज, जावा, आदि देशों में उपलब्ध संस्कृत शिला लेखों में कालिदास की कविता का पर्याप्त अनुकरण पाया जाता है। उदाहरण के लिये राजा भववर्मा के ६०० ई० के शिला लेख की कुछ पंक्तियों तथा कालिदास के श्लोक साथ ही दिये जाते हैं जिससे इस महाकवि का विपुल प्रभाव स्पष्ट देख पड़ता है:—

(१) शरत्कालाभियातस्य परानावृततेजसः।
द्विषामसह्यो यस्यैव प्रतापो न रवेरपि॥ (शिला लेख ६–)
दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे। (रघुवंश ४।४९)

(२) यस्य सेनारजोधूतमुज्झितालंकृतिष्वपि।
रिपुस्त्रीगण्डदेशेषु चूर्णभावमुपागतम्॥ शिला लेख–७
भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम्।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधिः कृतः॥ ४।८९

संस्कृत का साहित्यके विकास में महाकवि भारवि का नाम अलंकृत शैली विशेष उल्लेखनीय है। क्योंकि उन्होंने महाकाव्य लिखने की एक नयी शैली को जन्म दिया। इस शली को यदि हम 'अलंकृत शैली' कहें तो कुछ अनुपयुक्त न होगा। इस अलंकृत शैली की दो विशेषतायें हैं। (१) विषय सम्बन्धी और (२) भाषा सम्बन्धी। भारवि के पहले बाल्मीकि तथा कालिदास ने अपने महाकाव्य का जो विषय चुना था वह बहुत विस्तृत तथा परिमाण में विपुल है। कालिदास ने अपने रघुवंश में, केवल १९ सर्गों के भीतर, दिलीप से प्रारम्भ कर अग्निवर्ण तक रघुवंश की अनेक पीढ़ियों का वर्णन बड़ी सफलता के साथ किया है; परन्तु भारवि ने अर्जुन किरात के पास जाना और उनसे युद्धकर आस्त्र प्राप्त करने की स्वल्प कथा को २० सर्गों में कह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डाला है। उन्होंने अपने काव्य में पर्वत, नदी, सन्ध्या, प्रातः ऋतु तथा अनेक प्राकृततिक दृश्योंके वर्णन में अनेक सर्ग समाप्त कर दिये हैं और इस प्रकार इस छोटे से कथानक को इतना अधिक विस्तार प्रदान किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारवि के पहले काव्य का विषय विस्तृत होता था और प्राकृतिक वर्णन कम। परन्तु भारवि के बाद काव्य में कथा वस्तु अत्यन्त कम होने लगी और ऋतु वर्णन अधिक। यही बात शिशुपालवध और नैषध जैसे महाकाव्यों में भी पायी जाती है।

दूसरी बात भाषा-सम्बन्धी है। बाल्मीकि तथा कालिदास ने अपने महाकाव्यों सीधी,में सादी, चलती और प्रवाहपूर्ण भाषा का उपयोग किया है। उनकी कविता प्रसाद गुण से युक्त है। न तो उनमें कहीं क्लिष्ट कल्पना मिलती है और न अलंकारों की बेसुरी झनकार। इनकी कविता में अलंकारों के लाने का परिश्रमपूर्वक प्रयास नहीं किया गया। और न चित्र काव्य लिखकर गोमूत्रिका और कमल का ही प्रदर्शन किया गया है। उनकी कविता में जहाँ कहीं ये अलंकार आये हैं वहां स्वाभाविक रीति से अनायास प्रयुक्त हैं। उनसे कविता के समझने में कष्ट नहीं होता बल्कि उसका सौष्ठव और अधिक बढ़ जाता है। परन्तु भारवि ने एक ऐसी शैली को जन्म दिया, एक ऐसी रीति का काव्य में प्रयोग किया जो अलंकार के भार से लदी है, श्लेष के प्रयोग से अत्यन्त दुरूह बन गई है तथा चित्र काव्य का प्रदर्शन करने की बलवती इच्छा से पहेली के समान कठिन हो गई है। ऐसी ही शैली के जन्मदाता भारवि हैं। अलंकारों की प्रधानता होने के कारण ही इसको 'अलंकृत शैली' नाम प्रदान किया गया है।

इस अलंकृत शैली का उत्कर्ष माघ का प्रसाद है। अतः इस शैली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की उद्भावना में भारवि और माघ का नाम संश्लिष्ट रहेगा। अब कवियों के सामने दो प्रकार की शैलियाँ विद्यमान थीं (१) वाल्मीकि–कालिदास की रसमयी शैली और (२) भारवि-माघ की अलंकृत शैली। पिछले कवियों ने अपनी रुचिके अनुसार इन शैलियोंमें से अन्यतम को अपनाया है। पद्मगुप्त परिमलने 'नवसाहसांकचरित' में तथा श्रीहर्ष ने नैषध में प्रथम शैली को अपनाया है, परन्तु अपने काव्य को अलंकृत करने की प्रवृत्ति भी इनमें अत्यधिक है। 'अलंकृत शैली' काव्य का निदर्शन है रत्नाकर कृत "हरविजय"। इस परवर्ती युगके कवियोंकी दृष्टिमें नैसर्गिकताके स्थान पर 'आलंकारिकता का विशेष मूल्य है। बाह्य प्रकृति के वर्णन में भी भिन्नता आ गई है। कवि लोग प्रकृति के मार्मिक रूप के विश्लेषण में नितान्त असमर्थ हैं। उनमें **निरीक्षणा वस्तुतः** अभाव है। श्रीहर्ष जैसे विदग्ध कवि की दृष्टिमें सायंकाल में पश्चिम दिश शवरालय में प्रहरके अन्त की सूचना देनेवाले कुक्कुटों (मुर्गों) की कलंगी के कारण लाल रंग की दिखलाई पड़ती है—

> अस्ताद्रिचूडालयपक्कणालिच्छेकस्य किं कुक्कुटपेटकस्य।
> यामान्तकूजोल्लसितैः शिखौघैर्दिग् वारुणी द्रागरुणीकृतेयम्॥
>
> नैषध २२।५

इस श्लोक में कुक्कुट जाति की विशिष्टता निरीक्षण अवश्य है, परन्तु सन्ध्या की किसी मार्मिक विशेषता की ओर संकेत कहाँ है? इस वर्णन का हलकापन कालिदास के ऊपर दिये गये संन्ध्या वर्णन को तुलना करने से किसी भी आलोचक को स्पष्ट हो जायगा। कहाँ निर्झरकणमें इन्द्र-धनुष का निरीक्षण और कहाँ सन्ध्याकालीन आकाश को कुक्कुटों की कलँगी से लाल बतलाना!

कालिदास ने अनेक काव्यिक सूक्तियों को ... किया है जिनमें

Nepal Sanskrit University Valmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक रूढ़ि है द्रुतविलम्बित छन्दमें यमकमय ऋतुवर्णन। द्रुतविलम्बित चतुर्थ चरण में उन्होंने यमक का बड़ा ही सरस विन्यास कर रघुवंश के नवम सर्ग में वसन्तशोभा का वर्णन किया है। बस पिछले कवियों ने इस रूढि को अपना लिया, पर यमक का इतना अधिक प्रयोग किया कि रसवत्ता जाती रही। माघ के षष्ठ सर्ग का ऋतु वर्णन मेरे कथन का पर्याप्त उदाहरण है। कालिदास का यह यमक कितना स्वाभाविक तथा मनोरम है—

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरवका रवकारणतां ययुः।

इसके सामने माघ का कोई भी श्लोक खड़ा नहीं हो सकता। अलंकृत-शैली का विकट रूप तब प्रकट होता है, जब कवि एक ही प्रबन्ध में राम की तथा अर्जुन की कथा सुनाने के लिये कटिबद्ध हो जाता है। कभी कभी तो तीन-तीन अर्थ एक ही श्लोक से आदि से लेकर अन्त तक निकलते हैं। ऐसे द्व्यर्थी महाकाव्योंमें धनञ्जय का 'द्विसन्धान' विद्यामाधव का 'पार्वती-रुक्मिणीय' हरिदत्तसूरि का राधवनैषधीय', कविराजसूरिका 'राघवपाण्डीय' मुख्य हैं। त्र्यर्थी काव्य में राजचूड़ामणिदीक्षित का 'राघवयादवपाण्डीय' तथा चिदम्बर सुमतिका 'राघवपाण्डवयादवीय' मुख्य हैं। कहना व्यर्थ है कि इन काव्योंमें पाण्डित्य प्रदर्शन ही मुख्य है, हृदयको विकसित करने वाली कला की अभिव्यक्ति अत्यन्त न्यून है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६)

आदि कवि वाल्मीकि

तामस-हारिणी तमसा कलकल करती हुई बह रही थी, उसका पावन तट वृक्षों की स्निग्ध छाया से शीतल था। तीर्थ में न तो पङ्क कलङ्क की तरह चिपका था और न शैवाल दुष्टजनों की चित्तवृत्ति के समान उसे कलङ्कित कर रहा था। मनोऽभिराम जल सज्जनों के चित्त की भाँति नितान्त प्रसन्न था। महर्षि वाल्मीकि के हृदय को इस दृश्य ने लुभा लिया। उन्होंने स्नान कर, बल्कल पहन इस प्रकार के शान्त वन में भ्रमण करना शुरू किया। इसी समय क्रौञ्ची के करुण स्वर ने उनकी दयादृष्टि को अपनी ओर खींचा। उनके सामने क्रौञ्च का मृत कलेवर खून में लथपथ हो रहा था। इस दृश्य को देखकर ऋषि के कोमल चित्त में नैसर्गिकी करुणा का स्रोत प्रवाहित होने लगा—सुप्त करुणा इस दृश्य से बलात् जाग पड़ी। अकस्मात् उनके मुँहसे यह श्लोकात्मक वाग्वैखरी प्रस्खलित हुई—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

सम-अक्षरयुक्त चार पादों से मण्डित 'श्लोक' का जन्म हो गया। संस्कृत काव्य-कुमार का यही उदय है। महाकाव्य की भाविनी परम्परा का यही मूलस्रोत है।

× × × ×

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं तथा वाल्मीकीय रामायण आदि महाकाव्य है। कवि के सच्चे रूप की कल्पना हमने वाल्मीकि से सीखी है और महाकाव्य के महत्त्व को हमने रामायण से ग्रहण किया है। यदि वाल्मीकि न होते तो हम कवि के वास्तविक स्वरूप तथा अभिराम आदर्श को कहाँ से सीखते? और यदि उनकी प्रसन्न-गम्भीर रामायण हमें नहीं मिलती तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हम महाकाव्य के माहात्म्य तथा गौरव को कैसे पहचानते ? कवि और काव्य के विशुद्ध रूप की कसौटी है—आदिकवि का परम पावन, माननीय तथा मननीय, आदिकाव्य रामायण। कवि का पद ऋषि के समान है। ऋषि का भी अर्थ है—द्रष्टा। वस्तुओं के विचित्र भाव, धर्म तथा तत्त्व को भली भांति अवगत करनेवाला व्यक्ति ही 'ऋषि' के महनीय पद का वाच्य है। कवि का भी अर्थ है क्रान्तदर्शी—'कवयः क्रान्तदर्शिनः'—अर्थात् नेत्रोंके व्यापार से दूर रहनेवाले अतीत एवं भविष्य के पदार्थों को यथार्थ रूप से देखनेवाला पुण्यात्मा पुरुष। परन्तु दोनों में थोड़ा अन्तर है। वस्तु-तत्त्व के दर्शन होने से ऋषित्व की प्राप्ति हो जाती है; परन्तु जब तक वह अपने अनुभूत वस्तु-तत्त्व को शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं करता, तब तक वह 'कवि' नहीं कहला सकता। 'कवि' की कल्पनामें 'दर्शन' के साथ 'वर्णना' का भी मनोरम सामञ्जस्य है और इस कल्पना के जनक स्वयं महर्षि वाल्मीकि ही हैं। उन्हें वस्तुओं का निर्मल दर्शन नित्यरूप से था; परन्तु जब तक 'वर्णना' का उदय नहीं हुआ, तब तक उनकी 'कविता' का प्राकट्य नहीं हुआ। 'मा निषाद' पद्यके उच्चारण करते ही ब्रह्मा स्वयं ऋषिके सामने उपस्थित हुए और कहने लगे—महर्षे! तुम्हारी आर्ष चक्षु या प्रातिभ चक्षु का अब उन्मेष हो गया है। तुम आद्यकवि हो। भवभूति के स्मरणीय शब्दोंमें—

ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद् ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभाति। आद्यः कविरसि।

कवि के यथार्थ रूप को वाल्मीकि के दृष्टान्त के द्वारा प्रसिद्ध समालोचक-शिरोमणि भट्ट तौत ने इस पद्य में कितनी सुन्दरता से समझाया है—

दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ रूढ़ा लोके कविश्रुतिः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुनेः।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना ॥

संस्कृत काव्य-धारा की दिशा तो उसी अवसर पर निर्दिष्ट हो गयी, जब प्रेम-परायण सहचर के आकस्मिक वियोग से सन्तप्त क्रौञ्ची के करुण निनाद को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में छलक पड़ा था। काव्य का जीवन रस है, काव्य का आत्मा रस है—इसे साहित्य-संसार ने तभी सीख लिया, जब आदिकवि की आदि कविता के रसामृत का उसने पान किया; बारम्बार प्रीयमाण तथा नितान्त विस्मित शिष्योंने आश्चर्य भरे शब्दों में इस रहस्यभूत तत्त्व को पहचाना—

समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥

(१।२।४०)

महाकवि कालिदास ने इसी तथ्य की अभिव्यक्ति की है—

तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ॥

(रघुवंश १४।७०)

इन्हीं सूत्रों को पकड़कर आनन्दवर्धन ने स्पष्ट शब्दोंमें 'प्रतीयमान' अर्थ के सामान्यरूपेण काव्य में मुख्य होने पर भी रस को ही काव्य का आत्मा स्वीकार किया है—

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥

(ध्वन्यालोक १।५)

आदिकवि का यह समग्र काव्य ही कविता के सच्चे रूप को प्रकट कर रहा है। वाल्मीकीय-रामायण मनोरम उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विराट् भव्य प्रासाद है; परन्तु उसके बाह्य आवरणों में उसका विशुद्ध रसमय हृदय भली भांति झलक रहा है। इतने स्पष्ट रूप में कि उसकी सत्ता का परिचय हमें पद पद पर प्राप्त होता है। रामायण का हृदय है— रस-पेशल-वर्णन और इस वर्णन में सर्वत्र विद्यमान है--समग्र-काव्यगत व्यापक औचित्य। महाकाव्य का प्रथम तथा भव्य निदर्शन है--यही वाल्मीकीय-रामायण। रामायण का ही विश्लेषण कर आलङ्कारिकोंने 'महाकाव्य' का लक्षण प्रस्तुत किया है। 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' लक्षण का प्रथम तथा सबसे सुन्दर लक्ष्य है—रामायण। दण्डी का यह प्रसिद्ध लक्षण 'रामायण' को ही आदर्श मानकर लिखा गया है—

अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गै रनति विस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलंकृति॥

आनन्दवर्धन ने स्पष्टतः 'करुण' को ही रामायण का मुख्य रस कहा है। रामायण का आरम्भ 'करुण' से होता है तथा रामके सामने सीता के पृथ्वी भीतर अन्तर्धान होनेके दृश्य से रामायण का अन्त भी 'करुण' से ही होता है--

रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूचितः 'शोकः श्लोकत्वमागतः' इत्येवंवादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।

(ध्वन्यालोक पृ० २३७)

वाल्मीकि समग्र कवि-समाज के उपजीव्य हैं—विशेषतः कालिदास तथा भवभूति के। इन दोनों महाकवियोंने रामायण का गाढ़ अनुशीलन किया था और इनकी कविता में हमें जो रस मिलता है, उसमें रामायण की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्ति कम सहायक नहीं रही है। कालिदासका शृंगार-रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु उनका 'करुण' रस कम प्रभावशाली नहीं है। कालिदास ने उभयविध 'करुण' को उपस्थित कर उसे साङ्गोपाङ्ग रूप से दिखलाया है। पत्नी के लिये पति की करुणा का रूप हम रघुवंश के 'अज-विलाप' में पाते हैं और पति के निमित्त पत्नी की करुण परिवेदना 'रतिविलाप' के रूप में हमें रुलाती है। ताप से लोहा भी पिघल उठता है, तब कोमल हृदय मानव चित्त सन्ताप से मृदु बन जाय—क्या इस विषय में सन्देह के लिये स्थान है? 'अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।'—कालिदास के इन करुण वर्णनों में मानव-हृदय को प्रभावित करने की क्षमता है, परन्तु भवभूतिके उत्तरचरित में तो यह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया है। यह भवभूति का ही काम था कि उन्होंने सीता के वियोग में रामको रोते देखकर पत्थर को रुलाया है और वज्र के हृदय को भी विदीर्ण होते दिखलाया है—

'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।'

इन करुण उक्तियों की चोट से क्षुब्ध होकर गोवर्धनाचार्य ने भवभूति की भारती को 'भूधर की कन्या' बतलाया है। तभी तो उसके करुण-क्रन्दन को सुनकर पत्थर का हृदय पिघल गया था। प्यारी पुत्री का रुदन सुनक किस पिता का हृदय द्रवित होकर आंसुओं के रूप में नहीं बह निकलेगा?

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

भवभूति ने करुण को 'एको रसः'—मुख्य रस, अर्थात् समस्त रसों की प्रकृति माना है और अन्य रसोंको उसकी विकृति माना है। 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्'—इस कथन के मूल को हमें वाल्मीकि के अन्दर खोजना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाल्मीकि का यह महाकाव्य पृथ्वीतल को विदीर्ण कर उगनेवाले उस विराट् वट-वृक्ष के समान है, जो अपनी शीतल छायासे भारत के समस्त मानवों को आश्रय देता हुआ प्रकृतिकी विशिष्ट विभूति के समान अपना मस्तक ऊपर उठाए हुए खड़ा है। महाकाव्य प्रधानतया वीर-रस-प्रधान हुआ करते हैं, जिनमें युद्ध का घोष, विजय-दुन्दुभिका गर्जन तथा सैनिकों का तर्जन मानवों के हृदय में उत्साह तथा स्फूर्ति को उत्पन्न किया करते हैं, परन्तु रामायण का माहात्म्य वीर-रस के प्रदर्शन में नहीं है। किसी देव-चरित्र के वर्णन में भी रामायण का गौरव नहीं है; क्योंकि महर्षि वाल्मीकि ने जब आदर्श गुणों से मण्डित किसी व्यक्ति का परिचय पूछा, तब नारदजी ने एक मानव को ही उन अनुपम गुणोंका भाजन बतलाया—'तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।' यह नर-चरित्रका ही कीर्तन है। भारतीय गार्हस्थ्य-जीवन का विस्तृत चित्रण रामायण का मुख्य उद्देश्य-सा प्रतीत हो रहा है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी—आदि जितने आदर्शों की इस अनुपम महाकाव्य में आदिकवि की शब्द-तूलिका ने खींचा है, वे सब गृहधर्म के पट पर ही चित्रित किये गये हैं। इतना ही क्यों, राम-रावण का वह भयानक युद्ध भी इस काव्य का मुख्य उद्देश्य नहीं है। वह तो राम-जानकी—पति-पत्नी की परस्पर विशुद्ध-प्रीति को पुष्ट करने का एक उपकरण मात्र है। और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। रामायण को भारतीय सभ्यता ने अपनी अभिव्यक्ति के लिये प्रधान साधन बना रखा है और भारतीय सभ्यता को प्रतिष्ठा है—गृहस्थ-आश्रम। अतः यदि इस गार्हस्थ्य-धर्म की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये आदिकवि ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया तो इसमें आश्चर्य क्या है। रामायण तो भारतीय सभ्यता का प्रतीक ठहरा, दोनों में परस्पर उपकार्योपकारक-भाव बना हुआ है। एक को हम दूसरीकी सहायता से समझ सकते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदिकवि ने अपने काव्य-मन्दिर को पीठ पर प्रतिष्ठित किया है-- मर्यादा-पुरुषोत्तम महामानव महाराजा रामचन्द्र को। विभिन्न विकट परिस्थितियों के बीच में रहकर व्यक्ति अपने शीलके सौन्दर्य को किस प्रकार रक्षा कर सकता है, यह हमें वाल्मीकि ने ही सिखलाया है। यदि आदि कवि ने इस चरित्र का चित्रण न किया होता तो हमें मञ्जुल गुणोंके सामञ्जस्य का परिचय कहाँ से मिलता। भारतवासी मानव के आदर्श चरित्र को सुनने के लिये लालायित थे, वाल्मीकि ने उसी चरित्र को उनके सामने प्रस्तुत किया। यही कारण है कि इस काव्य की मोहकता कभी कम नहीं होती; इसके शब्दों में इतनी माधुरी है, चित्रों में इतयी चमक है कि मानव कान और मन इसके परिशीलन से एक साथ ही आप्यायित हो उठते हैं। रामायण को मैं जितनी बार पढ़ता हूँ उतनी ही बार उसमें नयी-नयी बातें सूझती हैं। इन सरल परिचित शब्दों में इतना रस-परिपाक हुआ है कि पढ़नेवाले का चित्त आनन्द से गद्गद हो उठता है। सच बात तो यह है कि रामायण के इन अनुष्टुपों को पढ़कर शताब्दियों से भारत का हृत्पिण्ड स्पन्दित हो रहा है और सदैव होता रहेगा।

राम के किन आदर्श गुणों के अङ्कन में यह लेखनी प्रवृत्त हो? उनकी कृतज्ञता का वर्णन किन शब्दोंमें किया जाय? वे तो किसी तरह किये गये एक ही उपकार से सन्तुष्ट हो जाते हैं; और अपकार चाहे कोई सैकड़ों ही करे, उनमें से एक का भी स्मरण उन्हें नहीं रहता। अपकारों को भूलने वाला हो तो ऐसा हो--

कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥
(२।१।११)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनका क्रोध तथा प्रसाद दोनों ही अमोघ हैं। अपने पापों के कारण हनन योग्य व्यक्तियों को बिना मारे वे नहीं रहते और अवध्य के ऊपर क्रोध के कारण उनकी आँख भी लाल नहीं होती—

नास्य क्रोधः प्रसादो वा निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति॥
(२।२।४६।

राम का शील कितना मधुर है। वे सदा दान करते हैं; कभी दूसरे से प्रतिग्रह नहीं लेते। वे अप्रिय कभी नहीं बोलते। साधारण स्थिति की बात नहीं, प्राण-सङ्कट उपस्थित होने की विषम दशा में भी राम इन नियमों का उल्लङ्घन नहीं करते।

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयान्न ब्रूयात् किञ्चिदप्रियम्।
अपि जीवितहेतोर्वा रामः सत्यपराक्रमः॥
(५।३३।३६)

अपने कुटुम्बियोंके प्रति उनका व्यवहार कितना कोमल तथा सहानुभूतिपूर्ण है। सीता के प्रति रामके प्रेम का वर्णन करते समय आदिकवि ने मानस-तत्त्वका बड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण प्रस्तुत किया है। राम सीता के वियोग में चार कारणों से सन्तप्त हो रहे हैं—सीता के प्रति उनके परिताप का कारण चतुर्मुखी है। धर्मशास्त्र आपत्ति में स्त्री की रक्षा करने का उपदेश देता है, परन्तु राम से यह न हो सका; अतः वह अबला स्त्री की रक्षा न कर सकने के कारण कारुण्य से सन्तप्त हैं। वन में सीता राम की आश्रिता थीं, परन्तु राम ने अपने आश्रित की रक्षा नहीं की; अतः आनृशंस्य—आश्रित जनों के संरक्षण-स्वभाव से सन्तप्त हैं। सीता उनकी पत्नी—सहधर्मिणी ठहरीं। उनके नष्ट होने पर उनके (श्रीरामके) धर्म का पालन क्योंकर हो सकेगा, अतः शोक से। वे उनकी प्रिया, प्रियतमा ठहरीं। परम सुख की साधिका ठहरीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस परम लावण्यमयी के नाश ने उनके हृदय में अतीत के उस आनन्दमय जीवन की मधुर स्मृति जगा दी है—इस कारण प्रेम से। इन नाना भावों के कारण सीता के वियोग में राम सन्तप्त हो रहे हैं—

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिः परितप्यते।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च॥
स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च॥

(५।१५।४८-४९)

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम ने भ्रातृप्रेम के विषय में जो उद्गार निकाले हैं, उनकी समता भला किसी अन्य सुशिक्षित कहलानेवाले देश के साहित्य में भी कभी मिल सकती है। 'यदि मनुष्य चाहे तो एक देश के बाद दूसरे देश में उसे विवाहयोग्य स्त्रियाँ मिल सकती हैं, प्रत्येक देश में मित्र भी मिल सकते हैं; परन्तु मैं उस देश को नहीं देखता, जहाँ सहोदर भ्राता मिल सकें।' धन्य हैं भगवान् रामचन्द्र! केवल इस उक्ति के अनूठे पर समस्त साहित्य को न्योछावर कर देनेका मन होता है। यह सूक्ति हृदय पर कितना अधिक चोट कर रही है—

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

रामचन्द्र की शरणागत-वत्सलता का चरम दृष्टान्त है—अपने मायावी शत्रु के भाई को उसी की नगरी में आश्रय प्रदान करना। उनके औदार्य की झलक रावणवध होने के बाद रावण के दाह-संस्कार के समय मिलती है। राम का कहना है कि रावण जिस प्रकार विभीषण का सगा सम्बन्धी है, उसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकार उनका भी है। रावण की मृत्यु के साथ-साथ उनका उसके प्रति वैर भी शान्त हो गया है। अब वैर लेने की क्या आवश्यकता रह गई ?

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥

भगवती जनक-नन्दिनी के शील-सौन्दर्य की ज्योत्स्ना किस व्यक्ति के हृदय को शीलता तथा शान्ति नहीं प्रदान करती। जानकी का चरित्र भारतीय ललना के महान् आदर्श का प्रतीक है। रावण के बारंबार प्रार्थना करने पर सीता ने जो अवहेलना-सूचक वचन कहा है, वह भारतीय नारी के गौरव को सदा उद्घोषित करता रहेगा। इस निशाचर रावण से प्रेम करने की बात तो दूर रही, मैं तो इसे अपने पैर से—नहीं-नहीं, बायें पैर से भी नहीं छू सकती—

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ॥
(५।२६।१०)

रावण की मृत्यु के अनन्तर राम ने सीता के चरित्र की विशुद्धि को सामान्य जनता के सामने प्रकट करने के लिये अनेक कटु वचन कहे। उन वचनों के उत्तर में सीता के वचन इतने मर्मस्पर्शी हैं कि आलोचकका हृदय आनन्दातिरेक से गद्गद हो जाता है। सीताजी के कतिपय कथनों पर दृष्टि डालिये। 'मनुष्य उसी वस्तु के लिये उत्तरदायी हो सकता है, जिसपर उसका अधिकार हो। मैं अपने हृदय की स्वामिनी हूँ। वह सदा आपके चिन्तन में निरत रहा है। अङ्गों पर मेरा काबू नहीं। वे पराधीन ठहरे। रावण ने बलात्कार से उनका स्पर्श कर लिया तो इसमें मेरा क्या अपराध है—

मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'मेरे चरित्र पर लाञ्छन लगाना कथमपि उचित नहीं है। मेरे निर्बल अंश को आपने पकड़कर आगे किया है, परन्तु मेरे सबल अंश को पीछे ढकेल दिया है। नारी का दुर्बल अंश है—उसका स्त्रीत्व और उसका सबल अंश है—उसका पत्नीत्व तथा पातिव्रत। नर-शार्दूल! आप मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं; परन्तु क्रोध के आवेश में आपका यह कहना साधारण मनुष्यों के समान है। आपने मेरे स्त्रीत्व को तो दोषारोपण करने के निमित्त आगे किया है, परन्तु आपने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि बालकपन में ही आपने मेरा पाणिग्रहण किया है, आपकी मैं शास्त्रानुमोदित धर्मपत्नी हूँ। मैं आपकी भक्ति करती हूँ तथा मेरा स्वभाव निश्छल और पवित्र है। आश्चर्य है आप-जैसे नर-शार्दूल ने मेरे स्वभाव को, भक्ति को तथा पाणिग्रणको पीछे ढकेल दिया, केवल स्त्रीत्व को आगे रखा है—

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्॥
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्॥

कितनी ओजस्विता भरी है इन सीधे-सादे निष्कपट शब्दों में। अनादृता भारतीय ललना का यह हृदयोद्गार कितना हृदय-वेधक है। सुनते ही सहृदय मनुष्य की आँखों में सहानुभूति के आँसू छलक पड़ते हैं।

राम और सीता का निर्मल चरित्र वाल्मीकि की कोमल काव्य-प्रतिभा का मनोरम निदर्शन है। रामायण हमारा जातीय महाकाव्य है। यह भारतीय हृदय का उच्छ्वास है। वाल्मीकि हमारे प्रतिनिधि कवि हैं। रामायण का जितना पठन किया जायगा, रामचरित्र का जितना चिन्तन किया जायगा, वह उतना ही मङ्गलप्रद होगा; क्योंकि सचमुच यह मानव-जीवन राम-दर्शन के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिना निरर्थक है। 'राम-दर्शन' उभय अर्थ में—राम-कर्तृक दर्शन (राम के द्वारा देखा जाना) तथा राम-कर्मक दर्शन (राम को देखना)। राम जिसको नहीं देखते, वह लोकमें निन्दित है। और जो व्यक्ति राम को नहीं देखता, उसका भी जीवन निन्दित है। उसका अन्तःकरण उसकी स्वयं निन्दा करने लगता है—

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं विगर्हते॥

राम की अनुकम्पा का उपाय है—राम का चिन्तन। इस राम-चरित्र के मनन की सामग्री है—वाल्मीकीय-रामायण। भगवान् से मेरी हार्दिक विनय है कि आदि कवि की निर्मल रसामृत-तरङ्गिणी प्रत्येक भारतोय के द्वार पर सुख तथा शान्ति को बहाती हुई उसे मङ्गलमय बनाये। तथास्तु।

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्॥

(७)

कालिदास की एक उपमा

महाकवि कालिदास अपनी उपमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं ही। सचमुच उनकी उपमाओं में अभिरामता, नवीनता तथा अनुरूपता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहती है। परन्तु उन्हें कभी प्रक्षेपकर्ताओं अथवा पुस्तक-लेखकों की कृपा से बड़ा ही विकृत रूप प्राप्त हो जाता है जिनसे उनका सारा सौन्दर्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नष्ट हो जाता है। एक ऐसी ही उपमा शाकुन्तल नाटक में वर्षों से विकृत रूप में चली आती है। उधर ही साहित्यिक पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जाता है।

शाकुन्तल नाटक के प्रथम अंक में राजा दुष्यन्त निरीह मृग के पीछे अपने रथ पर बैठा बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है कि इतने में अपने शिष्यके साथ एक तापस आकर चिल्ला उठता है—

आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।
न खलु न खलु बाणः संनिपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते।

अर्थात् यह आश्रम का मृग है। इसे मारना उचित नहीं। मृग के मृदु शरीर पर इस वाण को मत फेंकिये। जिस तरह रुई के ढेर में आग फेंकना ठीक नहीं वैसे ही इसके देह पर वाण का फेंकना नितान्त अनुचित है।

साहित्य के मर्मज्ञों से इस सुन्दर पद्य की अभिरामता की प्रशंसा करना व्यर्थ है। 'मालिनी' छन्द की शोभा कितनी सहृदय-शालिनी है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। मालिनी का विन्यासक्रम ही तापस की उतावली को कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त कर रहा है। 'हरिणकानां' में अनुकम्पा-सूचक 'क' का प्रयोग, 'अतिलोल' में 'अति' की ध्वनि, नितान्त वैषम्य के प्रकटी-करण के निमित्त दो 'क्व' पदोंका विन्यास—यह समग्र साहित्यक सामग्री इस पद्य को मञ्जुल बनाये हुए है।

परन्तु द्वितीय चरण की उपमा का रूप क्या है? किसी साहित्यक को मृग के कोमल शरीर के लिये 'तूल' की उपमा बुरी लगी। झट से उसने उसे बदलकर 'पुष्प' बना दिया और समझ लिया की फूल की यह उपमा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बड़ी फबती है। मृग के शरीर पर बाण का गिरना फूल के ऊपर आग रखने के समान है। यह परिवर्तन पुराना है। राजा लक्ष्मण सिंह ने भी 'ज्यों फूलन की राशि में उचित न धरन कृशानु' के द्वारा इसका अनुवाद किया है।

विचारणीय प्रश्न

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या उपमा ठीक है। हम इस उपमा को अनेक कारणों से आक्षेपका विषय मानते हैं। मुख्य कारण यह है कि 'फूल में आग को रखना' असाहित्यक उपमा है। फूल को आग से क्या लेना-देना? हाँ, फूल (कमल) को पाला झुलसा कर जला डालता है। जब तुषार जैसे शीतल उपाय से ही यह काम सध जाता है, तब कौन एक साहित्यज्ञ उसके लिये उष्णोपचार का प्रयोग करेगा? इस उपमा में कवित्व का नितान्त अभाव है। बाण फेंकते ही मृग के जल-भुन राख हो जाने का भाव कवि को अभीष्ट है, परन्तु फूल के ऊपर आग के अंगारे रखने का प्रभाव क्या होगा? उसके अंगों का यत् किञ्चित् जल जाना मात्र। उधर रुई में आग रखते ही वह एक क्षण में, पलक मारते-मारते राख का ढेर बन जाती है। स्पर्श में वह चिकनी भी है। अतः काव्य की दृष्टि से 'पुष्प' का प्रयोग नितान्त अनुपयुक्त है।

साहित्य परम्परा

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। संस्कृत में उपमा के लिये साहित्य-परम्परा है, जो वाल्मीकि-व्यास से आरम्भ होती है। कोई भी कवि इस परम्परा का उल्लंघन नहीं कर सकता। रामायण, महाभारत, तथा पुराण आदि उपजीव्य ग्रन्थों में सर्वत्र ही तूल और अग्नि का परस्पर साहचर्य उपमा के रूप में व्यवहृत किया गया है। विष्णु-पुराण में अग्नि के द्वारा रुई के ढेर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के ढेर जलाये जाने के समान ही गोविन्द के नामस्मरण से पापराशि के जलाने की बात कही गई है—

सकृत् स्मृतोऽपि गोविन्दो नृणांजन्मशतैः कृतम्ः।
पापराशिं दहत्याशु तूलराशिमिवानलः॥

(विष्णु० ६।७।७४)

इस साहित्य परम्परा के कालिदास परम अनुयायी थे। अन्य दृष्टान्तों से भी यह बात स्पष्ट है। इस प्रकार विचार करने से यही प्रतीत होता है कि कालिदास की यह अनुपम उपमा 'तूलराशाविवाग्निः' है, 'पुष्पराशाविवाग्निः' नहीं। अतः राजा साहबके अनुवाद में 'ज्यों तूलन की ढेर में उचित न धरन कृशानु' के समान कोई बढ़िया पाठ रखना उचित होगा।

---

(८)

कालिदास और शिक्षण समस्या

महाकवि कालिदास की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनके ग्रन्थोंके अनुशीलन करनेवालों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि मानव-जीवन से सम्बद्ध शायद ही कोई विषय होगा जिसे कविवर ने अछूता छोड़ दिया होगा। भारत की सभ्यता और संस्कृति कालिदास को अपना अभिव्यञ्जक पाकर कृतकृत्य हुई। भारतीय संस्कृति का जितना मनोरम चित्र इस महाकवि ने खींचा है उतना वाल्मीकि तथा व्यास को छोड़ कर शायद ही किसी कवि ने अपनी लेखनी से अभिव्यक्त किया है। शिक्षण के विषय में कालिदास के विचार नितान्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हीं का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिक्षण प्रकार

भारतवर्ष में तथा अन्य देशों में ही बालक तथा बालिका के शिक्षण का प्रारम्भ किया जाता है। चूड़ाकरण के अनन्तर विद्यारम्भ संस्कार किया जाता है। चूड़ाकरण तीसरे वर्ष तथा विद्यारम्भ पाँचवें वर्ष में किया जाता है। विद्या का प्रारम्भ लिपि के ग्रहण से ही होता है। जिस प्रकार नदी का आश्रय लेकर समुद्र प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार लिपि की शिक्षा पाकर वाङ्मय—शब्द समुदाय—में बालक प्रवेश कर सकता है। सबसे प्रथम शिक्षण का विषय होने से आज लिपि की समस्या नितान्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद् ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्॥

(रघुवंश ३ सर्ग, २८ श्लोक।)

इसके अनन्तर उपनयन का समय आता है। उपनयन होने पर ब्रह्मचारी अपने गुरु के पास जाता है और अपने वर्ण के अनुसार विद्याओं का अध्ययन करता है। कालिदास ने विद्याभ्यासी के लिये ब्रह्मचर्य की बड़ी आवश्यकता मानी है। रघु ने रुरुमृग के चर्म को धारण कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपने मन्त्रविद् पिता से अस्त्रविद्या को सीखा।

त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवी—
मशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत्।

(रघु० ३।३१)

शैशवकाल ही विद्याभ्यास के लिए उपयुक्त काल है; इसी समय रघुवंशीय नरेशों ने अपने वर्ण तथा मर्यादा के अनुसार शिक्षा का अनुशीलन किया (शैशवेऽभ्यस्त-विद्यानाम्—रघु० १।८)। षडंगों के साथ वेद भारतीय धर्म का मूल स्रोत है। वेद का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभ्यास प्रत्येक आर्य के लिये आवश्यक है। शैशवकाल के कुछ बीत जाने पर जब ब्रह्मचारी की बुद्धि परिपक्व होने लगती है, तब षडङ्गवेद की शिक्षा दी जाती है। वेदनुशीलन के पीछे काव्य इतिहास आदि पढ़ाया जाना चाहिये। इसीलिये वाल्मीकि ने कुश लव को शैशव के किञ्चित् बीत जाने पर षडङ्गवेद की शिक्षा दी और पीछे अपनी मनोरम कृति रामायण को पढ़ाया।

साङ्गं च वेदमध्याप्य किञ्चिदुत्क्रान्तशैशवौ।
स्वकृतिं गोपयामास कविप्रथमपद्धतिम् ॥

(रघु० १५।३३)

संस्कार का शिक्षा पर बड़ा प्रभाव होता है। पूर्वजन्म के संस्कार इस जन्म में फलीभूत होते हैं। कवि का कहना है कि बालकों के मस्तिष्क बे लिखी स्लेट की तरह नहीं हैं, प्रत्युत अपने जन्म के प्रवृत्तियों, संस्कारों तथा शक्तियों को साथ लेकर पैदा होता है और उसके जीवन में आगे चलकर ये ही प्रवृत्तियाँ वृद्धि को पाकर विकसित होती हैं। उमा के विषय में कवि का कथन है कि जिस प्रकार शरद्काल में हंसमालायें गङ्गा में आती हैं, रात के समय स्वाभाविक प्रकाश औषधियों में आता है, उसी प्रकार उपदेश के समय में स्थिरता से विद्या ग्रहण करनेवाली उमा के पास पूर्व जन्म की उपार्जित विद्यायें स्वतः आ गईं:—

तां हंसमालाः शरदीव गङ्गां
महोषधिं नक्तमिवात्मभासः।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले
प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥

(कुमार १।३०)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिक्षक

कालिदास ने आदर्श शिक्षक की बड़ी सुन्दर परिभाषा लिखी है। कुछ शिक्षक विद्याग्रहण करने में निपुण होते हैं और कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाने में चतुर होते हैं, परन्तु सब से श्रेष्ठ शिक्षक में इन दोनों गुणों का समन्वय होता है। वह विद्या के ग्रहण में तथा विद्या के संक्रमण में समभाव से समर्थ होता है—

शिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥

(मालविका० १।१६)

अध्यापन से अध्यापक की विद्या और भी प्रस्फुटित होती है। अध्ययन समय में खूब पढ़ी हुई भी विद्या अध्यापन के समय विलक्षण रूप से विकसित होती है। कालिदास का अनुभव इसी सिद्धान्त को पुष्ट कर रहा है। कविवर का कथन है "सुशिक्षितोऽसर्वः उपदेशेन निष्ठरातो भवति"—मालविका; प्रथम अङ्क।

जब शिक्षक को चतुर छात्र प्राप्त होता है, तब वह उसके उपदेश को इतनी जल्दी तथा सुन्दरता से सीख लेता है, कि जान पड़ता है कि विद्यार्थी ही शिक्षक को बदले में शिक्षा देता है। मालविका की शिक्षा के विषय में कालिदास का कहना है—

यद्यत् प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै।
तत्तद्विशेषकरणात् प्रत्युपदिशतीव मे बाला॥

(मालविका० १।१५)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिक्षा पात्रभेद से नाना प्रकार की होती है; सत्पात्र को शिक्षा देने से वह विलक्षण चमत्कार पैदा करती है। साधारण जल शुक्ति में पड़ते ही मोती बन कर चमक तथा दाम दोनों में बढ़ जाता है, परन्तु अन्यत्र वह साधारण जल ही रह जाता है। यही कारण है कि शिक्षक अपनी शिक्षा के निमित्त उपयुक्त अधिकारी की खोज में रहता है। कालिदास का कथन नितान्त स्पष्ट है—

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य॥

(मालविका)

सफल शिक्षा की कसौटी है योग्य आलोचकों की प्रशंसा पाना। वही उपदेश विशुद्ध तथा उपादेय माना जाता है, जो योग्य व्यक्तियों के सामने परीक्षा के अवसर पर मलिन नहीं होता—

उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।
श्यामायते न युष्मासु यः काञ्चनमिवाग्निषु॥

विद्यार्थी का कर्तव्य

विद्यार्थियों को अपनी शिक्षा को सफल बनाने के लिये अनेक नियमों का पालन अत्यावश्यक है। ब्रह्ममुहूर्त में उठना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है, विशेषतः छात्रों का क्योंकि उस समय में चित्त प्रसन्न रहता है, चेतनत प्रसन्नता को प्राप्त कर लेती है। कालिदास की यह उक्ति—

पश्चिमात् यामिनीयामात् प्रसादमिव चेतना।

इस विषय में नितान्त चमत्कारिणी है। सन्ध्याकाल में सन्ध्यावन्दन प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, विशेषतः विद्याभ्यासियों का। कविवर ने शङ्कर मुख से सन्ध्यावन्दन का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पार्ष्णिमुक्तवसुधास्तपस्विनः पावनाम्बुविहिताञ्जलिक्रियाः ।
ब्रह्म गूढमभिसायमादृताः शुद्धये विधिविदो गृणन्त्यमी ॥
(कुमार ८।४७)

आशय है कि तपस्वी लोग पवित्र जल से सूर्य को अञ्जलि देते हैं। पैर के अगले भाग पर खड़े रहते हैं तथा सन्ध्याकाल में गायत्री का उपांशु कर रहे हैं ['गूढ़' जप उसे कहते हैं जिसमें जिह्वा भी न हिलती हो अर्थात् मानसिक जप]

विद्यार्थियों को चाहिये कि वे अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कभी न करें (आज्ञां गुरूणां ह्यविचारणीया–रघु १४।४६), क्योंकि यदि पूज्य पुरुषों के प्रति अनादरभाव दिखलाया जायगा, तो वह उस व्यक्ति के कल्याण में महान् बाधक बनेगा।

प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ।
(रघु० १।७९)

इन नियमों के पालन करने पर ब्रह्मचारी को अपने उद्देश्य की सिद्धि प्राप्त करते देर नहीं लगती।

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षण का उद्देश्य क्या है ? किस फल को सिद्धि के लिये इतना क्लेश स्वीकार किया जाता है ? कालिदास का इन प्रश्नों का उत्तर बहुत स्पष्ट है। शिक्षण का सच्चा फल यही नहीं है कि वह सामाजिक जीवन की तथा जीविका-अर्जन का उपाय मात्र है। शिक्षित हो जाने पर व्यक्ति अपने उदर की पूर्ति अवश्य कर सकता है तथा समाज में अपना विशेष स्थान प्राप्त कर सकता है। परन्तु शिक्षा की इतनी ही आवश्यकता नहीं है, वह तो जीवन को पवित्र तथा विभूषित करने के लिये नितान्त समर्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पार्वती जन्म के अवसर पर हिमालय की प्रशंसा करते समय कालिदास ने स्पष्ट ही कहा है कि हिमालय पार्वती से उसी प्रकार पवित्र तथा विभूषित किये गये जिस प्रकार स्वर्ग गङ्गाजी से तथा विद्वान् पुरुष संस्कारयुक्त वाणी से।

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गगेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥

(कुमार १ । २८)

शास्त्रीय विद्या तब तक वह व्यवहार के रूप में न लाई जाय। केवल अध्ययन शब्द का जंजालमात्र है, परन्तु व्यवहार से समन्वित होने पर वह अध्ययन वास्तविक बनता है। कविवर की यह उक्ति—

विद्यामभ्यसनेनैव प्रसादयितुमर्हति (रघु० १ ।८८)

विशेष व्याख्या नहीं चाहती। गीता के 'ज्ञानं विज्ञानसहितं' का भी यही रहस्य है। ज्ञान केवल शाब्दिक तथा शास्त्रीय रहता है और विज्ञान व्यावहारिक तथा कार्यरूप में परिणत होता है। ज्ञान को विज्ञान के बिना समन्वय पाये उच्च उद्देश्य की पूर्ति कभी नहीं हो सकती।

इस प्रकार महाकवि कालिदास के शिक्षण विषयक विचार नितान्त उच्च, उपादेय तथा उत्साहवर्धक हैं! आशा है कि शिक्षकों का ध्यान इन रुचिर विचारों की ओर अवश्य आकृष्ट होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६)

कालिदास की राष्ट्रीय वाणी

भारतवर्ष एक अखण्ड राष्ट्र है। इस विशाल विस्तृत देश के नाना प्रान्तों में भाषा तथा स्थानीय वेश-भूषा की इतनी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है कि बाह्यदृष्टि से देखनेवालों को विश्वास नहीं होता कि देश में समरसता का साम्राज्य है, अखण्डता का बोलबाला है। परन्तु बाहरी आवरण को हटाकर निरखनेवालों की दृष्टि में इसकी सांस्कृतिक एकता तथा अभिन्नता का परिचय पद-पद पर मिलता है। कालिदास भारतीय-संस्कृति के हृदय थे। उनकी कविता में हमारी सभ्यता झलकती है; उनके नाटकों में हमारी संस्कृति विश्व के रंगमञ्च पर अपना भव्य रूप दिखलाती है। उनकी वाणी राष्ट्रीय भाव तथा भावना से ओतप्रोत है। इतिहास साक्षी है, इसी महाकवि ने आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले, जब भारत पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में आया, तब इस देशके सरस हृदय, कोमल वाणी तथा उदात्त भावना का प्रथम परिचय पाश्चात्य संसार को दिया। आज भी हम इस महाकवि की वाणी से स्फूर्ति तथा प्रेरणा पाकर अपने समाज को सुधार सकते हैं तथा अपना वैयक्तिक कल्याण सम्पन्न कर सकते हैं।

कालिदास ने अखण्ड भारतीय राष्ट्र की स्तुति की है। अभिज्ञान-शाकुन्तल की नांदी में कविवर ने शङ्कर की अष्टमूर्तियों का उल्लेख किया है। कुमारसम्भव (६।२६) में भी इन्हीं मूर्तियों का विस्तार कर जगत् के रक्षण-कार्य का स्पष्ट संकेत है। अष्टमूर्ति शङ्कर की उपासना कालिदासको अत्यंत प्रिय थी। इसमें एक रहस्य है। महादेव की आठ मूर्तियाँ ये हैं— सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। ये समस्त मूर्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। अतः इन प्रत्यक्ष मूर्तियों को धारण करनेवाले इस जगत् के चेतन नियामक की सत्ता में किसी को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सन्देह करने का अवकाश नहीं है। कालिदास वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रतिनिधि ठहरे। 'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः'—इन शब्दों में वैदिक कविने निरीश्वरवादी बौद्धों को कड़ी चुनौती दी है। भगवान् की प्रत्यक्ष दृश्य-मूर्तियों में अविश्वास रखना किसी भी चक्षुष्मान् को शोभा नहीं देता। इतना ही नहीं, इस श्लोक में भारत की एकता तथा अखण्डता की ओर भी संकेत किया गया है। शिव की इन मूर्तियों के तीर्थ इस देश के एक छोए से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। चन्द्रमूर्ति की प्रतिष्ठा दो तीर्थों में है—एक है भारत के पश्चिम में काठियावाड़ का सोमनाथ-मन्दिर और दूसरा है भारत के पूरब में बंगाल का चन्द्रनाथ क्षेत्र। सोमनाथ का प्रसिद्ध तीर्थ प्रभासक्षेत्र में है और चन्द्रनाथ का मन्दिर चटगाँव से लगभग चालीस मील उत्तर-पुर्व में एक पर्वत पर स्थित है। नेपाल के पशुपतिनाथ यजमान मूर्ति के तीर्थ हैं। यही कारण है कि पशुपतिनाथ लिङ्ग-रूप में नहीं हैं; बल्कि मानुषी विग्रह के रूप में विराजमान हैं। पञ्च तत्त्वों की सूचर मूर्तियों के क्षेत्र दक्षिण-भारत में विद्यमान हैं। क्षिति लिंग शिवकांची में एकाम्रेश्वरनाथ के रूप में है। जललिंग जम्बुकेश्वर के शिव-मन्दिर में मिलता है। तेजोलिङ्ग अरुणाचल पर है, वायुलिङ्ग कालहस्तीश्वर के नाम से विख्यात है, जो दक्षिण के तिरुपति बालाजी के कुछ ही उत्तर में है। आकाशलिङ्ग चिदम्बर के मन्दिर में है। 'चिदम्बर' का अर्थ ही है 'चिदाकाश'। इसी से मूल-मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है। आकाश स्वयं मूर्तिहीन ठहरा।

इस प्रकार भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की ये आठों मूर्तियाँ भारत के सबसे उत्तरीय भाग नेपाल से लेकर दक्षिण चिदम्बर तक तथा काठियावाड़ से लेकर बंगाल तक फैली हुई हैं और इनकी उपासना का अर्थ है समग्र भारतवर्ष की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आध्यात्मिक एकता की उपासना। महाकवि ने राष्ट्रीय एकता की ओर इस श्लोक में गूढ़ रूप से संकेत किया है।

राष्ट्र का मंगल किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? क्षात्रबल तथा ब्राह्मतेज के परस्पर सहयोग से ही किसी देश का वास्तव कल्याण हो सकता है। ब्राह्मण देश के मस्तिष्क हैं, उन्हींके विचार तथा मार्ग पर समग्र देश आगे बढ़ता है। क्षत्रिय राष्ट्र के विजयी बाहु हैं, जिनकी संरक्षता में राष्ट्र पनपता है। मस्तिष्क और बाहु के इस परस्पर सम्पर्क तथा सहाय्यका माहात्म्य वैदिक ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है। सम्राट् त्रैवृष्ण त्र्यरुण और महर्षि वृश जान के आख्यान का यही रहस्य है। कालिदास ने इस तत्त्व का स्पष्टीकरण बड़े सुन्दर शब्दों में किया है :—

स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाथर्वविदा कृतक्रियः।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा ॥

—(रघु० ८।४)

अथर्ववेद के जाननेवाले गुरु (वशिष्ठ) के द्वारा संस्कार कर दिये जाने पर यह अज शत्रुओं के लिये और भी दुर्द्धर्ष हो गया। ठीक ही है, शस्त्र-तेज से युक्त ब्रह्म-तेज आग-हवा के संयोग के समान प्रदीप्त हो उठता है।

भारतीय-राजाओं का जीवन परोपकार की एक दीर्घ परम्परा होता है। कालिदास ने महाराज अज के वर्णन में कहा है कि उसका धन ही केवल दूसरों के उपकार के लिये न था, प्रत्युत उसके समस्त सद्गुण दूसरों का कल्याण-सम्पादन करते थे; उसका बल पीड़ित के भय तथा दुःख का निवारण करता था तथा उसका शास्त्राध्ययन विद्वानों के सत्कार और आदर करने में लगाया गया था—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम्।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना ॥

—रघु० ८।३।

उस प्रतापशाली राजा (अज) का बल दुखियों के दुख को हटाने के लिये, ज्ञान विद्वानों के सत्कार के लिये था। यहाँ तक कि उसका धन ही नहीं, किन्तु उसके गुण भी दूसरों के उपकार के लिये थे।

राजा की सार्थकता प्रजापालन से है। 'राजा प्रकृति-रञ्जनात्'—हमारी राजनीति का आदर्श वाक्य है। प्रकृति का अनुरञ्जन ही हमारे शासकों का प्रधान लक्ष्य होता था। और प्रजा का कर्त्तव्य था राजा की भक्ति के साथ अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा। समाज वर्णाश्रम धर्म पर प्रतिष्ठित होकर ही श्रेय साधन कर सकता है, कालिदास की यह स्पष्ट सम्मति प्रतीत होती है। भारत का वास्तव कल्याण दो ही वस्तुओं से हो सकता है—त्याग से और तपोवन से। जिस दिन त्याग का महत्व कम हो जायगा तथा तपोवन के प्रति हमारी आस्था नष्ट हो जायगी, उसी दिन न हम भारतीय रहेंगे और न हमारी सभ्यता भारतीय रहेगी। आर्य-संस्कृति की मूल-प्रतिष्ठा इन्हीं दो पीठों पर है। भारतीय राष्ट्र के संरक्षक रघु के जन्म का कारण नगर से बहुत दूर, वसिष्ठ के पावन आश्रम में निवास तथा गोचारण है। रघु का उदय गोमाता के वरदान का उज्ज्वल प्रभाव है। इसी प्रकार दुष्यन्त-पुत्र भरत का जन्म और पोषण हेमकूट पर्वत पर मारीचाश्रम में होता है। भारतीय राष्ट्र के संचालक पावन तपोवन और पवित्र त्याग के वायुमण्डल में पले हैं और बड़े हुए हैं। हमारे राजाओं ने जिस दिन कालिदास के इस सन्देश को भुला दिया, उसी दिन उनका अधः पतन आरम्भ हो गया।

रघु की तेजस्विता तथा अग्निवर्ण की स्त्रैणता का कितना सजीव चित्र कालिदास ने खींचा है। रघु था त्याग का उज्ज्वल अवतार और अग्निवर्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था स्वार्थ-परायणता की सजीव मूर्ति। रघु की वीरता तथा उदारता भारतीय नरेश का आदर्श और रघु हिन्दू राजा का प्रतीक है, तो अग्निवर्ण पतित-पातकी भूपालों का प्रतिनिधि है। राजभक्त प्रजा प्रातःकाल अपने राजा का मुख देखकर 'सुप्रभातं' मनाने आती थी; परन्तु अग्निवर्ण मंत्रियों के लाखों सिफारिश रहने पर कभी दर्शन देता था खिड़की से लटकाकर अपने पैर का। प्रजा राजा का मुख देखने के लिये आती थी पर पैर का दर्शन पाकर लौटती थी,। वाह री विडम्बना!

गौरवाद्यदपि जातु मंत्रिणां दर्शनं प्रकृतिकांक्षितं ददौ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम्॥

(रघु०, १९। ७)

मंत्रियों के बहुत कहने-सुनने पर प्रजा की इच्छापूर्ति के लिये उस (अग्निवर्ण) ने दर्शन तो दिया, पर वह भी झरोखे से अपने पैरों को नीचे लटकाकर!

अग्निवर्ण पार्थिव भोगविलास का दास था। उसे फल भी अच्छा ही मिला—राष्ट्र तथा देश का सत्यानाश। अग्निवर्ण के दुश्चरित्र का कुफल कवि ने बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में अभिव्यक्त किया है। इस चित्र को देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कालिदास ने राष्ट्र के मंगल की भावना बड़े ही मार्मिक शब्दों में प्रकट की है—

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः॥

राजा प्रजाओं के उपकार में लगें, वेद की पवित्र वाणी का महत्व बढ़े और स्वयंभूत शिवा-युक्त भगवान् नीलकंठ हमें मुक्त करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आशा है हम कालिदास की राष्ट्रीय वाणी का मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर स्वराष्ट्र, स्वदेश तथा स्वधर्म की अभ्युन्नति में दत्तचित्त होंगे। आज दो हजार वर्षों के अनन्तर भी हम यदि इस महाकवि के इस दिव्य सन्देश को सुनकर कार्य में लाने का प्रयत्न करेंगे, तो हमारा अभ्युदय अवश्यम्भावी है। भारत का वास्तव कल्याण इसी में है।

---

(१०)

कालिदास की अध्यात्म-भावना

महाकवि कालिदास भारत राष्ट्र के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी कविता में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति ने अपनी पूरी अभिव्यक्ति प्राप्त की है। धर्म हमारी संस्कृति का मूल मन्त्र है। कालिदास ने इस मन्त्र के रहस्य को भली भाँति पहचाना और अपने ग्रन्थों में इसका उद्घाटन भली भाँति किया।

वैदिक धर्म तथा दर्शन ने इस जगत् के उदय, सञ्चालन तथा विनाश के निमित्त विश्व के अन्तर्निमित एक विशाल दैवी शक्ति को अङ्गीकार किया है। विना उस शक्तिमान की इच्छा के जगत् का छोटा से छोटा कार्य भी संचालित नहीं हो सकता। कालिदास ने उस शक्तिमान को 'शिव' के रूप में ग्रहण किया है। 'शिव' जगत् के मङ्गलकारक तत्व का सामान्य अभिधान है। विश्व का प्रत्येक कण उनकी सत्ता की सूचना देता है। उनकी आठों मूर्तियाँ प्रत्यक्ष हैं जिनका अनुभव कर हम 'शिव' का साक्षात्कार करते हैं। पृथ्वी, जल, तेजस्, वायु आकाश—ये पाँचो तत्व, काल के नियामक सूर्य-चन्द्र तथा आत्मा—ये ही शङ्कर की आठ मूर्तियां हैं (शाकुन्तल की नान्दी)। कालिदास शङ्कर के भक्त अवश्य हैं परन्तु उनकी कल्पना नितान्त उदात्त है। वैदिक धर्म अन्य धर्मों की अपेक्षा उदात्त है परन्तु कालिदास के ग्रन्थों में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदात्ततम रूप दृष्टिगोचर होता है। कालिदास शङ्कर के उपासक होकर भी विष्णु तथा ब्रह्मा में उसी प्रकार श्रद्धा तथा आदर रखते हैं। वे क्षुद्र, संकीर्ण साम्प्रदायिकता से कोसों दूर थे। भगवान् की मूर्ति एक ही है जो गुणों की विषमता के कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर का रूप धारण करती है। तत्व वस्तुतः एक ही है। त्रिविध रूप उपाधिजन्य है। इन त्रिदेवों में ज्येष्ठ और कनिष्ठ भाव सामान्य है। कभी हरि शङ्कर के आदि में विद्यमान रहते हैं तो कभी हर हरि के आदि में और कभी ब्रह्मा हरि और हर दोनों के आदि में स्थित हैं। ऐसी दशा में किसी एक देवता को बड़ा मानना तथा दूसरों को छोटा बतलाना नितान्त अनुचित तथा तर्कहीन है। कालिदास का कथन संशयहीन है।

एकैव मूर्तिर्विभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ॥

(कु० ७—४४)

आकाश से गिरनेवाला वर्षाकालीन जल एक रस ही होता है; परन्तु जिन स्थानों पर वह गिरता है उन स्थानों की विशेषता के कारण नाना रसों को प्राप्त करता है। ब्रह्मतत्व भी ठीक इसी प्रकार समरस है। उनमें किसी प्रकार का विकार नहीं है।

परन्तु सत्व, रज तथा तम के सम्पर्क में आकर नाना कार्यों के निर्वाह के निमित्त वह विष्णु, ब्रह्मा तथा शङ्कर नाम धारण करता है (रघु० १०।१७) ब्रह्मतत्व अमेय है—उसके मान का पता नहीं चलता। कालिदास ने इसी लिये ब्रह्म की समता समुद्र से की है। समुद्र दस दिशाओं को व्याप्त किये हुए है। भिन्न-भिन्न समय में नाना अवस्थाओं को प्राप्त कर विद्यमान रहता है। अतः उसके रूप तथा प्रमाण का पता नहीं चलता। भगवान् विष्णु ने भी नाना स्थावर-जङ्गम का रूप धारण कर अपनी महिमा से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समग्र विश्व को व्याप्त कर रखा है। इनके भी रूप का पता हमारी बुद्धि से नहीं चलता कि उनका स्वरूप किस प्रकार का है (ईदृक्तया) तथा वह कितना बड़ा है (इयत्तया)—

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयं ईदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥
(रघु० १३—५)

भगवान् नित्य परिपूर्ण हैं। अतः, उनके लिये कोई भी वस्तु अनवाप्त—(अप्राप्त) तथा प्राप्तव्य नहीं है। जो व्यक्ति पूर्ण नहीं होता वह नाना प्रकार के वस्तुओं को कामना किया करता है, परन्तु जो स्वयं 'सर्वसमः' 'सर्वरसः' है उसके लिये किसी वस्तु की कामना की अपेक्षा ही नहीं रहती। ऐसी दशा में जन्म कर्म का क्या कारण है? क्या कारण है कि भगवान् इस भूतल पर जन्म ग्रहण करते हैं तथा नाना प्रकार के कर्मों का सम्पादन करते हैं। इस प्रश्न का उत्तर कालिदास के शब्दों में 'लोकानुग्रह' है। वे करुणा-निकेतन ठहरे, उनकी समग्र प्रवृत्तियाँ परार्थ ही होती हैं—

अनवाप्तमवाप्तव्यम् न ते किञ्चन विद्यते।
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥
(रघु० १०—३१)

इस श्लोक के प्रथम अंश की भावना के लिये हमारे कविवर गीता के निम्नलिखित श्लोक के ऋणी हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
(गीता ३—१२)

कालिदास के धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों पर गीता का प्रचुर प्रभाव दृष्टिगत होता है। गीता का 'कर्मयोग' कालिदास को सर्वथा मान्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस संसार से आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये कालिदास का निर्दिष्ट मार्ग यही है–

त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पित कर्मणाम्।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयः संनिवृत्तये॥

(रघु० १०–२७)

इस सारगर्भित श्लोक को हम कालिदास के दर्शन की 'चतुःसूत्री' मान सकते हैं। इसके चारों चरण नवीन तत्व की व्याख्या करते हैं। भगवान् की प्राप्ति के तीन साधन हैं—(१) भगवान् में चित्त को लगाना, (२) भगवान् को सब कर्मों को समर्पण करना, (३) संसार के सब विषयों से राग रहित होना। चित्तावेश का प्रधान उपाय है योग का अभ्यास। योग-विधि के द्वारा चित्त एकाग्र होकर भगवान् में लगाया जा सकता है। कालिदास 'योग' के बड़े भारी पक्षपाती हैं। उनका कहना है—

योगिनोयं विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तरवर्तिनम्।
अनावृत्ति भयं यस्य पदमाहुर्मनीषिणः॥

(कुमार० ६—७७)

रघुवंश के अष्टम सर्ग के आरम्भ में रघु को योग-विधि के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का वृत्तान्त प्रामाणिक रूप से वर्णित है। समग्र कर्मों को भगवान् के समर्पण करना चाहिये। कर्मों में फलरूपी विषदन्त है जिसे तोड़ना नितान्त आवश्यक है। समस्त कर्म बन्धनरूप हैं। जब कर्मों का फल भगवान् को समर्पण किया जाता है तब वे बन्धनरूप नहीं होते, प्रत्युत वे मोक्ष के सहायक बन जाते हैं। भागवत की यह सूक्ति इसी अर्थ की पोषिका है।

रागादि तभी तक स्तेन (चोर) हैं, चित्त को चुराकर इधर-उधर अस्तव्यस्त किया करते हैं, गृह तभी तक कारागार है—बन्धन भूत है, मोह तभी तक पैर का बन्धन है, जब तक हे कृष्ण! तुम्हारे सेवक हम नहीं बन जाते। भगवान् के परम सेवक बनते ही यह दशा बदल जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसी प्रकार कर्म बन्धन जरूर है, परन्तु ज्यों ही उनका फल भगवान् के चरणों में अर्पित कर दिया जाता है त्यों ही उनका दोष दूर हो जाता है। बन्धन होने की अपेक्षा वे मोक्ष में सहायक होते हैं।

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥

तीसरी बात है रागहीनता, वैराग्य। संसार के विषयों में प्रेम-भाव नितान्त बन्धन है। वैराग्य अत्यन्त आवश्यक है। 'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः—' पतञ्जलि ने चित्तनिरोध के उपायों में वैराग्य को विशेष महत्व दिया है।

इन उपायों से भगवान् की प्राप्ति होती है, जिससे सद्यः मोक्ष का उदय होता है। वह महत्वपूर्ण श्लोक गीता के निम्नलिखित श्लोक पर अवलम्बित है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि कौन्तेय प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ १८।६५

कालिदास पक्के अद्वैतवादी थे। शास्त्र तथा आगमों ने सिद्धि के भिन्न-भिन्न मार्ग बतलाये हैं; परन्तु इन मार्गों का चरम लक्ष्य भगवान् ही है। जिस प्रकार गंगाजी का जल भिन्न-भिन्न मार्गों से प्रवाहित होता है, परन्तु उनका अन्तिम स्थान समुद्र में ही वे गिरते हैं तथा अपना जीवन सफल बनाते हैं—

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे॥ (रघु० १०।२६ ॥)

भारतीय धर्म तथा दर्शन का अन्तिम लक्ष्य है—भिन्नता में अभिन्नता की अनुभूति नाना में एकता का साक्षात्कार। कालिदास ने अपने श्लोक में इसी उदात्त भावना को स्थान दिया है। इस श्लोक के भावको जितना ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्य में परिणत किया जायगा उतना ही मंगल होगा। पारस्परिक विरोध तथा संघर्ष का तभी अन्त होगा, जब इस भावना को प्रश्रय दिया जायगा। वर्तमान काल में इसकी बड़ी आवश्यकता है। कालिदास का सन्देश विश्वजनीन है जगन्मंगलकारक है।

---

(११)

कालिदास का सन्देश

अस्पृष्टदोषा नलिनीव दृष्टा
हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः।
प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या
न कालिदासादपरस्य वाणी ॥

—(श्री कृष्णकवि)

महाकवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि थे। वे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के प्रतीक थे। इस विशाल तथा विराट देश की संस्कृति कालिदास की वाणी में बोलती है तथा उनके नाटकों में अपना मनोहर भव्यरूप दिखला कर मानवमात्र का मनोरञ्जन करती है।

अंगरेजों के प्रथम समागम के समय आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले भारतवर्ष संसार की दृष्टि में संस्कृतिविहीन अन्धकार पूर्ण देश समझा जाता था, परन्तु कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल, ने ही भारत के प्रति विश्व के आदर को जगाने का श्लाघनीय कार्य किया। आज़ से ठीक १५५ वर्ष पहले सर विलियम जोन्स ने शाकुन्तल का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया तथा इसी अनुवाद का जर्मन भाषा में अनुवाद जार्ज फारष्टर ने दो साल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पीछे १७९१ ई० में किया। इसी अनुवाद को पढ़कर जर्मनी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि गेटे ने अपना जो हृदयोद्गार प्रकट किया था, वह साहित्य के प्रेमियों से छिपा हुआ नहीं है। केवल संस्कृत के ज्ञाता पण्डितजन इस संस्कृतानुवाद को पढ़कर उस विदेशीकवि के अभिप्राय को भली-भांति समझ सकते हैं:—

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत्।
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो—
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे! शाकुन्तलं सेव्यताम्॥

इस अनुवाद ने हमारा बड़ा उपकार किया। पाश्चात्य जगत् ने भली भाँति समझा कि भारतीयों की संस्कृति बड़ी ऊँची है तथा हृदय के कोमल भावों को प्रकट करने की निपुणता उसके कवियों में विशेष है। कालिदास का ऋण हमारे ऊपर बहुत ही अधिक है।

हमारी राष्ट्रीय भावना में और विश्व कल्याण की भावना में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। भारतीय कवि राष्ट्र का मंगल चाहता है और साथ-ही-साथ वह संसार की मंगल कामना किया करता है। कालिदास के काव्यों में इस सामञ्जस्य का मनोरम रूप दृष्टिगत होता है। इस महाकवि की वाणी में जिस प्रकार आदि कवि वाल्मीकि की रसमयी धारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार उपनिषदों तथा गीता का अध्यात्म भी मञ्जुलरूप में अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। भारतीय ऋषियों के द्वारा प्रचारित चिरन्तन तथ्यों को मनोभिराम शब्दों में भारतीय जनता के हृदय में उतारने का काम कालिदास की कविता ने सुचारुरूप से किया है। कविता का प्रणय-मानव हृदय की शाश्वति प्रवृत्तियों तथा भावों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आलम्बन कर लिया गया है। यही कारण है कि इसके भीतर ऐसी उदात्त भावना विद्यमान है जो भारतीयों को ही नहीं, प्रत्युत मानवमात्र को सदा प्रेरणा तथा स्फूर्ति देती रहेगी। इस भारतीय कवि की वाणी में इतना रस भरा हुआ है, इतना जोश भरा हुआ है कि दो सहस्र वर्षों के दीर्घ काल ने भी उसमें किसी प्रकार का फीकापन नहीं उत्पन्न किया। उसकी मधुरिमा आज भी उसी प्रकार भावुकों के हृदय को रसमय करती है जिस प्रकार उसने अपनी उत्पत्ति के प्रथम क्षण में किया था। वैदिक धर्म तथा संस्कृति का जो भव्य रूप इन काव्यों में झलकता दिखाई देता है वह बहुत सजीव है। मानव-कल्याण के निमित्त इन काव्यों में मधुर शब्दोंमें उपदेश दिये गये हैं। आज का मानव-समाज परस्पर कलह तथा वैमनस्य से छिन्न-भिन्न हो रहा है। प्रबल समरानल के भीतर संसार की अनेक जातियाँ अपना सर्वस्व स्वाहा कर रही हैं। विश्व नितान्त उद्विग्न है। मानवता के लिये यह महान संकट का समय है। इस सम्बन्ध में भी कोई विचार करने की बात है कि कालिदास का क्या सन्देश है।

मानवजीवन में नैराश्यवाद के लिये स्थान नहीं है। जो लोग इसे मायिक बतला कर निःसार तथा व्यर्थ मानते हैं उनका कथन किसी प्रकार प्रामाणिक नहीं है। जो जीवन हम बिता रहे हैं तथा जिससे हम अपना अभ्युदय प्राप्त कर सकते हैं उसे सारहीन क्यों मानें? कालिदास का कहना है कि देहधारियों के लिये मरण ही प्रकृति है। जीवन तो विकृति मात्र है। जन्तु श्वास लेता हुआ यदि एक क्षण के लिये भी जीवित है तो यह उसके लिये लाभ है—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥

—(रघु० ८।८७)

इस जीवन को महान् लाभ मानना चाहिये तथा इसे सफल बनाने के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिये अर्थ, धर्म तथा काम का सामाञ्जस्य उपस्थित करना चाहिये । इस त्रिवर्ग में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है (त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भामिनी—कुमार० ५।३८) परन्तु अर्थ और काम अपनी स्वतन्त्रता और सत्ता बनाये रखने के लिये धर्म से विरोध करते हैं। धर्म को दबाकर अर्थ अपनी प्रबलता चाहता है। और धर्म का ध्वस्त कर काम भी अपना प्रभाव जमाना चाहता है। इस विश्व में आज धर्म-विरोधी अर्थ और काम का नग्न नृत्य हो रहा है। धर्म कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के शब्द में 'धर्म से अविरुद्ध काम' भगवान् की ही विभूति है। कालिदास ने अपने काव्यों तथा नाटकों में 'धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि लोकेषु भरतर्षभ' इस गीतावाक्य की सत्यता अनेक प्रकार से प्रमाणित की है ।

मदनदहन का रहस्य यही है। मदन चाहता था कि पार्वती के सुन्दर रूप का आश्रय लेकर समाधिनिरत शङ्कर के हृदय पर चोट करें। प्रकृति में वसन्त का आगमन होता है। लता वृक्ष पर फूल-फूल कर अपना प्रेम जताने लगती है। एक है कुसुमपात्र में भ्रमरी अपने सहचर के साथ मधु पान करती हुई मत्त हो जाती है। व्याधि के समान मदन संसार को त्रस्त करने लगता है। वह अपनी आकांक्षा बढ़ाता है और शङ्कर पर आक्रमण कर बैठता है। जगत् के कल्याण, आत्यन्तिक संगल का नाम 'शङ्कर' है।

विश्व कल्याण मदन की उपासना में नहीं है, प्रत्युत उसके धर्म विरोधी रूप के दबाने में है। काम अपनी प्रभुता चाहता है। विश्व कल्याण पर अपना मोहन बाण छोड़ता है। शंकर अपना तृतीय नेत्र खोलते हैं। तृतीय नेत्र 'ज्ञान नेत्र' है। वह प्रत्येक मनुष्यके भ्रूमध्य में विद्यमान है। परन्तु हमें सुप्त होने से उसके अस्तित्व का पता नहीं चलता। शंकर का वह नेत्र जाग्रत् है। इसी ज्ञान की ज्वाला में मदन का दहन होता है। धर्म से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विरोधवाला काम भस्म की राशि बन जाता है। शंकर को वश में करने के लिये पार्वती तपस्या करती है। धर्मसिद्धि का प्रधान साधन है— तपस्या। विना अपना शरीर तपाये तथा बिना हृदय स्थित दुर्वासना जलाये धर्म की भावना जाग्रत् नहीं होती। कालिदास ने काम का जलना दिखा कर यही चिरन्तन तथ्य प्रकट किया है। पार्वती ने घोर तपस्या कर अपना अभीष्ट प्राप्त किया। इस प्रकार कालिदास की दृष्टि में काम तथा धर्म के परस्पर संघर्ष में हमें काम को दबा कर उसे धर्मानुकूल बनाना ही पड़ेगा। जगत् का कल्याण इसी भावना में सिद्ध होता है।

व्यक्ति तथा समाज का गहरा सम्बन्ध है। व्यक्ति की उन्नति वाञ्छनीय वस्तु है, परन्तु इसकी वास्तविक स्थिति समाज की उन्नति पर अवलम्बित है। व्यक्तियों के समुदाय का ही नाम समाज है। कालिदास वैयक्तिक उन्नति की अपेक्षा सामाजिक उन्नति के पक्षपाती हैं। उनका समाज श्रुति-स्मृति की पद्धति पर निर्मित समाज है। वह त्याग के लिये धन इकट्ठा करता है। सत्य के लिये परिमित भाषण करता है। यश के लिये विजय की अभिलाषा रखता है, प्राणियों तथा राष्ट्रों को पददलित करने के लिये नहीं। गृहस्थी में निरत होता है सन्तान उत्पन्न करने के लिये; कामवासना की पूर्ति के लिये नहीं। कालिदास द्वारा चित्रित नरपति भारतीय समाज का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं। वे शैशव में विद्या का अभ्यास करते हैं, यौवन में विषय के अभिलाषी हैं। वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण कर सारे प्रपञ्च से मुँह मोड़ कर निवृत्ति मार्ग के अनुयायी बनते हैं तथा अन्त में योग द्वारा अपना शरीर छोड़कर परम पद में लीन हो जाते हैं। यह आदर्श भारतीय समाज की अपनी विशेषता है—

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

—(रघुवंश, १।७—८)

उपनिषदों में धर्म के तीन स्कन्ध प्रतिपादित हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान। इनके अतिरिक्त 'तपः' की महिमा से भारतीय धार्मिक साहित्य भरा पड़ा है। कालिदास ने इन स्कन्धों का विवेचन स्थान-स्थान पर बड़ी ही मनोरम भाषा में किया है। **यज्ञ** का महत्त्व वे स्वीकार करते हैं। पुरोहित यज्ञ के रहस्यों का ज्ञाता होता है। राजा दिलीप यह बात भली भाँति जानते हैं कि वसिष्ठ जी के यथाविधि सम्पादित होम द्वारा जल की वृष्टि होती है जो अकाल से सूखने वाले शस्य को हरा-भरा बनाती है—

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवति शस्यानामवग्रहविशोषिणाम्॥

—रघु० १।६२

नरराज तथा देवराज—दोनों का काम परस्पर संयोग से मानवों की रक्षा करना है। नरराज पृथ्वी को दूह कर उससे सुन्दर वस्तुएँ प्राप्तकर यज्ञ सम्पादन करता है और देवराज इसके बदले में शस्य उत्पन्न होने के लिये आकाश से दूहकर पुष्कल वृष्टि करता है। इस प्रकार ये दोनों अपनी सम्पत्ति का विनिमय कर उभय लोक का कल्याण करते हैं—

दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवम्
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्॥

(—रघु० १।२६)

यज्ञपूत जल के द्वारा अनेक अलौकिक पदार्थों की सिद्धि हमारे महाकवि को मान्य है। रघु सर्वस्वदक्षिण यज्ञ के अनन्तर कौत्स की याञ्चा पूरा करने के लिये जिस रथ पर बैठते हैं उसे वसिष्ठ जी ने मन्त्रपूत जल से अभि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मन्त्रित कर दिया है और उसमें आकाश, नदी, पहाड़, आदि सब विकट तथा विषम मार्गों पर चलने की क्षमता है (रघु०) इस प्रकार कालिदास की दृष्टि में सामाजिक कल्याण के साधनों में यज्ञ का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

दान की गौरवगाथा गाते हुए हमारे महाकवि कभी अन्त नहीं होते। समाज आदान-प्रदान की भित्ति पर अवलम्बित है। धनी-मानी व्यक्ति का सञ्चित धन केवल उन्हीं की आवश्यकता अथवा व्यसन पूरा करने के लिये नहीं है, प्रत्युत उसका सदुपयोग उन निर्धनों की उदर-ज्वाला शान्त करने में भी है जो समाज के विशेष अङ्ग हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में डंके की चोट कहा गया है कि दैवीवाग् मेघगर्जन के रूप में सदा पुकारती है—दाम्यत (अपने इन्द्रियों को वश में रखो), दत्त (दान दो) तथा दयध्वम् (दया करो) यदि हमलोग इस दैवी वाणीकी पुकार सुनकर भी अनसुनी कर देते हैं, तो यह अपराध हमारा है। दान के बिना समाज छिन्न-भिन्न होकर ध्वस्त हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं। कालिदास ने रघुवंश के पञ्चम सर्ग में दान का बड़ा ही उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। वरतन्तु के शिष्य कौत्स गुरु-दक्षिणा के लिये तब रघु के पास आते हैं जब उन्होंने अपनी सारी सञ्चित सम्पत्ति यज्ञ में दे डाली है। रघु अलकापुरी पर चढ़ाई कर यक्षराज कुबेर से धन पाने का उद्योग करते हैं। इतने में कोश में सोने की वृष्टि होती है। राजा का आग्रह है कि शिष्य सम्पूर्ण धन ले जाय और उधर शिष्य का आग्रह है कि वह अपने काम से अधिक एक कौड़ी भी न छूवेगा, दाता और ग्रहीता का यह आग्रह आश्चर्यजनक वस्तु है। यह दृश्य इस भारत मही के इतिहास में भी दुर्लभ है, अन्य देशों की तो कथा ही क्या!

तप—तप भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र है। दूसरी आराधना से मनुष्य अपनी सारी कामनाओं की ही पूर्ति नहीं करता, प्रत्युत परोपकार के यथावत् सम्पादन को योग्यता भी अर्जन करता है। तप की महिमा से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमारा साहित्य भरा पड़ा है। कालिदास ने इसका महत्त्व बड़े ही भव्य शब्दों में अभिव्यक्त किया है। मदन-दहन के अनन्तर भग्न मनोरथ पार्वती ने तप को ही अपना एकमात्र अवलम्बन बनाया। जगत् की समग्र आशाएँ छोड़कर वह इसकी सिद्धि में लग गई। उसकी तपस्या इतनी कठोर थी कि कठिन शरीर से उपार्जित मुनियों की तपस्या उसके सामने नितान्त प्रभाहीन तथा प्रभावविहीन जान पड़ती। प्रकृति के नाना प्रकार के विषम कष्ट झेलकर वह अपनी कामना सिद्धि में सफल होती है। कालिदास ने पार्वती के तप का रहस्य विशेष रूप से प्रकट किया है--

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः

--(कुमारसम्भव ५।२)

पार्वती की तपस्या का फल था—'तथा विधं प्रेम', अलौकिक उत्कट कोटि का प्रेम और 'तादृशः पतिः' उस प्रकार का मृत्यु को जीतनेवाला महादेव रूप पति। जगत् के समस्त पति मृत्यु के वश हैं। एक ही व्यक्ति मृत्युञ्जय है। महादेव ही मृत्यु को भी जीतकर अपनी स्वतन्त्र स्थिति धारण कर सदा विराजते हैं। आज तक कोई भी कन्या मृत्युञ्जय को पति रूप में पाने में समर्थ न हुई। और वह प्रेम भी कैसा? कालिदास ने 'तथाविधं' शब्द के भीतर गम्भीर अर्थ की अभिव्यञ्जना की है। शङ्कर ने पार्वती को अपने मस्तक पर स्थान दिया है। आदर की भी एक सीमा होती है। पत्नी को इतना उच्च स्थान प्रदान करना सत्कार का महान उत्कर्ष है, आदर की पराकाष्ठा है। अन्य देवताओं में किसी ने अपनी पत्नी को इतना गौरव नहीं प्रदान किया। भारतीय कन्याओं के लिये गौरी की यह साधना अनु-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करणीय वस्तु है। यही कारण है कि हमारी कन्याओं के सामने एक ही महान् आदर्श है, और वह है पार्वती का। भारतीय समाज में 'गौरीपूजा' का रहस्य इसी महान् स्वार्थ-त्याग के भीतर छिपा हुआ है। तपस्या ने गौरी को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। तपस्या करनेवाले ऋषियों के भीतर विचित्र तेज छिपा रहता है, वे स्वयं शान्ति में रमते हैं, सूर्यकान्त मणि की भाँति वे छूने में बड़े कोमल हैं, परन्तु दूसरे तेज के द्वारा अभिभूत होते ही वे जलता हुआ तेज वमन करते हैं। वे किसी की धर्षणा सह नहीं सकते। यही है तपस्या का प्रभाव—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥

—शाकुन्तल, २।७

आजकल समर ज्वाला में दग्ध होनेवाले संसार के लिये कालिदास का सन्देश विशेष रूप से उपादेय है। विश्व के मानवों को चाहिये कि इस सुन्दर सन्देश को सुनकर अपने जीवन में उसका बर्ताव करें। इस सन्देश को हम तीन तकारादि शब्दों में प्रकट कर सकते हैं—त्याग, तपस्या तथा तपोवन। विश्व की शान्ति भङ्ग करनेवाली वस्तुका नाम 'स्वार्थपरायणता' है। समस्त जातियाँ अपने बड़प्पन का स्वप्न देखती हुई अपने क्षुद्र स्वार्थ की सिद्धि में निरत दिखाई पड़ती हैं। भयानक संघर्ष का यही निदान है। इसका निवारण त्याग और तपस्या की साधना के बिना कथमपि सम्पन्न नहीं हो सकता। पाश्चात्य जगत् ने नगर को विशेष महत्त्व दिया और उसका अनुकरण कर पूर्वी जगत् भी नागरिक सभ्यता की उपासना में दत्तचित्त हो चला, परन्तु कालिदास की सम्मति में तपोवन की गोद में पली हुई सभ्यता ही मानव का सच्चा मङ्गल कर सकती है। जिसने हमारे देश को 'भारतवर्ष' जैसा मंजुल नाम प्रदान किया उस दौष्यन्ति भरत का जन्म मारीच के आश्रम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में हुआ। गोचारण का फल रघु के जन्म के रूप में प्रकट हुआ। दिलीप ने अपनी राजधानी का परित्याग कर वसिष्ठ के आश्रम में निवास किया तथा गुरु की गाय की विधिवत् परिचर्या की। उसी का फल हुआ इन्द्र जैसे वज्रधारी के मानमर्दक वीर का उदय। तपोवन में अलौकिक शान्ति तथा शक्ति का साम्राज्य छाया रहता है। प्रकृति निखिल विषमता को दूर कर समता के अभ्यास में निरत रहती है। हिंसक पशु भी इसी नैसर्गिक शान्ति के कारण अपनी प्रकृति भुलाकर परस्पर मैत्रीभाव से निवास करते हैं। कालिदास की दृष्टि में प्रपञ्च के पचड़े में पच मरनेवाला जीव दया का पात्र है। सुख में आसक्त जीव को तापस उसी दृष्टि से देखता है जिससे स्नान करनेवाला व्यक्ति तैल मर्दन करनेवाले व्यक्ति को, शुचि अशुचि को, प्रबुद्ध सुप्त व्यक्ति को, स्वच्छन्द गतिवाला पुरुष बद्ध पुरुष को —

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि ॥

—शाकुन्तल ५, श्लो० ११।

जब तक यह संसार त्याग और तपस्या का आश्रय लेकर तपोवन की ओर न मुड़ेगा, तब तक इसकी अशान्ति कभी न बुझेगी, पारस्परिक कलह कभी न समाप्त होगा तथा वैमनस्य का नाश कभी न होगा।

कालिदास का सन्देश उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना के अन्तिम श्लोक में एक ही पद्य के रूप में प्रकट किया जा सकता है:—

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजा प्रजा के हित साधन में लगे। शास्त्र के अध्ययन से महत्त्वशाली विद्वानों की वाणी सर्वत्र पूजित हो। शक्तिसम्पन्न भगवान् शङ्कर समग्र जीवों का पुनर्जन्म दूर कर दें। इससे सुन्दर सन्देश और क्या हो सकता है? राजा का प्रधान कार्य प्रजा का अनुरञ्जन है। अराजक राज्य के दुर्गुणों से हम भली भाँति परिचित हैं। राजा के बिना समाज उच्छिन्न हो जायगा, परन्तु राजा का प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये समाज की रक्षा। राष्ट्र की उन्नति तथा अभ्युदय के मार्ग पर ले जानेवाले उसके विद्वज्जन ही होते हैं। अतः उनकी सरस्वती का पूजन तथा समादर पवित्र कार्य है। राजा क्षात्रबल का प्रतीक है तथा विद्वज्जन ब्राह्म तेज के प्रतिनिधि हैं। इन दोनों के परस्पर सहयोग से ही देश का सच्चा कल्याण हो सकता है। ब्राह्मतेज तथा क्षात्रबल का सहयोग पवन तथा अग्नि के समागम के समान नितान्त उपादेय तथा फलप्रद है—

स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाथर्वविदा कृतक्रियः।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा॥

(रघु०, ८।४)

समाज की सुव्यवस्था होने पर व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। इस प्रकार समाज तथा व्यक्ति का परस्पर अभ्युदय भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य है। सम्राट् विक्रम की सभा के रत्न महाकवि कालिदास का त्याग तथा तपस्या का यह सन्देश जगती तल पर प्रत्येक प्राणी के हृदय को सदय तथा सहानुभूतिमय बनावे, यही हमारी भगवान् से प्रार्थना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१२)

बाणभट्ट के काव्यगुरु

महाकवि बाणभट्ट का नाम संस्कृत-साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। संस्कृत के महत्त्वशाली महाकवियों में—विशेषतया गद्यकाव्य-प्रणेताओं में—इनका स्थान अतीव उन्नत है। बाणभट्ट की "कादम्बरी" सहृदयों के गले का हार है। ऐसा सुन्दर तथा सरस गद्यकाव्य—जिसमें शब्द, अर्थ की मनोरम मैत्री हो—संस्कृत-साहित्य में दूसरा नहीं है। अतः बाणभट्ट की समधिक प्रसिद्धि होनी स्वाभाविक है; परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि, हम उनके काव्यगुरु के विषय में नितान्त अनभिज्ञ हैं। जिनके विषय में "बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्" को लोकोक्ति प्रसिद्ध है, जो "कविता-कामिनी के पञ्चवाण (कामदेव) कहे गये हैं, (पञ्चबाणस्तु बाणः" —जयदेव), जिनके हृदय में लगने पर कवि-कुरङ्गों का मन्द पदक्रम भी (पैर रखना तथा पद रचना करना) चपलता को सूचित करने वाला है ("हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः। भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥" —त्रिलोचन), उन्हीं गद्यकाव्य के परमाचार्य, संस्कृत-गद्यशैली के परिष्कर्ता, कवि-मूर्धन्य बाणभट्ट के काव्यगुरु के नाम से भी हम अपरिचित हैं। क्या यह परिताप का विषय नहीं है?

बाणभट्ट ने अपना विस्तृत परिचय, अपने ग्रन्थों में, दिया है। "हर्षचरित" में, आरम्भ के तीन उच्छ्वासों में, कविने अपने वंश का तथा अपना व्यक्तिगत परिचय, कुछ विस्तार के साथ, दिया है। परन्तु खेद का विषय है कि, इस विस्तृत वर्णन में आप अपने गुरु को बिलकुल भूल गये हैं। बाणभट्ट को शास्त्रों तथा वेद-वेदाङ्गों की समुचित शिक्षा मिली थी; इसके लिये हम केवल अनुमान ही नहीं करते, प्रत्युत लिखित प्रमाण भी पाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपनी बाल्यावस्था का वर्णन करते समय बाण ने, अपनी शिक्षा–दीक्षा के विषय में, विशेष रूप से, नहीं कहा है; परन्तु हर्षवर्धन से साक्षात्कार होने पर आपने अपने विद्या–वैभव की सूचना दी है। बात यह थी कि इनकी स्वच्छन्दचारिता की कहानो हर्ष के कानों तक पहुँच चुकी थी; और हर्ष के कान किसी ने, बाण के विरुद्ध, खूब भर रखे थे। अतः जब ये दरबार में हाजिर किये गये, तब उपस्थित गण्य-मान्य पुरुषों के समक्ष हो, इनके प्रति अप्रतिष्ठा के भाव दिखलाते हुए, महाराजा हर्ष ने कह डाला —"महानयं भुजङ्गः"—यह बड़ा भारी भुजङ्ग (परस्त्री-लम्पट) है! इस अनुचित वचनके कथन ने बाण को मर्माहत कर डाला। ये नितान्त दुःखी हुए। हृदय में विचारने लगे कि क्या कारण है कि महाराज ने मेरे विषय में, अनुचित शब्दों का प्रयोग किया है? बचपन में मेरा उचित रीति से उपनयन संस्कार किया गया, तदन्तर अच्छे गुरु के पास रहकर मैंने वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन किया; सदाचार से जोवन बिताया। परन्तु फिर भी ये महाराज "भुजङ्ग" कह कर मेरा परिचय दे रहे हैं! बाणभट्ट के इस अनुताप मिश्रित वचन से पता चलता है कि, बालकपन में इन्हें वेद-वेदाङ्ग की शिक्षा मिली थी; परन्तु किस गुरु के पास रहकर इन्होंने विद्याध्ययन किया था (जिसका प्रत्यक्ष फल हमें "कादम्बरी" के प्रणयन में मिलता है), इससे हम नितान्त अनभिज्ञ हैं। यदि यहीं 'पर बाण अपने गुरु के नाम तथा जीवनवृत्त से हमें परिचित करा दिये रहते, तो अत्यन्त आनन्द का विषय होता। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। बाण ने केवल अपने अध्ययन को सामान्य चर्चा करके ही इससे अपना पिण्ड छुड़ाया; गुरु का परिचय नहीं दिया। यदि ऐसा होता, तो हम अनेक काल्पनिक सिद्धान्तों का अन्दाजा लगाने से बिलकुल बच जाते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हर्षचरित" के अनन्तर विरचित "कादम्बरी" के आरम्भ में बाण की आत्मकथा का किञ्चित् उपक्रम हमें मिलता है। आरम्भ के पद्यों में बाणभट्ट ने अपने वंश का थोड़ा-सा परिचय दिया है, जो किसी अंश में हर्षचरित के वर्णन की पूर्त्ति करता है। डाक्टर पिटर्सन "कादम्बरी" के इन आरम्भिक पद्यों को बाणनिर्मित कहने में सन्देह करते हैं। परन्तु यह उचित नहीं है; क्योंकि महाकवि क्षेमेन्द्र ने (जो संस्कृत की कवि मण्डली से खूब परिचित थे), इसी का "जयन्ति बाणासुरमौलिलालिताः" वाला पद्य बाण का बतलाया है। अतः इन पद्यों को हम, बाण विरचित होनेसे, प्रमाण मान सकते हैं। सौभाग्यवश इसी उपोद्घात के चौथे पद्य में हम बाण के काव्यगुरु का किञ्चित् परिचय पाते हैं। वह पद्य नीचे दिया जाता है—

"नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं
सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिका-
विटंक-पीठोल्लुलितारुणांगुलि॥"

इस पद्य में बाण ने "भर्वु" के पादपङ्कज को प्रणाम किया है। यह पद्य देव नमस्कार के अनन्तर तथा खल वर्णन के पहले आया है। अतः इससे अनुमान किया जा सकता है कि, यह बाण के गुरु का नाम होगा। टीकाकार भानुचन्द्र भी इसे गुरु का ही नाम बतलाते हैं। टीकाकार ने "भर्वोः" के स्थान पर "भत्सोः" पाठान्तर का उल्लेख किया है। अतः टीकाकार के अनुसार बाण के काव्यगुरु का नाम "भर्वु" या "भत्सु" था। इस सामान्य उल्लेख के अतिरिक्त बाण-रचित ग्रन्थों में कहीं भी इनका विशेष वर्णन नहीं मिलता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब इस विषय की जानकारी के लिये संस्कृत के सूक्ति-संग्रहों पर दृष्टि डालनी चाहिये। इन संग्रहों में अनेक कवियों के नाम तथा श्लोक संगृहीत हैं, जिनकी जानकारी के लिये हमारे पास कोई भी उपयुक्त साधन नहीं है। सबसे प्राचीन सूक्तिग्रन्थ—सदुक्तिकर्णामृत—में "भर्वु" कवि का नाम मिलता है तथा उनकी एक रचना भी दी हुई है। शार्ङ्गधर पद्धति में "भर्चु" नामक कवि के दो श्लोक उपलब्ध होते हैं। सुभाषितावलि में "भश्चु" नामक कवि के तीन पद्य संगृहीत मिलते हैं, जिनमें से दो पद्य तो वे ही हैं, जिन्हें शार्ङ्गधर-पद्धति में "भर्चु" कवि द्वारा रचित बतलाये गये हैं। अतः इन सुप्रसिद्ध तीन सूक्तिग्रन्थों के अवलोकन से इस कवि के तीन भिन्न-भिन्न नाम उपलब्ध होते हैं—भर्वु, भर्चु तथा भश्चु। ये अभिधान एक ही नाम के भिन्न-भिन्न रूपान्तर प्रतीत होते हैं। अतः इनका निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि, "भर्वु" नामक कवि की प्रसिद्धि, प्राचीन काल में, पर्याप्तमात्रा में थी। ये ही, कविवर भानुचन्द्र के कथनानुसार, महाकवि बाणभट्ट के गुरु थे।

प्राचीन काल में "भर्वु" की रचना की खूब प्रशंसा होती थी; इसके लिये हमारे पास यथेष्ट प्रमाण भी उपलब्ध हैं। इन पद्यों में "आहुतोऽपि सहायैः" वाला श्लोक संस्कृत साहित्य में, विशेष आदर के साथ, उदाहृत है। आनन्दवर्धनाचार्य ने इस श्लोक को "ध्वन्यालोक" में (पृ० ३८) उदाहरण के तौर पर उदाहृत किया है; तथा इसके ऊपर निम्नलिखित आलोचनात्मक टिप्पणी भी दी है—"अनुक्तनिमित्तायामपि विशेषोक्तौ "आहूतोऽपि" इत्यादौ व्यंग्यस्य प्रकरणसामर्थ्यात् प्रतीतिमात्रम्"। आनन्दवर्धन संस्कृत साहित्य के विज्ञ आलोचक हैं। उनके द्वारा किसी कवि के पद्य को, उदाहरण रूप में देने से हम उस कवि के रचना-सौष्ठव को भली भांति समझ सकते हैं। परन्तु इस भावपूर्ण पद्य पर, आनन्द के पहले भी, आलोचकों की दृष्टि पड़ी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थी; क्योंकि भट्ट उद्भट ने इस पद्य को अपने अलङ्कारग्रन्थ में "विशेषोक्ति" के उदाहरण में, उद्धृत किया था। यद्यपि आजकल प्रकाशित "काव्यालङ्कार-सारसंग्रह" में यह श्लोक नहीं मिलता; तथापि अभिनवगुप्ताचार्य के कथन से प्रतीत होता है कि, उद्भट ने इसे उद्धृत किया था। पूर्वोक्त वाक्य पर टीका करते समय अभिनवगुप्त, अपने "लोचन" में, लिखते हैं --"शीतकृता खल्वातिरत्र निमित्तमिति भट्टोद्भटः। ×× न त्वौद्भटेनैवाभिप्रायेण ग्रन्थो व्यवस्थित इति मन्तव्यम्।" "लोचनकारका" अभिप्राय यह है कि, भट्टोद्भट इस श्लोक में उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति ही मानते हैं परन्तु आनन्द यहाँ अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति हो मानते हैं। भट्टोद्भट का मत मानने से आनन्द के कथन का अर्थ नहीं लग सकता। अतः भट्टोद्भट के प्राचीन मत को यहां छोड़ना पड़ेगा। भट्टोद्भट का स्थितिकाल नवीं सदी का आरम्भिक काल है। सन् ८०० ईस्वी के लगभग वे विद्यमान थे। अतः "भर्वु" का यह श्लोक इतना प्रसिद्ध हुआ कि, अपनी रचना के दो सौ वर्षों के भीतर ही भीतर उदाहरण के उपयुक्त समझा गया; और इसके अलङ्कार के विषय में मत-वैषम्य उपस्थित हो गया। इस विवरण से प्राचीन काल में, "भर्वु" के पद्यों की प्रशस्त प्रसिद्धि सूचित होती है।

बाणभट्ट के गुरु होने से 'भर्वु' का स्थितिकाल सन् ६०० ईस्वी के आसपास ठहरता है।

"भर्वु" किस प्रान्त के रहने वाले थे? इस प्रश्न के उत्तर के विषय में हम कुछ अन्दाज लगा सकते हैं। कादम्बरी से जो श्लोक ऊपर उद्धृत किया गया है, उसमें "भर्वु" का वर्णन करते समय कहा गया है कि, मौखरि राजा लोग अपने शिरोभूषण को उनके पैर पर रख कर उनकी पूजा करते थे, और समस्त सामन्त नरेशों के किरीट में लगे हुए मणियों की रगड़ से उनके पैर की अंगुलियां लाल हो गयी थीं। इस प्रकार मौखरियों के द्वारा "भर्वु" की पूजा-प्रतिष्ठा किये जाने की सूचना हमें, उक्त वर्णन से,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिलती है। दुःखकी बात है कि, आज हम मौखरियों के विषय में बहुत कम जानते हैं; परन्तु एक समय था, जब इनकी तूती समग्र उत्तरी भारत में, बोलती थी, जब प्रभाकरवर्धन जैसे बड़े राजा लोग, इनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये, अत्यन्त उत्सुक दीख पड़ते थे।

ये मौखरि-नरेशगण उत्तरीय भारत में, "वर्धन" नरेशों के अभ्युदय के पहले, अतीव प्रभावशाली थे। हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन ने अपनी विदुषी कन्या राज्यश्री का विवाह ग्रहवर्मा नामक मौखरि के साथ किया था। ये लोग सब प्रकार से श्रेष्ठ थे। इनका मूल स्थान कहाँ था? इस विषय में, ऐतिहासिकों में, बड़ा मतभेद दिखाई पड़ता है। अधिक ऐतिहासिक मौखरियों का मूल, बिहार प्रान्त के गया जिले में बतलाते हैं। यदि यह बात सच्ची निकले, तो बाण के गुरु का निवासस्थान, इधर ही, पूरब की ओर, हो सकता है। बाण का जन्मस्थान प्रीतिकूट नामक ग्राम, सोननद के किनारे, था। लेखक का अनुमान है कि, "भर्वु" का भी वासस्थान बाण के जन्मस्थान से विशेष दूर न रहा होगा। गया जिले में, छठी शताब्दी में, मौखरियों की स्थिति थी। इस ऐतिहासिक घटना से पूर्वोक्त अनुमान की कुछ पुष्टि भी होती है। कुछ भी हो, हम इतना कहने में तो नहीं हिचकते कि, बाणभट्ट के समान इनके काव्यगुरु भी पूरब के रहनेवाले थे; और, तत्कालीन माननीय मौखरि-नरेशों के दरबार में इनका खूब आदर-सत्कार होता था। अतः "भर्वु" कवि अपने समय (छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध) के एक प्रतिष्ठित विद्वान् प्रतीत होते हैं, जिनके प्रति आदर दिखलाने में केवल सामन्त लोग ही अपना गौरव नहीं समझते थे, बल्कि तत्कालीन भारताधिपति मौखरि-नरेश भी उनका सत्कार कर अपने को गौरवशाली बनाते थे। क्या यह दुःखका विषय नहीं है कि हम ऐसे राजमान्य लब्धप्रतिष्ठ कवि की रचनाओं से सर्वथा वञ्चित हैं? यदि इनके सुयोग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिष्य बाणभट्ट ने इनके नाम का सादर समुल्लेख नहीं किया होता, तो हमें इनके नाम का भी पता नहीं चलता; इन की सुप्रतिष्ठा की कथा तो, सर्वदा के लिये, अतीत के अन्धकार में विलीन हो गयी होती।

"भर्वु" की कविता बिलकुल उपलब्ध नहीं है। केवल चार पद्य, सूक्ति-ग्रन्थों में, उद्धृत किये गये मिलते हैं, जिन में तीन तो निःसन्देह इन्हींके हैं; परन्तु चौथे पद्य में सन्देह है। ये ही पद्य इन की रचना के अवशिष्ट अंश हैं। इनका भावानुवाद भी यहां प्रस्तुत किया जाता है।

१

"कामं प्रियानपि प्राणान् विमुञ्चन्ति मनस्विनः।
इच्छन्ति न त्वमित्रेभ्यो महतीमपि सत्क्रियाम् ॥"

यह श्लोक शार्ङ्गधरपद्धति में "भर्चु" नाम से तथा सुभाषितावलि (नं ५१३) में "भश्चु" नाम से दिया गया है। इसमें उदारजन की प्रशंसा है। मनस्वी लोग अपने प्यारे प्राणों को भले छोड़ दें; परन्तु अपने शत्रुओं से बड़ा भी सत्कार नहीं चाहते। शत्रुओं के हाथ से वे लोग सत्कार ग्रहण करेंगे? चाहे प्राण भले ही निकल जाय; पर इससे क्या? वे अपने प्रण तो तनिक भी नहीं छोड़ते।

२

"आहूतोऽपि सहायैरेमीत्युक्त्वा विमुक्तनिद्रोऽपि।
गन्तुमना अपि पथिकः संकोचं नैव शिथिलयति ॥"

हेमन्त के वर्णन में यह पद्य दोनों सूक्तिग्रन्थों (नं० १३७, २४; नं० १८३८) में उद्धृत है। हेमन्त की ऋतु है। कड़ाके का जाड़ा पड़

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहा है। संगी-साथियों ने बाहर जाने का विचार किया है। नायक भी जाने को तैयार है। प्रातःकाल संगी लोग, उसे जगाने के लिये, जाते हैं। आकर उठने के लिये, पुकारते हैं। मैं आया, लो मैं आया; यह कहकर वह निद्रा छोड़, बैठ भी जाता है। पथिक की जाने की प्रबल इच्छा भी है; परन्तु करे, तो क्या करे ? वह अपने संकोच को शिथिल नहीं कर रहा है। जाड़े की रातों में आनन्द के साथ अपनी प्रियतमा के साथ शयन करनेवाला नायक, प्रातःकाल में, उसके भुजबन्धन से अपनेको कैसे अलग कर सकता है ? उससे वह छुट्टी माँगने में अत्यन्त संकोच का अनुभव कर रहा है। इस सुप्रसिद्ध पद्य के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है। संकोची पथिक का यह जीता-जागता चित्र है। वास्तवमें यह पद्य अनूठा है।

२

"विकल्परचिताकृतिं सततमेव तामीक्षसे
सदा समभिभाषसे समुपगूहसे सर्वदा।
प्रमोदमुकुलेक्षणं पिबसि पाययस्याननं
तथापि च दिवानिशं हृदय हे किमुत्कण्ठसे !!"

कोई विरही अपने हृदयसे कह रहा है—"हे मेरे हृदय! लगातार संकल्प करने से—चिन्तन करने से—उस प्रियतमा की आकृति को तूने बनाया है; और उसे तू सदा देख रहा है, उससे बोल रहा है, और उसका आलिङ्गन कर रहा है! आनन्द के कारण जिसके नेत्र बन्द हो गये हैं, ऐसी प्रियतमा के मुख को तू पीता है, चुम्बन करता है; और, अपने मुख का भी चुम्बन करता है। कल्पित प्रियतमा के साथ इतने आनन्द का अनुभव करता है; परन्तु क्या कारण है कि रात-दिन तू उत्कण्ठित रहता है! संयोग की तेरी समग्र इच्छाएँ पूर्ण हो रही हैं। अतः उत्कण्ठा का कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थान नहीं है; परन्तु आश्चर्य है कि, तू भी व्याकुल होता है।" यह सुन्दर पद्य सदुक्तिकर्णामृत में (नं० २४५५) 'भर्वु' नाम से दिया गया है।

४

'नीवारप्रसवाग्रमुष्टिकवलैर्यो वर्धितः शैशवे
पीतं येन सरोजपत्रपुटके होमावशेषं पयः।
तं दृष्ट्वा मदमन्थरालिवलयव्यालुप्तगण्डं गजं
सोत्कण्ठं सभयं च पश्यति मुहुर्दूरे स्थितस्तापसः॥

हाथीका वर्णन है। लड़कपन में नीवार धान को मुट्ठी भर-भर कर कौर देकर जो बढ़ाया गया था, जिसने कमल के पत्ते के दोने में होम से बचे जल को पिया था, मद से मन्थर भ्रमर-समूह से आच्छादित गण्डस्थलवाले उसी हाथी को देख कर तपस्वी दूर पर खड़ा होकर, उत्कण्ठा तथा डरके साथ, देख रहा है। परिचित होने से उत्कण्ठा है; परन्तु उसे मदमत्त देख कर डर लगता है। अतः उसके पास फटकने की हिम्मत उसमें नहीं है। केवल दूर पर ही खड़ा होकर देख रहा है।

यह पद्य, सुभाषितावलि (नं० ६३७) में, गजवर्णन में उद्धृत किया गया है; परन्तु उससे पूर्व ही क्षेमेन्द्र ने अपने "औचित्यविचारचर्चा" (पृ० १२९) में इसे राजपुत्र मुक्तापीड का बतलाया है; और इसे भयानक रस के अनौचित्य-प्रदर्शन के अवसर पर उद्धृत किया है।

"अत्र गजस्याघातकविकृतंचेष्टानुवर्णनाविरहिततया स्थायिभावस्य भयानुभाववर्जितस्य केवलं नाममात्रोदीरणेन च भयानकरसोचितसंभ्रमाभावादुपचितमौचित्यं न किञ्चिदुपलभ्यते।"

आशय यह है कि, इस पद्य में भयानक रस को उचित सामग्रीका अभाव विद्यमान है। केवल गज का नाम ले लेने से ही तो भयानक रस नहीं हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकता। अतः इसमें भयानक रस का किञ्चिन्मात्र भी औचित्य नहीं उपलब्ध होता। इस पद्य को क्षेमेन्द्र मुक्तापीड का बतलाते हैं, जो काश्मीर-नरेश ललितादित्य का नाम था। अन्य प्रबल प्रमाण के अभाव में हम इसके कर्त्ता के विषय में कुछ ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर सकते।

१२

दण्डी की अवन्तिसुन्दरी-कथा

दक्षिण भारत प्राचीन संस्कृत पुस्तकों का सुरक्षित गृह है। उत्तरी भारत में विधर्मी मुसलमानों के भयंकर उपद्रवों के कारण प्राचीन पुस्तकों का पता बहुत कम लगता है; परन्तु दक्षिण में जहाँ ऐसे उपद्रव कम हुए थे, अभीतक प्राचीन प्रतियाँ सुरक्षित हैं। हाल ही में मालावार प्रदेश में दो हस्त-लिखित पुस्तकों की उपलब्धि हुई है, जो संस्कृत साहित्य के इतिहास के लिये अत्यन्त महत्त्व की प्रतीत होती हैं। अब ये पुस्तकें गवर्नमेण्ट ओरिएन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी (Government Oriental Mss Library) में सुरक्षित हैं। पहली पुस्तक बड़ी बुरी दशा में पाई गई है। न तो यह पूर्ण है और न कहीं ग्रन्थकार ही का नाम-निशान पाया जाता है। हाँ, इसके प्रारम्भ में हर्ष-चरित की तरह प्राचीन कवियों का वर्णन श्लोकों में पाया गया है। शेष भाग गद्य में लिखा गया है, परंन्तु ग्रन्थ पूर्ण नहीं हुआ है। दूसरे ग्रन्थ के आधार पर इसका नाम 'अवन्ति सुन्दरी-कथा' तथा रचयिता महाकवि दंडी माने गए हैं।

दूसरा ग्रन्थ कुछ अच्छी दशा में प्राप्त हुआ है। यह प्रायः अनुष्टुप् छंदों में रचा गया है, पर सर्गान्त में भिन्न भिन्न वृत्त भी हैं। ग्रन्थ के आदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के छः परिच्छेद तो बिल्कुल ही शुद्ध तथा पूर्ण पाये गये हैं, पर सप्तम परिच्छेद खण्डित है। यह भी पहले ग्रन्थ की तरह पूरा तो नहीं है, परन्तु इतना त्रुटित भी नहीं है कि समग्र ग्रन्थ के विषय को समझने में किसी तरह की बाधा हो। रचयिता का नाम इसमें भी गायब है। अनुमान की निर्बल भित्ति पर जरूर ही ग्रन्थकार के विषय में कुछ कहा जा सकता है। ग्रन्थ के प्रत्येक सर्गान्त में भारवि के 'लक्ष्मी' शब्द, माघ के 'श्री' शब्द तथा प्रवरसेन के 'अनुराग' शब्द की भाँति 'आनन्द' शब्द सर्वदा प्रयुक्त हुआ है। भोज के शृङ्गारप्रकाश में सर्गान्त में 'आनन्द' शब्द का प्रयोग करनेवाले 'शूद्रक-कथा' के रचयिता 'पंचशिख' का उल्लेख पाया जाता है *। तो क्या इस शब्द-प्रयोग-साम्य से पंचशिख इसके रचयिता माने जा सकते हैं।? ग्रन्थकार के विषय में ऐतिहासिक सामग्री की कमी है, परन्तु ग्रन्थ की अन्तरङ्ग परीक्षा से उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ पता लगता है। सौभाग्यवश ग्रन्थ का नाम 'अवन्तिसुन्दरी कथासार' दिया गया है, जिससे यह पहले ग्रन्थ का छन्दोबद्ध सारांश प्रतीत होता है। इसके पहले परिच्छेद में दण्डी के पूर्वजों का वर्णन किया गया है। इस उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की चर्चा आगे की गई है।

भारवि और दंडी

संस्कृत महाकाव्यों में किरातार्जुनीय का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। इसके रचयिता महाकवि 'भारवि' हैं, जिनकी अर्थ-गाम्भीर्यमयी कविता का आस्वादन कर प्रत्येक सहृदय अपने को कृतकृत्य समझता है। साहित्यिक दृष्टि से हम भारवि के विषय में समग्र ज्ञातव्य विषयों से परिचित हैं, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से अभी तक भारवि का समय गाढ़ अन्धकार के आवरण से ढका हुआ है। भारवि का सब से पहला उल्लेख दक्षिण के चालुक्यवंशी

* Ramkrishna Kavi: Avanti Sundari Katha of Dandi, Proceednigs of Second Oriental Conference, p. 193.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजा पुलकेशी द्वितीय के ऐहोड़ के शिलालेख में मिलता है, जो ६३४ ई० लिखा हुआ है *। इस उल्लेख से इतना ही ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारवि की प्रसिद्ध खूब हो चली थी; इनका नाम महाकवि कालिदास के साथ बड़े आदर के साथ लिया जाता था; तथा ये उनके ही समान उन्नत साहित्यिक स्थान पाने के पूरे अधिकारी थे।

परन्तु इससे भारवि के आविर्भाव-काल का यथोचित पता नहीं लगता। ६३४ ई० के कितने वर्ष पहले भारवि ने भारत की शोभा बढ़ाई थी, यह ठीक ठीक उपर्युक्त लेख से ज्ञात नहीं होता। एक दूसरे शिलालेख से भी भारवि का समय अनिश्चित हो रह जाता है। यह शिलालेख † पश्चिमी गङ्गवंशी राजा दुर्विनीत के समय का है। इसमें स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि राजा दुर्विनीत ने किरातार्जुनीय के पंद्रहवें सर्ग की टीका की। इस उल्लेख से यत्कथंचित् भारवि का समय निर्णीत भी किया जा सकता था, परन्तु डा० फ्लीट जैसे प्रामाणिक पुरातत्त्ववेत्ताओं की सम्मति में यह लेख बिल्कुल जालसाजी है; इस में कुछ भी ऐतिहासिकता नहीं ÷। ऐसी स्थिति में भारवि के विषय में ठीक-ठीक कुछ भी निर्णय नहीं हो सका।

---

* येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

† श्रीमत्कोंगणि महाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण पुन्नाटराज स्कंदधर्मप्रियत्रिका जन्मना"......................................"शब्दावतारकारेण देवभारतीनिबद्धबड्ढकथेन किरातार्जुनीये पञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीत नामधेयेन।

—Mysore Archeological Report 1916 p. 36

÷ डा० फ्लीट ने पश्चिमी गङ्गावंशीयों के दानपत्रों के सम्बन्ध में जो कुछ उद्गार प्रकट किए हैं, वे बहुधा हठधर्मी से पूर्ण है, अतएव वे ज्यों के त्यों मानने योग्य नहीं हैं। सं०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परन्तु अब इस प्रश्न के निर्णायक साधन की उपलब्धि हुई है, जिससे न केवल भारवि के समय का ही ठीक-ठीक निश्चय हो जाता है, वरन् उनके कुटुम्ब तथा पारिवारिक जीवन पर भी यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। यह साधन है दण्डिकृत यही 'अवन्तिसुन्दरी-कथा' तथा इसका पद्यबद्ध 'अवंतिसुन्दरी कथासार' नामक संक्षिप्त सारांश। इस दूसरी पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में महाकवि दण्डी की कई पीढ़ियों का इतिहास दिया हुआ है। यह वर्णन इतिहास की दृष्टि से बहुमूल्य है। इससे भारवि के विषय में पक्की ऐतिहासिक बातों का पता लग जाता है।

इससे जान पड़ता है कि 'भारवि' किरातार्जुनीय के रचयिता का उपनाममात्र था। इनका असली नाम था—दामोदर। इनके पूर्वज पश्चिमोत्तर देश (गुजरात) के सर्वश्रेष्ठ नगर आनन्दपुर में निवास करते थे*। वहाँ से किसी कारणवश वे लोग नासिक हट आए तथा कालांतर में

---

* अस्त्यानन्दपुरं नाम प्रदेशे पश्चिमोत्तरे।
आर्यदेशशिरोरत्नं यत्रासन् बहवो नृपाः॥
ततोऽभिनिसृता काचित् कौशिकब्रह्मसंततिः।
सुरलोकादिवायांती पुण्यतीर्थसरस्वती॥
नासिक्यान्भूमावौत्सुक्यमूलदेव निवेशिताम्।
प्राप्याऽचलपुरं''''''''''रीमधि वसत्यसौ॥
तस्यां नारायणस्वामी नाम्ना नारायणोदरात्
दामोदर इति श्रीमान् आदिका''''भवेत्॥
स मेधावी कविर्विद्वान् भारविः प्रभवं गराम्
अनुरुध्याकरोन्मैत्रीं नरेन्द्रे विष्णुवर्धने॥

× × × × ×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अचलपुर (संभवतः आधुनिक एलिचपुर) में अपना निवास नियत किया। इन्हीं कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणों में नारायण स्वामी नामक पंडित हुए थे जिनके मेधावी पुत्र हमारे कविवर भारवि हैं। पहले पहल भारवि ने राजकुमार विष्णुवर्धन की सभा को सुशोभित किया और उनके कृपाभाजन हुए थे। यह राजकुमार दक्षिण के इतिहास में कुब्ज विष्णुवर्द्धन* के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह प्रथमतः अपने ज्येष्ठ भ्राता प्रसिद्ध महाराज पुलकेशी द्वितीय का प्रतिनिधि बनकर महाराष्ट्र का शासन करता था। ६१६-१७ ई० के आसपास यह महाराष्ट्र ही में रहता था, क्योंकि इस वर्ष में इसने अपने भ्राता के प्रतिनिधि रूप से एक ताम्रशासन जारी किया था †। अनंतर इसने तेलिंगाना में जाकर वेंगी में एक नवीन

स दुर्विनीत नामासीत् अन्वर्थाभिधानवान्। तस्यान्तिके वसत्येषः।........॥

× × × × ×

अस्ति प्रासादविस्तारग्रस्तव्योमान्तरा पुरी।
काञ्चीपुराख्या कल्याणी ककुभां कुम्भजन्मनः॥
तस्यां जज्ञे बुधव्रातध्वस्ताखिलपल्लवः।
पल्लवेषु महीपालः सिंहविष्णुरिति श्रुतः॥

* उक्त पुस्तक में उल्लिखित नरेन्द्र विष्णुवर्द्धन चालुक्य पुलकेशी द्वितीय के भाई कुब्ज विष्णुवर्द्धन से कोई भिन्न राजा होना चाहिये, क्योंकि इसी लेख में ऊपर जो अवतरण दिया है; उसमें विष्णुवर्द्धन को 'नरेन्द्र' कहा है न कि कुमार। दूसरी बात यह भी है कि जब वह सतारे के आस-पास के प्रदेश पर अपने भाई की ओर से शासन कर रहा था, उस समय के अपने दानपत्र में वह अपने को 'युवराज' लिखता है। तीसरी बात यह भी है कि यदि भारवि पुलकेशी के समय में ही जीवित होता, तो उसकी कालिदास के समान प्रसिद्धि उसी समय में नहीं हो सकती थी। सं०

† Satara Grant; Indian Antiquary, Vol. XIX. p. 303.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राज्य को स्थापना की जो इतिहास में पूर्वीय चालुक्य (Eastern Chalukya of Vengi) के नाम से परवर्तीकाल में खूब प्रसिद्ध हुआ। जब यह केवल राजकुमार था, तभी महाराष्ट्र में इससे भारवि का परिचय हुआ था। अनन्तर इसने आखेट के अवसर पर कविवर से मांस खाने के लिये आग्रह किया। कवि ने इसके आश्रय की अवहेलना कर दुर्विनीत राजा के यहाँ आसन जमाया। इस नाम का राजा पश्चिमी गंगावंशीय (Western Ganga) नरेशों में अत्यंत प्रसिद्ध था जिसने 'शब्दावतार' नामक व्याकरण ग्रन्थ की रचना की। इस राजा का समय सातवीं सदी का प्रथम चतुर्थ भाग माना जाता है। यह सरस्वती के वरदपुत्रों का आश्रयदाता ही नहीं था, वरन् स्वयं भी सरस्वती का उपासक था। यह संस्कृत के अतिरिक्त पैशाची भाषा का भी ज्ञाता जान पड़ता है, क्योंकि इसने गुणाढ्य रचित प्रसिद्ध 'वृहत्कथा' का अनुवाद देवभारती—संस्कृत—में किया था। यह भारवि का आश्रयदाता अवश्य था, इसकी यथोचित पुष्टि इस घटना से होती है कि इसने स्वयं किरातार्जुनीय के सबसे कठिन, अर्थ-गंभीर तथा श्लेष-प्रधान पंद्रहवें सर्ग की सुबोध टीका लिखी थी। इसने अवश्य ही भारवि के सहवास से किरात का उचित मंथन किया था; तभी तो सर्वक्लिष्ट सर्ग की टीका लिखने को उद्यत हुआ। अतएव यदि हम कहें कि भारवि ने ६२० ई०—२५ तक इसकी सभा की शोभा बढ़ाई, तो अनुचित न होगा। अनंतर अत्यंत आग्रह करने पर भारवि काञ्ची के पल्लव नरेश सिंहविष्णु के पास आकर रहने लगे। काञ्ची के पल्लव राजा सदा से विद्याप्रेमी होते आये हैं। अनेक विद्वानों को उन्होंने आश्रय देकर संस्कृत साहित्य का अत्यंत उपकार किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिंहविष्णु तो इस वंश का प्रसिद्ध विद्याप्रेमी राजा था। संभवतः इसी के सुयोग्य पुत्र महेंद्रवर्मा ने 'मत्तविलास' नामक प्रहसन की रचना की *। यदि वास्तव में महेंद्रवर्मा भारवि के आश्रयदाता का पुत्र हो तो यह मानने में आपत्ति नहीं दिखाई देती कि इसने संभवतः भारवि से विद्या का अभ्यास तथा कविता का अध्ययन किया होगा। सिंहविष्णु का समय ६२० से ६२७ ई० तक माना जाता है। संभवतः राज्य के अंतिम समय में ही भारवि का इस पल्लव राजा के साथ साक्षात्कार हुआ था।

पूर्वोक्त वर्णन का सारांश यही है कि भारवि की जन्मभूमि महाराष्ट्र प्रदेश है। हिमालय के वर्णन करने से इन्हें उत्तरीय भारत में घसीट लाना उचित नहीं। इनके आविर्भाव का समय छठी शताब्दो का उत्तरार्द्ध तथा सप्तम शताब्दी का प्रथम चतुर्थ भाग है। ६१० ई० के आस-पास ये महाराष्ट्र में विष्णुवर्द्धन के आश्रय में थे। ६२० ई० के समीप कर्नाटक में गङ्गा-वंशोय दुर्विनीत की सभा में रहे तथा ६२५ ई० में तेलगु प्रांत में पल्लव-नरेश सिंहविष्णु की सभा की शोभा बढ़ाते थे तथा काञ्ची में ही अपना निवासस्थान बनाकर रहने लगे थे। इसी ऐतिहासिक तथ्य की उपलब्धि हुई है।

---

* यह प्रहसन 'अनंतशयन ग्रंथावली' में ट्रिवेंड्रम से प्रकाशित हुआ है। इसमें सूत्रधार कहता है :—

भवति श्रूयताम्। पल्लवकुलतिलकधरमंडलकुल पर्वतस्य....श्रीमहिमानुरूपदानविभूतिपरिभूतराजराजस्य श्री सिंहविष्णुशर्म्मणः पुत्रः शत्रुषड्वर्गनिग्रहपरः परहितपरतंत्रतया महाभूतसधर्मा महाराजः श्री महेंद्रविक्रमवर्मा नाम।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी का जीवन-वृत्तान्त

दंडो के विषय में इस कथा से निम्नलिखित बातों का पता लगता है—

कविवर भारवि के तीन लड़के हुए जिनमें 'मनोरथ' मध्यम पुत्र था *। मनोरथ के भी चारों वेदोंको भांति चार पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें 'वीरदत्त' सबसे छोटा होने पर भी एक सुयोग्य दार्शनिक था। 'वीरदत्त' की स्त्री का नाम 'गौरी' था। इन्हीं से कविवर दंडी का जन्म हुआ था। बचपन में ही इनके माता-पिता मर गए थे। ये काञ्ची में निराश्रय हो रहते थे। एक बार जव काञ्ची में विप्लव उपस्थित हुआ, तब ये काञ्ची छोड़कर जंगलों में इधर-उधर भटकते-फिरते थे। अनंतर शहर में शांति होने पर ये फिर पल्लव-नरेश की सभा में आ गए और वहीं रहने लगे।

संक्षेप में महाकवि दण्डी का वंशवृक्ष अवन्तिसुन्दरी-कथा के आधार पर नीचे दिया जाता है :—

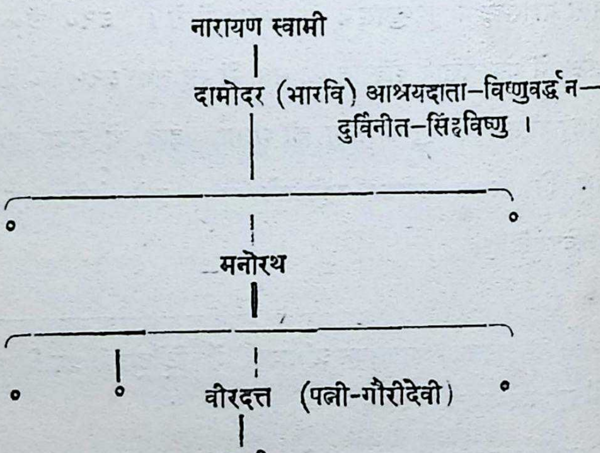

* मनोरथाह्वयस्तेषां मध्यमो वंशवर्द्धनः
ततस्तनूजाश्चत्वारः स्रष्टुर्वेदा इवाभवन्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इससे स्पष्ट है कि महाकवि दण्डी भारवि के प्रपौत्र थे। इस वर्णन से (यद्यपि यह बहुत ही थोड़ा है) दण्डी के अंधकारमय जीवन पर प्रकाश की एक गाढ़ी किरण चमकती है। भारवि का सम्बन्ध उत्तरीय भारत से न होकर दक्षिण भारत से था। हिन्दुओं की पवित्र नगरी काञ्ची (आधुनिक कांजीवरम्) इनकी जन्मभूमि थी। इनका जन्म एक अत्यन्त शिक्षित ब्राह्मण कुल में हुआ था। भारवि की चौथी पीढ़ी में इनका जन्म होना ऊपर के वर्णन से बिल्कुल निश्चित है। काञ्ची के पल्लव-नरेशों की छत्रछाया में इन्होंने अपने दिन सुखपूर्वक बिताये थे।

इस ग्रन्थ से दक्षिण भारत की एक किंवदन्ती की भी यथेष्ट पुष्टि होती है। एम० रंगाचार्य ने एक किंवदन्ती का उल्लेख किया है कि पल्लव राजा के पुत्रको शिक्षा देने के लिये ही दण्डी ने 'काव्यादर्श' की रचना की थी। काव्यादर्श के प्राचीन टीकाकार तरुणवाचस्पति की सम्मति में दण्डी ने निम्नलिखित प्रहेलिका में काञ्ची के पल्लव-नरेशों की ओर इङ्गित किया है।

नासिक्यमध्या परितश्चतुर्वर्णविभूषिता।
अस्ति काचित्पुरी यस्यामष्टवर्गाह्वया नृपाः॥

(पृ० ३०, श्लोक ११४)

अतएव दण्डी को काञ्ची के पल्लव-नरेश के आश्रय में मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं जान पड़ती।

श्री वीरदत्त इत्येषां मध्यमो वंशवर्धनः
यवीयानस्य च श्लाघ्या गौरी नामाभवत् प्रिया॥
ततः कथंचित् सा गौरी द्विजाधिपशिखामणेः
कुमारं दण्डिनामानं व्यक्तशक्तिमजीजनत।
स बाल एव मात्रा च पित्रा चापि व्ययुज्यत॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दण्डी का समय

दण्डी के आविर्भावकाल के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। अलंकार—साहित्य के इतिहास में इससे बढ़कर विवाद का विषय और कोई नहीं। भामह के काव्यालंकार में दण्डी से अनेक समानता तथा विभिन्नता होने से यह प्रश्न और भी उलझन में पड़ गया है। अभी तक इसका निश्चय नहीं हो सका। कोई इन्हें भामह के पहले मानकर छठी शताब्दी के आरंभ का ग्रन्थकार मानते हैं, तो कोई भामह के अनन्तर मानकर सातवीं सदी में रखते हैं। इस विवाद के निर्णय में अवन्तिसुन्दरी-कथा कितनी सहायता दे सकती है, इसका कुछ विचार किया जाता है।

नवम शताब्दी के ग्रन्थों में दण्डी का नामोल्लेख पाये जाने से निश्चित है कि उनका समय उक्त शताब्दी से पीछे कदापि नहीं हो सकता। सिंघाली भाषा के अलंकार-ग्रन्थ 'सिय-बस-लकर' (स्वभाषालंकार) की रचना काव्यादर्श के आधार पर की गई है *। इसका रचयिता, राजा सेन प्रथम, महावंशके अनुसार ८४६ ई०-६६ तक राज्य करता था। इससे भी पहले के कन्नड़ी भाषा के अलंकार-ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' में काव्यादर्श की यथेष्ट छाया देखी गई है। इस ग्रन्थ के संस्कारक श्री के० बी० पाठक ने इसकी भूमिका में स्पष्ट दिखलाया है कि इसके उदाहरण या तो काव्यादर्श से हुबहू नकल किये गये हैं या कहीं-कहीं कुछ परिवर्तित रूप में रखे गये हैं। हेतु, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के लक्षण भी दण्डी से अक्षरशः मिलते हैं। ग्रन्थ के लेखक अमोघवर्ष का समय ८१५ ई० के आस-पास माना जाता है। अतएव काव्यादर्श की रचना नवीं शताब्दी के अनन्तर कदापि स्वीकृत नहीं की जा सकती।

* डाक्टर बारनेट—जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह तो दंडी के काल की अन्तिम सीमा है। अब पूर्व की सीमा की ओर ध्यान देना चाहिये। यह तो निर्विवाद है कि काव्यादर्श के समग्र पद्य दंडी की ही मौलिक रचना नहीं हैं। उनमें प्राचीनों के पद्य भी सन्निविष्ट हैं। 'लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः' में दंडी ने साफ तौर पर—'इति' शब्द के प्रयोग से यही जाना जाता हैं—कालिदास के प्रसिद्ध पद्यांश 'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति' से उद्धरण पेश किया है। अतः इनके कालिदास के अनंतर होने में तो संदेह का स्थान ही नहीं है; परन्तु अन्य भाव-साम्य से ये बाणभट्ट के अनन्तर के भी प्रतीत होते हैं।

अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः॥

काव्यादर्श के इस पद्य में पिटरसन तथा जैकोबी की सम्मति में कादंबरी में चन्द्रापीड़ को शुकनास द्वारा दिये गये उपदेश की छाया देख पड़ती है। आगे दिखलाया जायगा कि दंडी ने मयूरभट्ट के साथ बाण की भी प्रशस्त प्रशंसा की है* तथा कथा में 'कादंबरी' का वर्णन भी बाण की प्रसिद्ध कथा के बिल्कुल अनुरूप है। अतः मेरी सम्मति में दंडी को बाणभट्ट (७ वीं सदी का पूर्वार्द्ध) के अनन्तर मानने में कोई विप्रतिपति नहीं जान पड़ती। प्रो० पाठक की राय में काव्यादर्श में निर्वत्य, विकार्य तथा प्राप्य हेतु का विभाग वाक्यप्रदीय के कर्त्ता भर्तृहरि (६५०) ई० के अनुसार किया गया है †। कहा गया है कि भामह-दंडी का प्रश्न अभी तक

* भिन्नस्तीक्ष्णमुखेनापि चित्रं बाणेन निर्व्यथः।
व्याहारेषु जहौ लीलां न मयूर····।

† पाठक—इंडियन एंटिक्वेरी १९१२ ई०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनिश्चित दशा में है; तथापि मेरा विश्वास है कि दंडी का समय भामह के अनन्तर है *। भामह ने धर्मकीर्ति के प्रमाण के लक्षण को उद्धृत कर उसका खंडन किया है। अतएव यदि भामह धर्मकीर्ति (६४४ ई०–७०) के अनन्तर माना जाय, तो स्पष्ट है कि दंडी का समय सातवीं सदी का अंत तथा आठवीं का प्रारम्भ माना जा सकता है। इसी स्थान पर अवंतिसुन्दरी-कथा की अमूल्य सहायता का यथेष्ट अनुभव होता है। ऊपर दिये गये सिद्धांत को यह बात अच्छी तरह से प्रमाणित कर रही है। यह भी दिखाया गया है कि दंडी भारवि की चौथी पीढ़ी में हुए थे। यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिये कम-से-कम २० वर्ष भी मानें, तौभी दंडी का समय भारवि से करीब अस्सी वर्ष के अनन्तर ठहरता है। भारवि यदि सातवीं सदी के आरम्भ में विद्यमान थे, तो दंडी उस सदी के अंत तथा आठवीं के आरम्भ में होंगे। ऊपर दिखाया गया है कि इस समय को निश्चित मानने से संस्कृत-साहित्य की निश्चित घटनाओं से किसी प्रकार का विरोध नहीं पड़ता। काव्यादर्श में उल्लिखित राजवर्मा (रातवर्मा) को यदि हम नरसिंहवर्मा द्वितीय (जिसका विरुद अथवा उपनाम राजवर्मा था) मान लें तो किसी प्रकार की अनुपपत्ति उपस्थित नहीं होती। प्रो० आर० नरसिंहाचार्य † तथा डाक्टर बेलवल्कर ‡ ने भी इन दोनोंकी एक एकता मानकर दंडी का समय सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध बतलाया है। शैवधर्म के उत्तेजक पल्लवराज नरसिंह वर्मा का समय ६९०–७१५ माना जाता है × जो दंडी के लिये निश्चित किये गये समय से यथेष्ट अनुरूपता रखता है।

---

* जो लोग भामह-दंडी के प्रश्न के विषय में अधिक जानना चाहें, वे काणे कृत साहित्य-दर्पण की भूमिका पृ० २५ तथा डाक्टर सुशील कुमार दे रचित History of Sanskrit Poetics देखें।

† Indian Anitquary. 1912 p. 90.

‡ Notes on काव्यादर्श 2nd. Chapter P. 176-77.

× G. Jon--Vean Debreul, Ancient History of the Deccan, p. 70.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी के ग्रन्थ

राजशेखर के 'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः' के अनुसार दंडी की तीन रचनाएँ प्रतीत होती हैं। ये तीन प्रबन्ध कौन हैं? इस पहेली का भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से उत्तर दिया है। अवंतिसुन्दरी कथा को उपलब्धि से तो यह प्रश्न और भी विकट हो गया है। काव्यादर्श के विषय में प्रत्येक प्रकार से निश्चय है कि यह दण्डी की रचना है। दशकुमार-चरित के विषय में भी अभी तक निश्चय ही था, परन्तु अब यत्र तत्र सन्देह की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। श्री आगाशे*को शृङ्गार-रस के कुछ अश्लील वर्णनों तथा काव्यादर्श में वर्णित काव्यदोषों को दशकुमार में उपलब्धि से विश्वास है कि यह ग्रन्थ-दण्डी रचित नहीं है। परन्तु यदि बाहरी दृष्टि से अश्लील तथा रतिवर्णन से ग्रन्थकार के विषय में सन्देह हो रहा है, तो कुमार का अष्टम सर्ग न तो कालिदास की रचना होगा और न नैषध का अष्टादश सर्ग श्रीहर्ष का। अवन्तिसुन्दरी-कथा दशकुमार के पूर्वार्द्ध में वर्णित कथा के अनुरूप है। अतः कथा को दण्डी की असली रचना मानने से दशकुमार के पूर्वार्द्ध में सन्देह होने लगा है। यह सन्देह आज का नहीं है। बहुत पहले विल्सन तथा चिपलूणकर शास्त्री † के भी शब्दों की निरुक्ति तथा कथा के पूर्वापर में किसी अंश में विरोध होने से यह सन्देह क्या निश्चय होने लगा था कि उत्तर-पीठिका तो वास्तव में असली है, परन्तु पूर्व पीठिका दण्डी की नहीं। के० वी० लक्ष्मणराव का कहना है ‡ कि असली रचना कथा ही है, परन्तु समयानन्तर किसी कारण से से वह शीघ्र ही लुप्त हो गई और उसी

* संस्कृत कविपंचक (मराठी) पृ—२२६–२८

† दण्डोची अवन्तिसुन्दरी-कथा, विविधज्ञान विस्तार, वर्ष ५४ अंक ८ (१९२३ अगस्त)

‡ Indian Antiquary. 1915; Intro, to Daskumar Charit (B. S. S,).

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कथा के आधार पर किसी ने पीछे से पूर्वपीठिका जोड़कर समग्र कथा का सिलसिला जारी रखा। इसी कारण कथा तथा पूर्वपीठिका में उल्लिखित अवन्तिसुन्दरी के आख्यान की अनेक घटनाओं में भिन्नता दिखाई देती है। जो हो, कथा को दण्डी की दूसरी रचना मानने में कोई सन्देह नहीं। तीसरे ग्रन्थ के विषय में मतभेद है। डाक्टर पिशल ने मृच्छकटिक को ही दण्डी की तीसरी रचना बताया था। पिटर्सन तथा जैकोबी ने 'छंदोविचिति' को ही तीसरी रचना होने का अनुमान किया था, परन्तु 'सा विद्या नौर्विविक्षुणाम्' में छन्दोविच्चिति को दण्डी ने ही विद्या कहा है, ग्रन्थ नहीं; अतएव यह ग्रन्थ न होकर छन्दःशास्त्र का द्योतक है *। इसी प्रकार 'कला परिच्छेद' को भी ग्रन्थ मानना उचित नहीं। सौभाग्यवश भोजराज इसके लिये हमारी सहायता करते हैं। उन्होंने अपने शृंगार प्रकाश † में दण्डी के 'द्विसंधान' नामक काव्य से निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है—

उदारमहिमारामः, प्रजानां हर्षवर्द्धनः
धर्मप्रभव इत्यासीत् ख्यातो भरतपूर्वजः।

धनंजय कवि का 'द्विसंधान' काव्य प्रकाशित हुआ है, परन्तु उसमें यह पद्य नहीं मिलता। यह कहना कठिन है कि 'द्विसंधान' का निश्चित विषय क्या है? सम्भवतः वह रामायण तथा महाभारत का सम्मिलित आख्यान होगा।

* Dr. Belvelkar. Notes on काव्यादर्श, Chapter 1st.

† इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की उपलब्धि अभी हाल में दक्षिण भारत में हुई है। यह मद्रास गवर्नमेंट के ग्रन्थ संग्रहालय में सुरक्षित है। कहा जाता है कि अलंकारशास्त्र पर इससे बड़ा और दूसरा ग्रन्थ नहीं है। इसमें लगभग ३० हजार श्लोक हैं और 'प्रकाश' नामक ३६ प्रकरण हैं। इसी में भोज ने 'शृंगारमेव रसनात् रसमामनामः' (एकावली) में वर्णित शृंगार की प्रधानता के सिद्धांत का वर्णन यथेष्ट रूप में किया है। इस महामूल्य ग्रन्थ के प्रकाशन से अलंकार शास्त्र की अनेक नई बातों का पता लगने की आशा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्व कवि-प्रशंसा

अवन्तिसुन्दरी कथा की छन्दोबद्ध भूमिका संस्कृत साहित्य के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें ऐसे प्राचीन कवियों के नाम आए हैं जिनका वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता और यदि मिलता भी है तो उसमें कुछ अपूर्व साहित्यिक बातों का सन्निवेश इसमें पाया जाता है। प्रथमतः 'सुबन्धु' नामक कवि के विषय में दण्डी का यह पद्य है :—

सुबन्धुः किल निष्क्रान्त विंदुसारस्य बन्धनात्।
तस्यैव हृदयं भित्वा वत्सराज..............॥

यद्यपि यह श्लोक खण्डित है तथापि इससे सुबन्धु के विषय में पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री की उपलब्धि होती है। सुबन्धु का सम्बन्ध विन्दुसार और वत्सराज के साथ किसी न किसी प्रकार से था। उपलब्ध वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु इससे भिन्न प्रतीत होते हैं, क्योंकि वासवदत्ता का समय कालिदासीय शकुन्तला * तथा कामसूत्र के कर्त्ता वात्स्यायन † (ई० पाँचवीं सदी) के स्पष्ट उल्लेख से पञ्चम शताब्दी के आसपास माना जाता है। नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनवगुप्त ने नाट्यायित (एक नाटक के भीतर अनेक नाटक) के उदाहरण में सुबन्धु रचित 'वासवदत्ता नाट्यधार' का उल्लेख किया है तथा कुछ अंश को उद्धृत भी किया है जिसमें वामन की काव्यालंकार-वृत्ति में उल्लिखित एक पद्यखण्ड ‡ में चन्द्रगुप्त के पुत्र 'चन्द्रप्रकाश' का नामोल्लेख पाया जाता है। वामन की वृत्ति से यह भी ज्ञात होता है

* विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वाससः शापमनुबभूव शकुन्तला।

† कामसूत्रविन्यास इव मल्लनागघटित कान्तारसामोदः।

‡ सोऽयं सम्प्रति चंद्रगुप्ततनयश्चंद्रप्रकाशो युवा।
जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्ट्या कृतार्थश्रमः।
आश्रयः कृतधियामित्यस्य वसुबंधुसाचिव्योपक्षेपपरतया साभिप्रायत्वम्।

...Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कि उसके प्रधान सचिव (मन्त्री या मित्र) वसुबन्धु (या सुबन्धु) थे। इस पद्यांश पर विद्वानों में बड़ा मतभेद है तथा अभी तक वह अनिश्चित है। स्मिथ ने एम० पेरी की सम्मति मानकर 'चन्द्रप्रकाश' से समुद्रगुप्त का आशय निकाला है तथा वसुबन्धु को चौथी सदी में मानकर उसी महान् गुप्त नरेश की सभा में उन्हें रखा है*। परन्तु हरप्रसाद शास्त्री तथा आर० नरसिंहचार्य ने जितनी हस्तलिखित प्रतियों की परीक्षा की है, उन सबमें 'वसुबन्धु' ही पाठ मिलता है। परन्तु वासवदत्ता के लेखक केवल एक ही वसुबन्धु की जानकारी से उस पाठ में विद्वानों का विश्वास नहीं था; क्योंकि सुबन्धु का समय पाँचवीं शताब्दी के बाद ही माना जाता है और उस समय में किसी चन्द्रगुप्त-तनय के साथ उसका सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता। परन्तु 'वासवदत्ता नाट्याधार' के कर्त्ता सुबन्धु के इस ऐतिहासिक उल्लेख से ऊपर का पाठ अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि चन्द्रगुप्त-तनय विन्दुसार ही था जिसकी सभा में सुबन्धु जैसे 'कृतधी' विद्वान् उपस्थित रहते थे†।

सुबन्धु तथा वत्सराज के नाम दर्शक रूप में पाए जाते हैं। अतः इस श्लोक में वर्णित सुबन्धु 'वासवदत्ता नाट्याधार' के रचयिता प्रतीत होते हैं और चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र के समसामयिक होने के कारण इनका समय २८० ई० पू० के आसपास जान पड़ता है।

---

* Early History of India (Third Edition) p, 334.

† Rangnath Saraswati: Vasubandhu or Subandhu. Proceedings and Transactions of Second Oriental Conference, p. 203-13.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुणाढ्य तथा चौर—शास्त्र के आचार्य मूलदेव के उल्लेख के अनन्तर महाकवि शूद्रक के विषय में यह श्लोक है—

शूद्रकेणासकृज्जित्वा स्वच्छया खड्गधारया।
जगद् भूयोऽप्यवष्टब्धं वाचा स्वचरितार्थया॥

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि शूद्रक न केवल महाविजयी राजा था; बल्कि संसार को चकित करनेवाला महाकवि भी था। अभी तक मृच्छकटिक प्रकरण के कर्त्ता-रूप में शूद्रक का नाम प्रसिद्ध था; परन्तु अब 'पद्मप्राभृतक' नामक भाण भी शूद्रक के नाम से उपलब्ध हुआ है। 'अवतिन्सुन्दरी कथा' में भी शूद्रक की विजय-वार्ता वर्णित है। पूर्वोक्त पद्य के 'वाचा स्वचरितार्थया' से प्रतीत होता है कि शूद्रक ने कविता में अपने जीवन की ही घटनाओं का वर्णन किया है। तो क्या मृच्छकटिक का विजयी आर्यक शूद्रक ही है? और भी अनेक उल्लेखों के आधार पर कुछ विद्वान् शूद्रक को ही विक्रमीय सम्वत् का संस्थापक मानने लगे हैं*।

महाकवि भास के विषय में लिखा है—

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः॥

इससे स्पष्ट है कि भास ने अनेक नाटकों की रचना की थी; परन्तु भास के नाम से प्रकाशित १३ नाटकों के रचयिता के विषय में इससे कुछ नई सामग्री नहीं मिलती।

'सेतुबन्ध' प्राकृत महाकाव्य के कर्ता प्रवरसेन के विषय में यह श्लोक पाया जाता है:—

सेतुरूपेण तिष्ठन्तो लोके सद्वस्तुदर्शिनः।
षट्पञ्चाशत्प्रमाणत्वं गताः नः कविपुंगवाः॥

---

* Mythic S. J. Vol, 13. No. 1.

Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जान पड़ता है कि सेतुबन्ध केवल एक कवि की रचना नहीं है, बल्कि अनेक कवियों ने इसके निर्माण में सहायता दी है। 'सेतुबन्ध' की हस्त-लिखित प्रति में 'वाकाटकानां महाराजधिराजस्य प्रवरसेनस्य कृतौ' लिखा हुआ है जिससे प्रवरसेन स्पष्टतः वाकाटकों का राजा प्रतीत होता है। प्रवरसेन द्वितीय ने कादम्ब नरेशों को हरा कर विदर्भ तक अपनी शक्ति बढ़ाई थी। उनका समय ४२० ई० के आस-पास माना जाता है।

कालिदास की मधुर कविता का वर्णन इसके अनन्तर किया गया है:—

लिप्तामधुद्रवेनासन् यस्य निर्विघ्नशा गिरः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्॥

किसी नारायण के विषय में नई सामग्री का पता निम्नलिखित पद्य से लगता है:—

व्याप्तुं पदत्रयेणापि यः शक्तो भुवनत्रयम्।
तस्य काव्यत्रयव्याप्तौ चित्रं नारायणस्य किम्।

पद्य में नारायण के तीन प्रबन्धोंका उल्लेख है। सम्भवतः 'वेणीसंहार' उनमें से एक होगा। परन्तु अन्य दो काव्यों का पता अभी तक नहीं लगा! ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन के द्वारा 'वेणीसंहार' के कई श्लोक ध्वनि के उदाहरण में उद्धृत किये गये हैं। वामन ने भी अपने अलंकारसूत्र में न केवल इससे पद्य ही उद्धृत किया है, वरन् 'पतितं वेत्स्यसि क्षितौ' में पदभंग के द्वारा 'वेत्स्यसि' शब्द की सद्यः प्रतीयमान व्याकरण सम्बन्धो अशुद्धि का भी यथेष्ट निराकरण किया है। इससे जान पड़ता है कि वामन के समय में ८ वीं सदी के अन्त में भट्टनारायण की कविता विशेष आदर के साथ देखी जाती थो तथा उनके प्रयुक्त पद प्रामाणिक माने जाते थे। अब कथा में उनका उल्लेख होने से उनका समय निश्चय-पूर्वक निर्धारित किया जा सकता है। दंडी के इस उल्लेख से प्रतीत होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है कि नारायण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भाग है। वे धर्मकीर्ति और भट्टबाण के समकालीन जान पड़ते हैं।

अनन्तर बाणभट्ट तथा मयूरभट्ट का वर्णन एक ही पद्य में किया गया है।

> भिन्नस्तीक्ष्णमुखेनापि चित्रं बाणेन निर्व्यथः।
> व्याहारेषु जहौ लीलां न मयूर............॥

राजशेखर ने अपनी कवि-प्रशंसा में बाण और मयूर को हर्षवर्धन (६०६-६४८) ई० का समकालीन बतलाया है। पद्मगुप्त के 'नवसाहसांक-चरित' से इसकी पुष्टि होती है।* बाणभट्ट की इस प्रशंसामयी सूचना से निश्चित रूप से अनुमान किया जा सकता है कि दण्डी का आविर्भाव–काल बाण के अनन्तर है। इसके द्वारा ऊपर सिद्ध किये गये दण्डी के समय की यथेष्ट पुष्टि होती है। यही क्यों, कथा में कादम्बरी की कहानी भी पूर्ण रूप से वर्णित है। दण्डी ने कादम्बरी की प्रत्येक घटना का वैसा 'ही वर्णन किया है जैसा बाण ने पूर्वार्द्ध' कादम्बरी में। परन्तु कादम्बरी कथा के उत्तरार्द्ध की पूर्ति दण्डी ने अपनी उर्वरा कल्पना शक्ति से की है। इस कारण बाणभट्ट के सुपुत्र पुलिन्दभट्ट द्वारा पूरित उत्तरार्द्ध से यह कथा बिल्कुल ही भिन्न है।

कादम्बरी–कथा की समानता से भी दण्डी का काल बाण के अनन्तर पूर्ण रूप से निश्चित होता है। इसमें सन्देह करने का लेश मात्र भी स्थान नहीं है।

ग्रन्थ का विषय

ऊपर लिखा जा चुका है कि अवंतिसुन्दरी-कथा का वही विषय है जिसका वर्णन दशकुमार चरित की पूर्वपीठिका में किया गया है। कथासार इसी

* श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कथा का छन्दोबद्ध सारांश है। कथा में वररुचि, शूद्रक, कादम्बरी आदि अनेक उपकथाएँ भी निबद्ध हैं जिनसे यह ग्रन्थ बृहत्कथा के ढङ्ग पर रचा गया प्रतीत होता है। वादि घंघाल (जंघाल) ने काव्यादर्श की टीका में अवन्तिसुन्दरी कथा नामक आख्यायिका का उल्लेख किया है और वल्लभदेव की सुभाषितावली से विभिन्न एक अन्य सुभाषितावली में दण्डी के नाम से व्यास के विषय में वही पद्य पाया जाता है जो इस कथा के प्रथम परिच्छेद में दिया गया है। इससे भी इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता अच्छी तरह से अनुमित होती है। दण्डी की रचना-शैली बड़ी ओजस्विनी है। उसमें बाणभट्टके समान ही आनन्द आता है। रचना का ढङ्ग भी उससे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। परन्तु जहाँ तहाँ अर्थ की कठिनता जान पड़ती है। तथापि इस गद्य काव्य की सुभग रचना एक महाकवि के सर्वथा उपयुक्त है, इसमें सन्देह नहीं। अभी तो इस ग्रन्थ के सात ही परिच्छेद प्राप्त हुए हैं। शेष भाग का लोप संस्कृत साहित्य तथा भारतीय इतिहास दोनों के लिये विशेष हानिकर हुआ है। निम्नलिखित अंश को ग्रन्थ से उद्धृत कर यह निबंध समाप्त किया है—

......तरङ्गमयी भ्रुपताकयोः, इन्दीवरमयी नयनयुगे, रक्तोत्पलमयी दन्तच्छदे, कुमुदमयी ईषत्स्मितेषु,...अमृतमयी वचसि, प्रसादमयी मनसि, चक्रवाकमयी पयोधरयोः, आवर्तमयी नाभिरन्ध्रे, पुलिनमयी नितम्बतटेषु, पुष्करमयी पादतलयोः, अमर....पभोगायतीर्ण मन्दाकिनीलीलाकरकान्तिराग प्राचुर्याणि, पञ्चैव महाभूतस्थाने निधाय निर्मितेव प्रजापतिना, प्रावृडिव घनगभीरस्तननाभि रमणी, शरदिव सरसां कान्तिमुद्वहन्ती, हेमन्तवृत्तिरिव प्रालम्बिनी हारमालिनी, शिशिरश्रीरिव नवनवमालिका वसंतवेलेव चारुभुजवास-भूषितनतुलता सर्वर्तुसवृत्तियौवननंदनस्वभावा.........देवी वसुमती नाम।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(११) कविराज धोयी

कौन ऐसा संस्कृतज्ञ होगा जिसने कालिदास के मेघदूत का नाम न सुना हो। शब्दों की सुन्दर योजना, अर्थों की मनोरम कल्पना तथा मानवीय भावों का सरस चित्रण—इन सब दृष्टियों से महाकवि कालिदास की अमर कृतियों में यह खण्डकाव्य अत्यन्त मधुर तथा रमणीय समझा जाता है। प्राचीन काल में इस काव्य की बड़ी प्रसिद्धि थी। बहुत-से लोग संस्कृत साहित्य भर में इसे ही अपनी रुचि के अनुसार प्रधान स्थान दिया करते हैं, जैसा 'मेघे माघे गतं वयः' इस प्रसिद्ध आलोचनात्मक वाक्य से स्पष्टतया ज्ञात होता है। कालिदास के अनन्तर होनेवाले कवियों को यह काव्य इतना भाया, इसने उनके हृदय में ऐसा घर कर लिया कि उसके विषय तथा शैली का अनु-सरण अनेक प्रसिद्ध परवर्ती कवियों ने किया है। इन काव्यों को 'दूत-काव्य' अथवा 'संदेश-काव्य' नाम दिया गया है, क्योंकि कालिदास की इस अमर कृति के अनुरूप इन कवियों ने इन काव्यों में वायु, हंस, चातक, कोयल आदि निर्जीव तथा सजीव वस्तुओं के द्वारा किसी प्रियतम के पास संदेशा भेजवाया है। संदेशा भेजवाने के कारण इस काव्य-समूह का नाम 'सन्देश-काव्य' पड़ गया। संस्कृत साहित्य का यह काव्य-समूह अपना एक विशेष आदरणीय स्थान रखता है। इस 'सन्देश-काव्य' में, जहां तक इतिहास से अब तक पता चलता है, सबसे पहला स्थान 'पवनदूत' को दिया जाता है। आज हम इसी सुन्दर 'पवनदूत' तथा इनके रचयिता कविराज धोयी के विषय में संक्षेप में कुछ निवेदन करना चाहते हैं।

उपक्रम

सबसे पहले महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री ने अपनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की रिपोर्ट की पहली जिल्द में 'पवनदूत' की स्थिति के विषय में सूचना दी। अनंतर १९०५ में श्रीमनोमोहन चक्रवर्ती ने बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में 'पवनदूत' का सर्वप्रथम संस्करण निकाला। परन्तु केवल एक ही हस्तलिखित प्रति के आधार होने से इस संस्करण में बहुत कुछ संदिग्ध अंश विद्यमान थे जिनके संशोधन का उपाय न होने से ये अगत्या स्वीकृत कर लिये गए थे। हाल में ही कलकत्ते की संस्कृत साहित्य-परिषद् ने इस खण्ड काव्य का एक शुद्ध तथा सुन्दर संस्करण निकालकर संस्कृत साहित्य के प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है। तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर यह संस्करण तैयार किया गया है; अतएव पहले संस्करण की अपेक्षा यह संस्करण अनेक अंशों में विशुद्ध तथा उपायदेय है। मनोमोहन चक्रवर्ती के संस्करण का, सोसायटी की पत्रिका में प्रकाशित होने के कारण, सुलभ प्रचार नहीं था। केवल जानकारों को छोड़कर सर्वसाधारण को इसे देखने का अवसर बहुत ही कम प्राप्त था। इस अभाव की पूर्ति कर संस्कृत-परिषद् ने काव्य-प्रेमियों पर बड़ा भारी अनुग्रह किया है और उसके लिये वह हमारे सादर धन्यवाद का पात्र है। इसी परिषद्वाले संस्करण से इस लेख में आगे चलकर श्लोक उद्धृत किए जायंगे तथा यथावकाश इसी संस्करण का स्थान स्थान पर निर्देश मिलेगा।

पवनदूत के संस्करण

'पवनदूत' के रचयिता का नाम सूक्ति-ग्रंथों तथा इस काव्य की प्रतियों में भिन्न भिन्न रूपों में उपलब्ध होता है। कहीं उनका नाम 'धूयी' है, तो कहीं 'धोयी'। कहीं 'धोई' पाया जाता है तो कहीं 'धोयीक'। इन सब में इन्हीं के सम-

रचयिता का समय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामयिक महाकवि जयदेव के गीतगोविंद के अनुसार 'धोयी' नाम ही प्रायः चुन लिया गया है और इसी नाम से इस कवि की प्रसिद्धि भी है। अन्य नाम इसी के संस्कृत अथवा विकृत रूप माने जा सकते हैं। इस महाकवि के समय का निरूपण आभ्यंतर तथा बाह्य साधनों की सहायता से बड़ी सरलता के साथ किया जा सकता है। आंतरिक साधनों से निश्चित किए गए सिद्धान्त को ही, वाह्य सामग्री की सहायता से, यथेष्ट पुष्टि होती है। दोनों में किसी प्रकार की विषमता लक्षित नहीं होती।

'पवनदूत' के अंत के श्लोकों में कवि ने अपना कुछ व्यक्तिगत परिचय दिया है। कवि अपने विषय में कहता है—

दंतिव्यूहं कनकलतिकां चामरं हैमदण्डं
यो गौडेंद्रादलभत कविक्ष्माभृतां चक्रवर्ती।
श्रीधोयीकः सकलरसिकप्रीतिहेतोर्मनस्वी
काव्यं सारस्वतमिव महामंत्रमेतज्जगाद॥

(पवनदूत, श्लो० १०१.)

इस पद्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि धोयी कवियों में चक्रवर्ती के समान उन्नत स्थान रखते थे तथा गौड देश (बंगाल) के किसी राजा से इन्होंने अनेक हाथी, चामर आदि बहुमूल्य वस्तुयें पारितोषिक के रूप में पाई थीं। इस 'गौडेंद्र' का वर्णन तथा नामनिर्देश भी इस काव्य के आरम्भ में ही किया गया है। पवनदूत के दूसरे श्लोक में 'क्षौणिपाल लक्ष्मण' का नाम दिया गया है, जिससे स्पष्ट विदित होता है कि धोयी कवि बंगाल के विद्याप्रेमी अंतिम नरेश श्रीलक्ष्मण सेन के आश्रय में थे।

इसी सिद्धांत की पुष्टि बाह्य परीक्षा से भी उचित मात्रा में की जा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकती है। लक्ष्मण सेन की सभा में पांच प्रसिद्ध पंडित थे जो उसकी समिति के पंचरत्न थे। इनके नाम ये हैं—

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य तु॥

इस पद्य में 'कविराज' से अभिप्राय हमारे चरितनायक धोयी से ही है। पवनदूत की पुष्पिका—श्रीधोयीकविराजविरचितं पवनदूताख्यं काव्यं समाप्तम्—में कविने अपनेको 'कविराज' कहा है। ऊपर उद्धृत श्लोक के 'कविस्माभृतां चक्रवर्ती' के द्वारा भी इसी नाम की ओर निस्संदिग्ध संकेत है। धोयी के समसामयिक जयदेव ने अपने गीतागोविंद में 'श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः' लिखा है जिसमें इनकी 'कविराज' उपाधि की सूचना स्पष्टाक्षरों में उपलब्ध होती है। सारांश यह है कि जयदेव के उल्लेख तथा ऊपरवाले श्लोक के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये लक्ष्मण सेन की समिति के पंचरत्नों में से एक उज्ज्वल रत्न थे। लक्ष्मण सेन का राज्यकाल बारहवीं सदी का अंतिम भाग है। अतः धोयी कवि का काल द्वादश शताब्दी का उत्तरार्ध है, यह निश्चित सिद्धांत समझा जाना चाहिये। जान पड़ता है कि धोयी की कीर्ति शीघ्र ही चारों ओर व्याप्त हो गई थी; क्योंकि ११२७ संवत् (१२०५ ईस्वी) में लिखे गए 'सदुक्तिकर्णामृत' नामक प्रसिद्ध सूक्ति ग्रंथ में इनके बहुत से सुन्दर पद्य उद्धृत किए गए हैं। अतः इससे भी पूर्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धांत की ही पुष्टि होती है। सारांश यह है कि कविराज* धोयी बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन की सभा के पंडित थे और बारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में विद्यमान थे।

धोयी की समग्र रचनाओं का पता नहीं चलता। 'पवनदूत' ही उनकी अमर कीर्ति का एकमात्र स्तंभ है। कवि ने इस काव्य को अपनी वृद्धावस्था

* 'राघवपांडवीय' नामक काव्य के रचयिता का भी नाम 'कविराज' था। इनका हमारे चरितनायक के कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों भिन्न भिन्न व्यक्ति थे; विभिन्न प्रांतों में दूसरे राजाओंकी संरक्षकता में रहनेवाले है। राघवपांडवीय के कर्त्ता दक्षिण के कादम्ब बंशी नरेश कामदेव की सभा में थे। ग्रंथ (१, १३) में कवि ने अपने आश्रयदाता राजा कामदेव की प्रशंसा की है तथा पुष्पिका में अपने ग्रंथ को राजा के द्वारा प्रोत्साहित किए जाने पर लिखे जाने की बात कही है। डाक्टर फ्लीट के कथनानुसार राजा कामदेव १२ वीं शताब्दी के अंतिम भाग तथा १३ वीं के आरंभ में विद्यमान थे। अतः राघवपांडवीय भी लगभग १२०० ईस्वी के आसपास लिखा गया था। डाक्टर मैक्डानल ने लिखा है (देखिये History of Sanskrit Literture पृ० ३३१) कि कविराज ने ८०० ईस्वो में अपना राघवपांडवीय बनाया। यह नितांत अशुद्ध है। अतः राघवपांडवीय वाले कविराज पवनदूत के कर्त्ता कविराज धोयी से भिन्न तथा कुछ पीछे के ठहरते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में लिखा था, ऐसा प्रतीत होता है; क्योंकि ग्रंथ के अंतिम श्लोक* में कवि ने ब्रह्माभ्यास में दिन बिताने की अपनी उत्कट अभिलाषा प्रकट की है। 'वाक्संदर्भाः कतिचिदमृतस्य न्दिनो निर्मिताश्च' इससे अन्य सरस रचना की ओर कवि का संकेत जान पड़ता है। परन्तु अभी तक पवनदूत को छोड़कर धोयी का कोई अन्य ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है। केवल पीछे के सूक्ति-ग्रंथों में इनकी अनेक सूक्तियां संरक्षित हैं। ये किसी काव्य-ग्रंथ से चुनी गई हैं, परन्तु इस विषय में सिद्धांत रूप से कुछ भो नहीं कहा जा सकता।

ग्रंथ

जिस समय में धोयी ने अपना काव्य बनाया, वह काल संस्कृत साहित्य के लिये—विशेषतः बंगाल में संस्कृत साहित्य के लिये—अत्यन्त महत्व का था। राजा लक्ष्मण सेन उस समय राज कर रहे थे। सेनवंशी राजाओं में ऐसा विद्याप्रेमी नरेश शायद ही कोई हुआ था। राजा स्वयं सरस्वती के उपासक थे। इनके अनेक सूक्तियां 'सदुक्तिकर्णामृत' में संग्रहीत की गई हैं। इनकी सभा में पंडितों तथा कवियों का खासा जमघट था। इनकी समिति के पंच-रत्नों का नाम ऊपर दिया गया है। जयदेव ने भी अपने गीत-गोविंद ‡में इन पाँचों कवियों के नाम तथा उनके काव्य की विशेष-

समसामयिक कवि और पंडित

---

* कीर्तीर्लब्धा सदसि विदुषां शीतलक्षौणिपाला
वक्संदर्भाः कतिचिदमृतस्यन्दिनो निर्मिताश्च।
तीरे संम्प्रत्यमरसरितः क्वापि शैलोपकंठे
ब्रह्माभ्यासे प्रयतमनसा नेतुमीहे दिनानि ॥
(पवनदूत, १०४)

‡ वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः संदर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एय शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः।
श्रृंगारोत्तरसत्प्रमेयवचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः ॥
(गीतगो० १. ४.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ताओं का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। इनमें उमापतिधर* उतने प्रसिद्ध नहीं हैं, जितने वे होने चाहिये। इनके बहुत-से श्लोक 'सदुखिकर्णामृत' में चुनकर रखे गए हैं जिनसे वाक्य को पल्लवित करने की इनकी कला का पूरा आभास मिलता है। कहा जाता है कि इन्होंने 'चंद्रचूडचरित' नामक काव्य लिखा था जिसके पुरस्कार में चाणक्यचंद्र नामक राजा ने सैकड़ों गांव तथा लाखों रुपये इन्हें दिए थे। एक श्लोक † में ग्रंथ का नाम-निर्देश मिला है; परंतु ग्रंथकार का नाम न होने से इसके विशय में ठीक नहीं कहा जा सकता। उमापतिधर की केवल उपलब्ध रचना विजयसेन राजा का देवपारावाला शिलालेख है। इसमें विजयसेन की प्रशस्त प्रशस्ति है। जयदेव के अलौकिक गीतिकाव्य को कौन नहीं जानता? वह तो संस्कृत भाषा की मधुरिमा का चूड़ांत निदर्शन है—संस्कृत साहित्य का एक चमकीला स्वर्गीय हीरा है। शरण ने कविता लिखने के अतिरिक्त व्याकरण का अनुपम ग्रंथ बनाया है जिनमें समस्त अपाणिनीय प्रयोग की सिद्धि पाणिनीय सूत्रों से ही यथाविधि की गई है। इस ग्रंथ का नाम 'दुर्घटवृत्ति' है। आचार्य गोवर्धन की सरस श्रृंगारमयी कविता को उत्कृष्ट नमूना उनकी 'आर्यासप्तशती' है जिसमें सात सौ आर्याओं में भिन्न भिन्न विषयों पर मनोहर कविता की गई है। कवि-क्ष्मापति धोयी तो इस प्रबंध के नायक ही हैं। जयदेव ने इन्हें 'श्रुतिधर' कहा है जिससे इनकी अलौकिक स्मरण-शक्ति का आभास मिलता है।

---

* 'पारिजातहरण' के रचयिता उमापति कवि मैथिल थे तथा १४ वीं शताब्दी के रहनेवाले थे। 'उमापतिधर' से वे सर्वदा भिन्न थे। देखिए 'पारिजातहरण' पर मेरा लेख; माधुरी पूर्ण संख्या २४।

† निष्पन्ने सति चंद्रचूडचरिते तत्तन्नृपप्रक्रिया-
जातैः सार्धमरातिराजकशिरोरत्नांजलीनां त्रयम्।
तप्तस्वर्णशतानि विंशति शतीरूप्यस्य लक्षत्रयं
ग्रामाणां शतमन्तरङ्गकवये चाणक्यचंद्रो ददौ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव केपूर्वोक्त श्लोक को व्याख्या करते समय राणा कुंभ ने 'श्रुतिधर को एक नवीन कवि बतलाया है*। परंतु यह बात ठीक नहीं जंचती।' जयदेव ने धोयी कविराज के लिये 'श्रुतिधर' शब्द का प्रयोग किया है। शंकर मिश्र ने गीतगोविंद की अपनी रसमंजरी नामक टीका में पूर्वोक्त पद्य की व्याख्या करते समय धोयी के लिये ही श्रुतिधर शब्द के प्रयुक्त होने की बात लिखी है। सदुक्तिकर्णामृत में धोयी कवि का 'दंतिव्यूहं कनकलतिकां' वाला श्लोक उद्धृत किया गया है जिसका उत्तरार्द्ध पवनदूत में दिए गए पाठ से सर्वथा भिन्न है। पद्य का उत्तरार्ध इस प्रकार है—

ख्यातो यश्च श्रुतिधरतया विक्रमादित्यगोष्ठी-
विद्याभर्त्तुः खलु वररुचेरासस।द प्रतिष्ठाम्।

इस पद्यांश में कवि ने अपनी ओर संकेत करते हुए अपने को श्रुतिधर होने से ख्याति प्राप्त करनेवाला कहा है। इसे जयदेव के 'श्रुतिधरः' शब्द की मानो व्याख्या ही समझना चाहिए। सारांश यह है कि 'श्रुतिधर' को धोयी का ही विशेषण समझना चाहिए। केवल राणा कुंभ के कथन पर लक्ष्मण सेन की सभा में एक नवीन कवि की कल्पना करना, कम-से-कम अब उपलब्ध साधनों के आधार पर, सर्वथा अनुचि प्रतीत होता है। †

इस कविपंचक के अतिरिक्त ईशान, पशुपति तथा हलायुध— इन तीनों प्रसिद्ध भाइयों ने लक्ष्मणसेन की सभा की शोभा बढ़ाई थी। इन लोगों ने

---

* इति षट् पंडितास्तस्य राज्ञो लक्ष्मणसेनस्य प्रसिद्धा इति रूढ़िः। श्रुतिधरनामा कविर्विश्रुतो विख्यातः स तु तस्य गुणैरेव प्रसिद्धिः।

धोयीनामा कविराजः श्रुतिधरः श्रुतिः श्रवणं तन्मात्रादेव ग्रंथग्राही।

—गी० गो० पृ० ९।

† 'श्रुतिधर' नाम के कवि की कुछ सूक्तियां सुभाषितावलि तथा शार्ङ्गधरपद्धति में मिलती हैं। श्रुतधर और श्रुतिधर धोयी एक थे या भिन्न? यह ठीक नहीं कहा जा सकता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्मकांड विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इनकी रचनाओं को आज भी बंगाल में महत्त्व प्राप्त है तथा ये प्रमाणिक मानो जाती हैं।

पुरुषोत्तमदेव का भी यही समय है। इन्होंने पाणिनीय अष्टाध्यायी के वैदिक सूत्रों को छोड़कर अन्य सूत्रों पर एक सुन्दर वृत्ति लिखी है जो 'भाषावृत्ति' कहलाती है। यह वृत्ति भी राजा लक्ष्मण सेन की आज्ञा से ही संस्कृत व्याकरण सिखाने के लिये बनाई गई थी। *

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि बंगाल के सेनवंशी राजाओं में लक्ष्मण सेन का राज्यकाल संस्कृतसाहित्य के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इसी काल में हमारे चरितनायक धोयी हुए थे। लक्ष्मण सेन की अभिजन-भूयिष्ठा परिषद् में भी इनके सम्मानित होने से इनके गौरव तथा महत्ता का अनुमान सहज ही में किया जा सकता है।

पवनदूत की कथा बहुत ही सीधी सादी है। लिखा है कि 'भुवन-विजय' करते करते राजा लक्ष्मण सेन मलयाचक तक जा पहुँचे। वहां

कथा तथा महत्व

'कुवलयवती' नामक गंधर्वकन्या उनके अलौकिक रूप को देखकर मुग्ध हो गई। राजा के अपने देश लौट आने पर वह बहुत दुःखित हुई और राजा के पास अपना संदेशा भेजने के लिये उससे पवन को भेजा। इसी कारण इसे 'पवनदूत' नाम दिया। पवन के जाने के लिये कुवलयवती ने मार्ग का वर्णन किया है। पाँड्य (देश), उरगपुर, ताम्रपर्णी (नदी), सेतु, कांची (पुरी), सुवला (नदी), कावेरी (नदी), माल्यवान् (पर्वत), पंचासर (तालाव), कलिंग (देश) इन सबों को पाकर पवन को 'विजतपुर' नामक राजधानी के पास जाने के लिये कहा जाता है। अनंतर लक्ष्मण सेन के लिये मनोरम संदेश दिया गया है। ग्रन्थ में सब मिलाकर १०४ श्लोक हैं।

---

* वैदिकप्रयोगानर्थिनो लक्ष्मणसेनस्य राज्ञ आज्ञया प्रकृते कर्मणि प्रसजन् वृत्तेर्लघुतायां हेतुमाह।—भाषावृत्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस काव्य के भौगौलिक वर्णन के आधार पर १२ वीं सदी के भारतवर्ष की भौगौलिक स्थिति का पता चलता है परन्तु इस विषय में ग्रन्थ का विशेप महत्व नहीं है। विशेष महत्त्व इसका है लक्ष्मण सेन के 'भुवनविजय' की ऐतिहासिक घटना पर। लक्ष्मण सेन के अब तक उपलब्ध शिलालेखों से यह नहीं पता चलता कि इन्होंने दक्षिण देश पर विजय प्राप्त की थी। परन्तु इस काव्य से उनके दिग्विजय-प्रसंग में दक्षिण जाने की घटना जानी जाती है। समकालीन कवि के द्वारा वर्णन की गई इस घटना में कुछ तथ्य अवश्य होगा।

कालिदास के मेघदूत की भांति पवनदूत की रचना मंदाक्रांत छंद में की गई है। धोयी को कविराज की उपाधि मिली थी। इस उपाधि के

आलोचना औचित्य या अनौचित्य पर विना विचार किए ही हम कह सकते हैं कि इनकी उपलब्ध रचनाओं से किसी विशेष कवि-प्रतिभा की व्यंजना नहीं होती। पवनपूत के श्लोकों में प्रसादगुण यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध होता है। कविता सरल है—कविता का प्रभाव स्वभाविक ढंग से बह रहा है। शब्द साफ सुथरे हैं। वाक्यविन्यास मनोरम है। भाव भी यत्र तत्र सुन्दर है—नवीनता से भरे हैं। इन सब बातों पर विचार करने से यही परिणाम निकलता है कि धोयी काव्य कालिदास के मेघ के समान सर्वांग रमणीय न होने पर भी कविता के गुणों से खाली नहीं है। कुछ उदाहरणों से पवनदूत को विशेष सहज ही में जानी जा सकेगी।

कवि कुवलयवती की विरहजन्य कृशता का वर्णन कर रहा है—

मुष्टिग्राह्यं किमपि विधिना कुर्वता मध्यभागं
मन्ये बाला कुसुमधनुषो निर्मिता कार्मुकाय।
राजन्नुच्चैर्विरहजनितक्षामभावं वहन्ती
जाता संप्रत्यहह सुतनुः सा च मौर्वीलतेव॥
—(६६)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावार्थ—हे राजन्, ब्रह्मा ने तो स्वयं उसकी कमर को बहुत पतली बनाया है। उसका मध्यभाग इतना पतला है कि मुट्ठी में पकड़ा जा सकता है—वह मुष्टिमेय है। जान पड़ता है कि पुष्पधन्वा कामदेव के धनुष के लिये यह नायिका बनाई गई थी; परन्तु आज वह विरह-दुःख के कारण बहुत ही कृश हो गई है—इतनी पतली हो गई है कि अब धनुष के अनुरूप न रह गई। हाँ, उसकी डोरी का कुछ-कुछ काम कर सकती है।

वियोग-वर्णन का एक दूसरा उदाहरण लीजिए—

सारंगाक्ष्या जनयति न यद् भस्मसादंगकानि
त्वद्‌विश्लेषे स्मरहुतवयः श्वाससंधुक्षितोऽपि।
जाने तस्याः स खलु नयनद्रोणिवारां प्रभावो
यद्वा शश्वन्नृप तव मनोवर्तिनः शीतलस्य॥
—(७५)

भावार्थ—हे राजन्, तुम्हारे वियग में कामरूपी अग्नि श्वास के पवन से संधुक्षित होने पर भी—साँस की हवा से धौंके जाने पर भी—उस मृगनयनी के कोमल अंगों को जलाकर राख नहीं बना रहा है। इसमें केवल दो ही कारण दिखाई पड़ते हैं। वह लगातार रो रही है। उसके आंखों से अनवरत आंसू को धारा बह रही है। उसकी आंखें भी बड़ी सुन्दर द्रोणि (पानी उलीचने के लिये पात्र-विशेष) की भांति हैं। बस, लगातार आंखों की इस अश्रु धारा के कारण ही उसका शरीर जलता नहीं*। अथवा तुम्हारी ही शीतल मूर्ति उसके हृदय में बैठी हुई है। काम कितना भी जलाना चाहे वह जला नहीं सकता। उसके हृदय में वास करनेवाली

* धोयी का इसी भाव से मिलता जुलता एक अन्य पद्य 'सदुक्तिकर्णामृत' में दिया गया है—

दरविगलितदूर्वादुर्वलान्यंगकानि
ग्लपयति यदस्याः श्वासजन्मा हुताशः।
स खलु सुभग मन्ये लोचनद्वंद्ववारा-
मविरतपटुधारावाहिनीनां प्रभावः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुम्हारी मूर्ति सदा उसे शीतल बनाए हुए है। इन्हीं कारणों से वह अब तक बची चली आ रही है। इस श्लोक में वियोगावस्था की ज्वाला तथा अश्रु के अनवरत प्रवाह की बहुत ही अच्छी व्यंजना की गई है। कवि ने एक साधारण बात को विलक्षण ढंग से लिखा है।

पवनदूत में मेघदूत की समानार्थक अनेक उक्तियां मिलती हैं—बहुत-से श्लोकों में भाव-साम्य मिलता है। मेघदूत में कलिकुलगुरु कालि-

धोयी और कालिदास

दास की लोकोत्तरशायिनी प्रतिभा का सुन्दर विकास मिलता है। इतने सुन्दर और कोमल भाव हैं कि उसी विषय पर लिखनेवाले परवर्ती कवियों के काव्यों पर उनका प्रभाव बिना पड़े रही नहीं सकता। हुआ भी है बहुत कुछ ऐसा ही। धोयी के ऊपर कालिदास का खूब प्रभाव पड़ा था। पवनदूत को सरसरी तौर पर पढ़नेवाले पाठकों के भी यह बात ध्यान में आए बिना नहीं रह सकती। मेघदूत के मनोहर भावों तक ही यह समानता परिमित नहीं हैं बल्कि शब्दों तक भी पहुंची हुई है। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्टतः दिखाई जा सकती है—

(१) हित्वा कांचीमविनयवती भुक्तरोधोनिकुंजाम्।

(प० दू० १५)

स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधू भुक्तकुंजे मुहूर्तम्।

(मे० दू० १.१६)

(२) संसर्पंतीं प्रकृतिकुटिलां दर्शितावर्तचक्राम्।

(प० दू० ३४)

संसर्पंत्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।

(मे० दू० १.२६)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) आसाद्यातः कमपि समयं सौम्य वक्तुं विविक्ते,
देवं नीचैर्विनयचतुरः कामिनं प्रक्रमेथाः ।
(प० दू० ६१)

विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरस्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ।
(मे० दू० २,३७)

कविराज धोयी के काव्य का यही संक्षिप्त परिचय है। इस संक्षिप्त वर्णन से ही पाठक धोयी की मनोरम काव्य-कला का परिचय पा चूके होंगे। अंत में इस सरल दूत-काव्य के सर्वत्र प्रचार तथा मंगलमय दीर्घ जीवन के लिये धोयी के ही शब्दों में आशा रखते हुए हम कह सकते हैं—

यावच्छंभुर्वहति गिरजासंविभक्तिं शरीरं
यावज्जैत्रं कलयति धनुः कौसुमं पुष्पकेतुः ।
यावद्राधारमणतरुणीकेलिसाक्षी कदंव-
स्तावज्जीयात् कविनरपतेरेष वाचां विलासः ॥

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१२) वेङ्कटाध्वरि

हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार करने तथा बुद्ध-धर्म के टिमटिमाते दीपक को सदा के लिये बुझाने में दक्षिण भारत ने जो प्रशंसनीय कार्य किया है वह हिन्दुधर्म के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। इस प्रांत के विद्वान् और धार्मिक सुधारकों ने हिन्दू धर्म को नया रूप प्रदान किया है। यह प्रदेश अति प्राचीन काल से संस्कृत विद्या की उर्वरा भूमि था; दर्शन, साहित्य तथा व्याकरण के पुनरुद्धार में इस प्रदेश ने जो अनुपम कार्य किया है वह धार्मिक सुधारों की अपेक्षा कम महत्व का नहीं है। इसी प्रदेश को शंकराचार्य, रामानुज आदि प्रसिद्ध सुधारकों ने जन्म लेकर पवित्र किया; इसी प्रदेश में अप्पय दीक्षित, नीलकंठ दीक्षित, रामभद्र दीक्षित आदि प्रचण्ड विद्वान् कवि उत्पन्न हुए जिन्होंने अपनी अपूर्व, मौलिक कृतियों से संस्कृत-साहित्य रत्नाकर को रत्नपूर्ण किया। सच पूछिये तो अलंकार शास्त्रका प्राण मय प्रदेश काश्मीर तथा दक्षिण भारत ही है। संस्कृत भाषा के प्रायः प्रथम श्रेणी के कितने कवियों ने इस प्रदेश को सुशोभित किया था। आज मैं इन श्रेष्ठ कवियों में से अतिप्रसिद्ध एक कवि की रचनाओं का आनन्द हिन्दी भाषा भाषियों को चखाने के लिये उद्यत हूं।

इनका नाम वेंकटाध्वरि था। सौभाग्यवश इनके ग्रन्थों में जन्मस्थान माता-पिता आदि का नाम निर्देश पाया जाता है। आपके पितामह का नाम अप्पय गुरु था तथा पिता का रघुनाथ दीक्षित। पाठकों ने कुवलयानन्द चित्रमीमांसा आदि अलंकार ग्रन्थों के तथा सिद्धान्त तत्त्वलेश आदि अनुपम उच्चकोटि के दार्शनिक ग्रन्थों के रचयिता श्री अप्पय दीक्षित का नाम सुना होगा। वेंकटाध्वरि के पितामह अप्पय गुरु इन प्रसिद्ध अप्पय दीक्षित सर्वथा भिन्न थे। अप्पय दीक्षित अद्वैत मत के बड़े आचार्य, शिव के परम भक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा वैष्णवमत के खण्डन करनेवाले थे। सुना जाता है कि व्यङ्कटपति नामक किसी राजा की सभा में अप्पय दीक्षित ने 'ताताचार्य' नामक विद्वान के मत का सविस्तर खण्डन किया था। उसी दिन से ताताचार्य के साथ इनकी शत्रुता हो गई। एक बार अप्पय दीक्षित किसी जंगल से होकर कहीं जा रहे थे। ताताचार्य ने अपने वैर के प्रतिकार के लिये इस अनुपम अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया। झट दीक्षितजी के प्राणों का संहार करने के लिये कई चाण्डालों को भेजा। चाण्डालों ने दीक्षितका पीछा किया। पर अपने भक्तपर इस कठिन विपत्ति को आई देख आशुतोष शंकर ने झट एक भयंकर वीर पुरुष का रूप ग्रहण कर लिया। चाण्डाल भय से भाग गये और दीक्षित के प्राण बचे। यह ताताचार्य एक असाधारण विद्वान् थे; कर्नाटक के राजा कृष्णराय के गुरु थे; सुना जाता है कि 'सात्विक ब्रह्म विद्या विलास' नामक वेदान्त ग्रन्थ की रचना आपने की है। हमारे अप्पय गुरु इन्हीं ताताचार्य के भागिनेय—भानजा—थे। यह बात विश्व-गुणादर्श चम्पू के आदि में हमारे कविवर ने स्वयं लिखी है :—

काञ्चीमण्डल मण्डनस्य मखिनः कर्नाट भूभृद्गुरोः
तातार्यस्य दिगन्तकान्तयशसो यं भागिने यं विदुः।
अस्तीकाध्वर कर्तु रप्पय गुरोरस्यैष विद्वन्मणेः,
पुत्रः श्री रघुनाथ दीक्षितकविः पूर्णो गुणैरेधते ॥
तत्सुतस्तर्कवेदान्ततंत्रव्याकृतिचिन्तकः
व्यक्तं विश्वगुणादर्शं विधत्ते वेङ्कटाध्वरिः।

सारांश यह है कि अप्पय गुरु काञ्चो प्रान्त के अलंकारभूत अनेक यज्ञकर्ता कर्नाटक राजगुरु ताताचार्य के भानजे थे; उन्होंने अनेक यज्ञ किये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विद्वानों में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी; उनके सुपुत्र रघुनाथ दीक्षित स्वयं कवि थे। इन्हीं कविवर के पुत्र हमारे वेंकटाध्वरि थे। न्यायशास्त्र, वेदान्त, तन्त्र तथा व्याकरण में खूब जानकारी रखते थे। इससे स्पष्ट है कि हमारे वैष्णव-मतावलम्बी, रामानुज के परम भक्त अप्पयगुरु अद्वैत-वादी अप्पय दीक्षित से सर्वथा भिन्न हैं। पाठकों ने देख लिया कि हमारे चरित-नायक एक प्रसिद्ध विद्वान् कुल में पैदा हुए थे। विश्वगुणादर्श से मालूम होता है कि ये काञ्ची नगर में रहते थे; आपके पिता आपके ही शब्दों 'श्लेषयमक-चक्रवर्ती' थे; आपकी पूज्या माता का नाम 'सिताम्बा' था। वेदान्ताचार्य वेङ्कटनाथ आपके विद्यागुरु थे। लक्ष्मीसहस्र के प्रारम्भ में कविवर ने वाल्मीकि तथा व्यास को नमस्कार करके अपने गुरुवर्य्य की आदरणीय शब्दों में प्रशंसा की है। आपका उद्भवकाल भी ज्ञात हो गया है। आप प्रसिद्ध कवि नीलकण्ठ दीक्षित के सहपाठी थे। दीक्षित ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक नीलकण्ठ चम्पू को ४७३८ कलि वर्ष अर्थात् १६३७ ईस्वी में समाप्त किया था। एतएव हमारे चरित नायक का काल इसीके आसपास है। विश्वगुणादर्श में एक जगह हूणो के दुश्चरित्रका वर्णन है :—

> हूणाः करुणाहीनास्तृणवत् ब्राह्मणगणं न गणयन्ति,
> तेषां दोषाः पारे वाचां ये नाचरन्ति शौचमपि।

अर्थात् निर्दयी हूणलोग ब्राह्मण को तृण के समान भी नहीं गिनते; जो शौच भी नहीं करते, भला उनके दोषों को वाणी कहांतक कह सकती है? सम्भवतः यह वर्णन समुद्र मार्ग से आनेवाले व्यपारी अंग्रेजों का है जिन्होंने १६४० ई० में मद्रास को अपना व्यापारिक केन्द्र बनाया। अतएव विश्वगुणादर्श चम्पू की रचना इसी वर्ष के आसपास प्रतीत होती है। सारांश यह है कि वेंकटाध्वरिका आविर्भावकाल १७ वीं सदी का पूर्वार्द्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धार्मिक विचार

ये कविवर रामानुज सम्प्रदाय के श्रीवैष्णव थे; उपास्य देवता लक्ष्मीजी की स्तुति में आपने 'लक्ष्मीसहस्र' नामक उत्कृष्ट काव्यग्रन्थ की सृष्टि की है। कहा जाता है कि 'विश्वगुणादर्श' चम्पू में आपने प्रत्येक वस्तु की स्तुति और निन्दा की है। अतः किसी देवता के कोप से आप अन्धे हो गये, तब आपने आराध्य देवी लक्ष्मी की स्तुति, केवल एक रात में लक्ष्मीसहस्र को बनाकर की। भगवती के प्रसन्न होने पर आपको फिर दृष्टि मिल गई। विश्वगुणादर्श में कवि ने रामानुज तथा उनके सम्प्रदाय से सम्बद्ध पवित्र तीर्थों का सविस्तार वर्णन किया है। यह इनके रामानुजीय होने का पोषक प्रमाण है। लक्ष्मी में आप की प्रगाढ़ भक्ति सर्वत्र लक्ष्य होती है। वैष्णव होने पर भी आप संकीर्ण विचार के न थे क्योंकि आपने कहीं भी शैवों के लिये अनुचित शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। प्रत्युत आपने शिवभक्ति की खूब प्रशंसा की है। आप शिवभक्ति को विष्णुभक्ति का कारण समझते थे। आपने स्पष्ट लिखा है :—

स्मरहर-परिचर्या साम्प्रतं तन्यते या,
जनयति हरिभक्तिं हन्त ! जन्मान्तरे सा,
शमितदुरितवर्गं सा च सूतेऽपवर्गं
कुत इव फलहानिः कुर्वतां शर्वपूजाम्।

शिव की जो उपासना इस समय की जाती है, वह दूसरे जन्म में हरिभक्ति को पैदा करती है जिससे सकल पापों का नाश हो जानेपर मोक्ष मिलता है। अतएव शिव के उपासकों को भी विष्णु के भक्तों के समान ही फल मिलता है। परन्तु शिवभक्ति विष्णु की विद्वेषिणी न होनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिये क्योंकि आपकी राय में "द्वेषो मुकुन्दविषयो विषयोगतुल्यः" है। विष्णु से वैर करना विष के तुल्य संहारकारी है। इस उदारता की प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते, विशेषतः जब हम उस समय की याद करते हैं जिसमें वैष्णवों तथा शैवों का आपस का मनमुटाव पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ था।

ग्रन्थ

आपने साहित्य तथा दर्शन विषयक ग्रन्थों का निर्माण किया है। काव्य ग्रन्थों में 'लक्ष्मी सहस्र' 'विश्वगुणादर्श चम्पू' 'हस्तिगिरि चम्पू' अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। मेरी समझ में 'लक्ष्मी सहस्र' कविराज का सर्वश्रेष्ठ स्तुत्यात्मक काव्यग्रंथ है जिसके बराबर शायद ही कोई स्तुति होगी। विश्वगुणादर्श चम्पू, जैसा इसका नाम सूचित कर रहा है, संसार के गुणों को दिखला देने के अभिप्राय से गद्य-पद्य में लिखा गया है। कृशानु तथा विश्वावसु नामक दो गन्धर्व इस विश्ववाटिका की सैर करने चलते हैं, कृशानु प्रत्येक वस्तु में दोषों की उन्भावना करता है परन्तु विश्वावसु उनके गुणों का वर्णन करता है; इन्हीं दोनों की बातचीत में पुस्तक समाप्त हुई है। इस चम्पू में कतिपय प्राकृतिक वर्णन दर्शनीय हैं; कृष्णवर्ण जमुना की छटा, लहराती गंगा का वर्णन, केशरी के तटपर नारियल के वृक्षों की सुषमा आदि अत्यन्त मनोहर हैं। चम्पू के अन्त में ज्योतषी, वैद्य, कवि, वैयाकरण, वैदिक आदि को निन्दा स्तुति खूब रोचक शब्दों में की गई है।

वेंकटाध्वरि का विशेष गुण संस्कृत भाषा पर अगाध आधिपत्य है। इन्हें शब्दालंकारों में यमक, चित्र और श्लेष खूब प्रिय थे, श्लेष का ऐसा उत्तम सन्निवेश शायद ही और जगह मिलेगा। कल्पना की कमनीयता तथा नवीनता सर्वथा प्रशंसनीय है। इनकी कविता में क्लिष्टता विशेष रूप से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाई जाती है। लक्ष्मीसहस्र में माधुर्य तो अवश्य है पर प्रसाद गुण बहुत ही कम है। परन्तु सम्पूर्ण विश्वगुणादर्श में प्रसाद गुण पदपद में भरा है। प्राकृतिक दृश्यों का समुचित वर्णन भी यथेष्ट है; अतः यह कवि प्रथम श्रेणी के कवियों में स्थान पाने योग्य है।

आप के ग्रन्थों में लक्ष्मीसहस्र सबसे अधिक प्रसिद्ध है। बात यह है कि इस ग्रन्थ में इनकी प्रतिभा उज्ज्वल रूप से प्रकाशित हो रही है। यह ग्रन्थ इनकी विद्वत्ता, प्रगाढ़ कल्पनाशक्ति, प्रकृष्ट भाषाधिपत्य आदि सर्वश्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित कर रहा है। अलङ्कारों की छटा जैसी इसमें है वैसी अन्यत्र दुष्प्राप्य है। हमारे कविवर श्लेष विरोधाभास, उत्प्रेक्षा का निवेश जैसी अच्छी रीति से कर सके हैं शायद ही और किसी कवि ने किया है। शब्दालंकारों को आप ने उत्तमरूप से दिखलाया है। यमक, अनुलोम, प्रतिलोम, सर्वतोभद्र, एकाक्षर आदि कठिन चित्रकाव्यों में कवि यथेष्ट निपुण हैं। इतना होने पर भी, भाव का उत्कर्ष किसी प्रकार न्यून नहीं है। एक से एक नये चमत्कार पाठकों को आनन्द में मग्न कर देते हैं। कल्पना की नवीनता कविवर को एक महाकवि सिद्ध कर रही है। कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

कृष्णः केशो दृगेषा झषतनुरधरो सन्दरागं हि धत्ते
सौकर्यं दोष्णि रेजे किल मुखहरिता मध्यमात्ता वलिश्रीः।
रामाग्रयत्वं वपुः श्रीः प्रथयति यमुनादर्पहृद्रोमवल्ली
धत्ते जङ्घाभिराममश्रियमिव कलिहृत्पापपक्ष्म तव श्रीः॥

कविवर ने कैसी युक्ति से लक्ष्मी के अंगों में दशावतारों का वर्णन किया है। आप कहते हैं कि लक्ष्मी के केश कृष्ण (काले रंगवाले तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगवान श्रीकृष्ण) हैं; इनके नेत्र झषतनु (मछली) की तरह तथा मत्स्यरूप हैं; अधर अत्यन्त राग को धारण कर रहे हैं तथा मन्दराचल को भी उठाये हुए हैं; बाहु में सौकर्य—सुन्दर हाथ तथा सूकरावतार प्रकाशित हो रहा है; मुखमण्डल में हरिता—चन्द्ररूपपता तथा नृसिंहका स्वरूप चमक रही है; बलि श्री—त्रिवली शोभा तथा बलिदैत्य की राजलक्ष्मी—को मध्य (मध्यम भाग, कटि प्रदेश तथा वामन) ने प्राप्त कर लिया है। शरीर की शोभा रामाग्रज—रमणियों में सर्वश्रेष्ठ तथा परशुराम—हो गई है; रोम-वल्ली ने यमुना का दर्प चूर्ण कर दिया—ऐसी काली है कि यमुना भी उसे देखकर लज्जित हो जाती है; रोमवल्ली स्वयं बलराम हैं जिन्होंने अपने हल से खींचकर यमुना का दर्प चूर्ण किया था। लक्ष्मी की जंघा अभिराम शोभा—अत्यन्त मनोहर शोभा तथा रामचन्द्र की लक्ष्मी—को धारण कर रही है। हे भगवती! तुम्हारे पैरों की शोभा कलिहृत् है अर्थात् कलह का नाश कर देती है और स्वयं कल्किरूप है जिन्होंने कलियुग को नाश कर डाला।

लक्ष्मी का शरीर क्या है? सम्पूर्ण दश अवतारों का एक अपूर्व सम्मेलन है। कविवर ने भगवती लक्ष्मी के अँगों का वर्णन अतिशय चमत्कारपूर्ण किया है; इस सौन्दर्यस्तवक में अनेक मनोहारिणी कल्पनायें हैं जो अपनी मौलिकता तथा सुन्दरता में अद्वितीय हैं। इसी स्तवक के कतिपय पद्य पाठकों के सामने रखे जाते हैं।

स्वरूपतस्त्वद्वदनात्मा तथा द्विधा सुधांशुर्जलधावजायत।
तदेष राजा द्विजराज इत्यदः पदं दधावर्थवदच्युत-प्रिये॥

चन्द्रमा का पर्यायवाच शब्द द्विजराज है। इसके कारण भिन्न भिन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहे गये हैं। श्रुति में लिखा है—सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा अर्थात् ब्राह्मणों का राजा चन्द्रमा हैं। अतएव उनका नाम द्विजराज पड़ा है। परन्तु कवि की सूक्त निराली होती है। हमारे कविवर कहते हैं कि इस नामकरण का कारण कुछ और ही है। वे कहते हैं कि हे लक्ष्मी, यह चन्द्रमा समुद्र के मथे जानेपर दो रूपों में पैदा हुआ—एक तो स्वयं उसके स्वरूप में जो आकाश में रात्रि में चमकता रहता है, दूसरा तुम्हारे मुखमण्डल के रूप में। इन दो रूपों में उत्पन्न होने से वह 'द्विज' कहलाता और स्वयं वह राजा नामधारी है अतएव उसको द्विजराज संज्ञा अन्वर्थक हुई है। आशय यह है कि तुम्हारा मुख दूसरा चन्द्रमा है। इस पद्य में कविवर की सूक्त कैसी अनोखी है! चन्द्रमा के द्विजराज होने की क्या ही अच्छा कारण खोजा गया है!

नदवनजमहो महातपश्री कृतरुचि ते मुखजन्म लिप्समानम्
अपि यदि तदधः शिरस्तपस्येज्जनवदनं कमले! भवेत्तथापि ॥

हे कमले! अन्य कवि लोग मुख की उपमा कमल से देते हैं परन्तु मेरी समझ में यह बात बड़ी अनुचित है। साधारण कमल की तो बात ही क्या, अच्छे नद में उत्पन्न कमल भी तुम्हारे मुखमण्डल की समता किसी जन्म में नहीं पा सकता। यदि खूब धूप से बढ़ी हुई शोभा रखनेवाला नद का कमल तुम्हारे मुख के रूप में जन्म धारण करने की इच्छा से नीचे सिर करके तपस्या करे—कठिन तपस्या करे तो भी वह जनवदन (साधारण मनुष्य का मुख) ही हो सकता है; उलटे पैर तपस्या करने पर भी तुम्हारे मुख की समता नहीं पा सकता। कविवर ने बात अच्छी कही; यदि 'नदवनज' शब्द उलटा होकर खड़ा रहे तो भी 'जनवदन' ही हो सकेगा। देखिये शब्द तथा अर्थ में कितना चमत्कार है!!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न केवलं नाग नगेशकान्ते हस्तो ननु स्वर्णगतोऽधिकस्ते।
यं सम्प्रदानीकुरुते स निःस्वं सोऽपि क्षितौ स्वर्णगतोऽधिकःस्यात्॥

लक्ष्मी के हाथों की दानशक्ति का क्या ही विशद वर्णन है। कवि कहता है कि हे लक्ष्मी, तुम्हारा हाथ स्वर्णत (स्वर्ग वृक्ष) केवल कल्पवृक्ष से अधिक ही नहीं है किन्तु वह जिस दरिद्र को कुछ देता है वह दरिद्र भी स्वर्णगतो धिक (अर्थात् कल्पवृक्ष से अधिक) हो जाता है; तथा स्वर्ण प्राप्त करने से अधिक —अधिक सुखवाला—हो जाता है। धन्य तुम्हारे हाथों की महिमा! जिसे वह दान दे वह मनुष्य भी कल्प-वृक्ष से अधिक बन जाय! धन्य हो देवी!

परमादिषु मातरादिमं यदिदं कोषकृताह मध्यमम्।
अमरः किल पामरस्ततः स बभूव स्वयमेव मध्यमः।

इस पद्य में लक्ष्मी की सूक्ष्मतम कटि का वर्णन श्लिष्ट शब्दों में किया गया है। कवि कहता है कि हे देवी! तुम्हारी कमर संसार के आदिभूत—कारणभूत श्रेष्ठ परमाणुओं में भी आद्मि है—परमाणुओं से भी सूक्ष्म है! कमर की सूक्ष्मता उनकी सर्वोत्तमता की कसौटी है। परमाणुओं से भी सूक्ष्म होने से कटि सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा होना ठीक ही है क्योंकि यह मध्य भाग परमादि (उत्तर में अग्रगण्य) वस्तुओं में आदिम (श्रेष्ठ) है; परन्तु कोशकार अमर को बुद्धि कहाँ; उनसे ऐसे उत्तम कटिको मध्यम (नीच तथा बीच में 'मकर' से युक्त) कह डाला है। वह यही समझ रहा है कि यह मध्यम परमादि (अन्त्य मकार युक्त) शब्दों में आदिम ('आदि मकार' विशिष्ट) है अर्थात् ऐसे परम चरम आदि शब्दों के अन्त में 'म' है उसी भाँति मध्यम में भी है। उन शब्दों से इनमें विशेषता यही है कि यह आदिम है अर्थात् उसके आदि में भी मकार है। ऐसी पवित्र—सर्वोत्तम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कटिको मध्यम (नीच) कहने का परिणाम अमर को खूब भोगना पड़ा। उसने कटि को मध्यम कहा, फल यह हुआ कि वह स्वयं मध्यम हो गया। कहाँ वह अमर 'देवता' था---स्वर्ग में आनन्द उठाता था कहाँ इस पाप से मध्यम—लोक में मनुष्य बन गया—वह स्वयं उत्तम था, कोषकार बन कर मनुष्य हो गया। पाप का फल उसे खूब ही मिला। ये हजरत अमर चले थे दूसरे को मध्यम (मध्यम में 'मकर'वाला) कहने और स्वयं मध्यम बन गये अर्थात् 'अमर' शब्द के बीच में 'मकार' हो गया। मध्यम (कटिभाग) तो मध्य में 'मकार' वाला नहीं बना (उसके बीच में तो 'ध्य' है परन्तु अमर ने (कोषकार-अमरकोश के कर्ता) स्वयं मध्य में 'म' कार धारण कर लिया। इतना ही नहीं वह पामर (मनुष्य लोक में आने से देवत्व से च्युत होकर नीच) बन गया। कटि की सूक्ष्मता का वर्णन कितनी दिलमें गुदगुदी पैदा करने वाली उक्ति से किया गया है। धन्य है कवि की भाषा-चातुर्य्य जिसने गागर में सागर भर देने का कौतुकपूर्ण कार्य किया है। श्लेष की ऐसी छटा शायद ही कहीं देखने को मिलेगी।

कविवर लक्ष्मी की करधनी का वर्णन करते हैं—

रतितन्त्ररहस्यमम्ब शब्दैः रमणीयैर्विशदं प्रकाशयन्ती।
रसनैव रतिप्रियस्य नूनं, रशना सा त्विति लेखकप्रमादः॥

करधनी का नाम 'रशना' है परन्तु कवि कहता है कि यह लेखकों की भूल है; असली शब्द तो 'रसना' है; लेखक ने गलती से 'स' के स्थान पर 'श' लिख मारा। रसना होने का क्या कारण है? यह करधनी अपने रमणीय शब्दों से कामशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रही है, सुनने-वालों के चित्त में रति पैदा कर रही है। अतएव यह कामदेव की रसना 'जीभ' है, 'रशना' नहीं। कामोद्दीपक करधनी को कामदेव की रसना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहना कितना उपयुक्त है। कवि की कल्पना ने अद्भुत सौन्दर्य पैदा कर दिया है। वाह ! लेखक का प्रमाद कैसे ढंगसे सिद्ध किया गया है।

गुप्ता वनेषु विहरन्ति सुहृद्यमीनाः।
कस्यापि नो कुलवयेषु दिवा प्रकाशः,
राज्ञो विभेति जगदम्ब ! कुशेशयालिः।
कर्णेजपे जयति नेत्रयुगे भवत्याः।

नेत्रों का क्या ही श्लिष्टमय रमणीय वर्णन है। हे जगदम्बा ! ये तुम्हारे नेत्र कानों तक फैले हुए हैं; इनके सामने अन्य सुन्दर चीजें बिलकुल छिप गई हैं। सुन्दर रमणीय मछलियां पानी में छिपकर दिनों को बिता रही हैं। किसी भी नील कमल की दिन में चमकाहट नहीं दिखाई देती। इन नेत्रों के सामने वे दिन में खिलते तक नहीं ; कमलों की पंक्ति इन विजयी आंखों के आगे चन्द्रमा से डर रही है। क्यों ? इस भय का क्या कारण है ? बात यह है कि ये नेत्र कर्णजप (खल) हैं इनसे छिपकर रहना कौन नहीं चाहता। खल के डर से सुहृद्यमीन (सुन्दर योगी लोग) वन में छिपकर विहार करते हैं।

आंखों के भय से सुन्दर हृद्य (रमणोय) मीन जल में छिपे हुए हैं। सम्पूर्ण भूमण्डल में कोई पुरुष प्रगट नहीं होता। दुष्टों के डर से प्रगट होना नहीं पसन्द करता, वैसे नील कमल विकसित नहीं होते। कुश पर सोनेवाले व्रती लोगों की मंडली जैसे राजा से डरती है उसी भांति कमल पंक्ति राजा (चन्द्र) से डर रही है। ये नेत्र वास्तव में खल हैं। आशय यह है कि इन कानों तक फैले नेत्रों की शोभा से कमल, मीन आदि की शोभा जीत ली गई है। कितने सुन्दर शब्दों में इस घटना का वर्णन है। सचमुच ऐसा चमत्कार कम देखने में आता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुग्धाम्भोधिसुते त्वदक्षिविजितो राजानमेणोगत-
स्त्यक्त्वाऽसाविति मण्डलं मुखजितो दुर्गेशमेणान्वितः।
स त्वेकं करतः परं च शिरसा धृत्वा दृगास्यद्विषो
दुर्गेशः स्वयमीश्वरोऽप्ययमटत्यद्यापि भिक्षामहो ॥

लक्ष्मीके मुग्ध मुखका वर्णन है। हे दुग्ध समुद्रकी पुत्री, तुम्हारी आँखने मृगको जीत लिया; विचारा मृग हारकर राजा (नृप) चन्द्रमाकी शरणमें गया। चन्द्रमाको भी तुम्हारे मुखने पछाड़ मारा, विचारा हारकर अपने मण्डल (बिम्ब तथा राज्य) को छोड़ दिया; मृग को साथ लिये हुए चन्द्रमा दुर्गेश (दुर्गा के स्वामी-शिव तथा किसी किलेके अधिपति महाराज) के पास शरणके लिये पहुंचा। शिवने तुम्हारे नेत्र तथा मुखके शत्रुओं को आश्रय दे डाला; भला तुम यह अनुचित व्यवहार कब सह सकती हो। झट उनकी भी दुरवस्था आ गई। दुर्गेश (शिव) ने एक (मृग) को हाथमें तथा दूसरे (चन्द्रमा) को शिरपर धारण किया; फल यह हुआ है कि स्वयं ईश्वर होनेपर भी आजतक भीख मांगा करते हैं; आश्रयके फलने उलटा उन्हें राजा से रंक बना डाला; आजतक उनकी दशा न सुधरी। वाह रे लक्ष्मीका प्रताप! जिसने शत्रुओंको आश्रय देनेवालेकी ऐसी दुरवस्था कर डाली! उत्प्रेक्षा तथा श्लेष की कैसी सुन्दरता है। कवि की अनूठी युक्ति देखने ही लायक है। एक साधारण बात को कवि ने कितने चमत्कारी ढङ्ग से वर्णन किया है। देखिये नेत्रकी शोभा किन नये शब्दों में वर्णित हो गई है—

निशायामम्ब त्वन्नयनसुषमापोषकमिति
क्रुधा राज्ञा नूनं कुवलयमिहाकारि विकचम्।
चकोरास्तद्घोराश्चकितमनसः प्रेक्ष्य तदिदं
सुतप्तास्तत्पादग्रहणमभितन्वन्त्यशरणाः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे माता, राजा हमेशा चोर को दण्ड दिया करता है; राजा (चन्द्र) को पता लग गया कि कुवलयने तुम्हारे नेत्रोंकी सुन्दरताको चुराया है। अतएव रात को अत्यन्त क्रोधसे कुवलयको विकच (विकसित तथा कच रहित सिरको मुण्डित) करना शुरू कर दिया! चकोरों ने तुम्हारी नयन कान्ति को चुराया था; जब उन्होंने चोरकी ऐसी सजा देखी तब डरे कि कहीं हमको भी यही सजा न भुगतनी पड़े। अतएव उन्होंने शरणागत होकर राजा से अपराध क्षमा प्रार्थना को ही सबसे अच्छा उपाय समझा। यह सोचकर चकोरों ने राजा (चन्द्रमा तथा नृप) के पाद ग्रहण (किरणको पीना तथा चरण में प्रणाम) किये। पाठक जानते हैं कि चकोर चन्द्रमा के किरणों को पीते हैं। इस प्रसिद्ध कवि सम्प्रदाय को सिद्ध करनेके लिये कवि ने कैसी युक्ति बतलाई है। क्या ही मनोहर सूक्ति है!

रामचन्द्र द्वारा अहिल्याके उद्धारका वर्णन कितने विचित्र शब्दोंमें किया गया है। पाठक, जरा ध्यानसे पढ़िये :—

नादत्तमध्यवनि सिध्यति किंचनेति
निश्चिन्वता भगवतापि विवक्षता त्वाम्।
वैदेहि! कामपि शिलामबलां विधाय
कन्याप्रदानविधिरक्षपदाय चक्रे।

हे जानकी, रामचन्द्र जानते थे कि संसार में बिना दिये कुछ मिलता नहीं। परन्तु उन्हें तुम्हें विवाहने की इच्छा थी अतएव कन्या पाने के लिये कन्यादान आवश्यक है, इस सिद्धान्त को निश्चित कर किसी शिलाको स्त्री (अहल्या) बनाकर उन्होंने गौतमको दान कर दिया। इस प्रकार रामने तुम्हारे लिये कन्यादान की विधि किया। देखिये, किस विचित्र ढङ्गसे बात कही गई है!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरकारी नौकरी की सच्ची दशाका दिग्दर्शन इस पद्यमें है :—

नैषां संध्याविधिरविकलो नाच्युतार्चापि साङ्गा,
न स्वे काले हवननियमो नापि वेदार्थचिन्ता।
न क्षुद्वेलानियतमशनं नापि निद्रावकाशो,
न द्वौ लोकावपि तनुभृतां राजसेवापराणाम्॥

सरकारी नौकर न तो पूरी सन्ध्या करते हैं; न साङ्गोपाङ्ग विष्णु की पूजा करते हैं, ठीक समय पर न तो हवन करते हैं और न तो वेदाध्ययन करते हैं; इस प्रकार उनको परलोक वनानेवाले कोई कार्य करनेका समय नहीं मिलता। इस संसार के सुखों का स्वाद भी वे नहीं ले सकते। न तो वे नियत समय से भोजन करते हैं और न ठीक समय सोते ही हैं। अतः उनके लिये न तो परलोक है न इहलोक। इस प्रकार वे दोनोंका नाश करते हैं। वास्तव में जैसी यह दशा १७ वीं सदी में थी, आज तो उससे भी बुरी हो गई है। पाठक आजकल के सरकारी नौकरों की अवस्थाको खूब जानते होंगे।

कावेरी के तटपर आकाशचुम्बी लम्बे-लम्बे नारियलके वृक्षोंका क्या ही सुन्दर वर्णन है :—

अभ्रंलिहानहह पश्य मरुद्वृधायाः,
रोधोरुहः पृथुफलानिह नारिकेलान्।
आगच्छते सवितृमण्डलमाश्रिताय,
देवाय भक्तित इवात्तनवोपहारान्।

ये नारियल के वृक्ष नहीं हैं, ये तो परम-विष्णु भक्त हैं। कावेरी के किनारे ऊँचे-ऊँचे नारियलके वृक्ष बड़े-बड़े नारियल के फलों को धारण किये हैं। जान पड़ता कि सूर्य मण्डलमें निवास करनेवाले भगवान नारायणके लिये भक्ति से नये-नये उपहार लेकर ये उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। वाह, क्यों नहीं, पवित्र नदीके किनारेके वृक्ष भी पवित्र हुआ करते हैं।

वैयाकरणों की यह निन्दा आज भी उसी तरह सच्ची है जिस तरह तीन सौ वर्ष पहले थी। जरा पढ़िये।

सूत्रैः पाणिनि कीर्तितैर्बहुतरैः निष्पाद्य शब्दावलीं,
वैकुण्ठस्तवमक्षमा रचयितुं मिथ्याश्रमाः शाब्दिकाः।
पक्वान्न महता श्रमेण विविधा पूपाग्रयरूपान्वितं,
मन्दाग्नीननुरुन्धते मितबला नो घ्रातुमप्यक्षमान्॥

वैयाकरणों का इतना कठिन परिश्रम व्यर्थ है; पाणिनिके बहुत सूत्रोंसे शब्दावली को सिद्ध करके भी वे विष्णु की एक स्तुति-पद्य बनाने में असमर्थ हैं। शब्दोंके सिद्ध करने से क्या लाभ, जब वे उनकी योजना नहीं कर सकते। उनकी दशा ठीक उस भोजनके समान है जो अत्यन्त परिश्रमसे तैयार कियागया है, जो नाना व्यञ्जनों से सुशोभित हो परन्तु ऐसे कमजोर मन्दाग्निवाले मनुष्योंको खानेके लिये दिया गया हो जो उसका गन्धतक सूंघने में असमर्थ हैं, खाने की तो बात ही न्यारी है। इस उदाहरण में कितना चमत्कार है, असमर्थता किस खूबीसे दर्शायी गई है। वैयाकरणों को इससे शिक्षा लेनी चाहिए तथा अपनी दशा सुधारनी चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१४) संस्कृत की कवयित्रियाँ

प्रतिभा लिङ्गविशेष की अपेक्षा नहीं करती। काव्य-प्रतिभा का सम्बन्ध आत्मा के साथ रहता है; स्त्री या पुरुष के विभाग से उसे कुछ काम नहीं। पुरुष यदि दावा करे कि कविता जैसी ललित कलाओं का सुन्दर अंकुर उन्हीं के हृदय में उत्पन्न होता है, और उसकी उर्वरा शक्ति से वह लहलहाने लगता है, तो वह सदा झूठा ही समझा जायगा। सच तो यह है कि कविता, संगीत, चित्रकला आदि मधुर हृदयहारी कलाओं का बीज नारियों के सहानुभूति-पूर्ण, रस से सिक्त-हृदय में पुरुषों के कठोर हृदय की अपेक्षा अपने उगने के लिये अधिक सहकारी सामग्री पाता है और वहीं यह सदा हरा भरा भी पाया जाता है। नवीन पश्चिमी संसार के उदाहरणों को छोड़ देने पर भी यदि अभिनव भारत के ही दृष्टान्तों पर दृष्टिपात किया जाय तो स्त्रियों में प्रतिभा की कमी नहीं देख पड़ती। आज कल जब स्त्रियों में शिक्षा का बहुत ही कम प्रचार है, ऐसी दशा देखने को मिलती है, तो प्राचीन भारत में, जब शिक्षा सार्वजनिक थी, स्त्री-कवियों के अस्तित्व से हमें चकित नहीं होना चाहिए।

सर्व-पुरातन ग्रन्थ रत्न ऋग्वेद में ही अनेक स्त्रियों की बनाई हुई ऋचाएँ संगृहीत हैं जिनके देखने से उनके उन्नत विचारों का पता भली भाँति लगता है। कविता की दृष्टि से भी ऋचाएँ उच्च कोटि की मानी जाती हैं। उन स्त्री कवियों की कविता का स्वाद भी आज पाठकों को न चखाया जायगा जिन्होंने सांसारिक भोग विलास को लात मारकर बौद्ध धर्म की भिक्षुणी बन शान्ति को ही अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य बनाया था तथा जिनकी कविताएँ 'समग्र थेरी गाथा' में संगृहीत हैं। आज उन्हीं स्त्री कवियों की चर्चा की जायगी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिनका सम्बन्ध उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य से है। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इन कवियों की रचना की कौन कहे, दुर्दैव ने इनके स्मरणीय नाम तक को भी भूतकाल के विस्मृति – गर्त में सदा के लिये रख दिया है। प्राचीन कवियों के प्रशंसात्मक श्लोकों से ही किसी-किसी के नाम जाने जाते हैं; तथा सूक्ति संग्रहों में संगृहीत कविताओं से ही इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का पता चलता है। जिन कवियों की अधिक कविताएं मिलती हैं, स्थानाभाव के कारण उनमें से कतिपय उत्तम ही यहाँ चुनकर रखी गई हैं। परन्तु कुछ की रचनाएँ तो केवल दो–चार श्लोक ही हैं। इस स्थान पर उनके उपलब्ध समग्र पद्य उद्धृत कर दिए गए हैं।

(१) विज्जका

संस्कृत-साहित्य में प्रतिभाशालिनी कवयित्री 'विज्जका' का खूब नाम है। उनकी रसभावमयी कविता का आस्वादन कर सहृदय भावुकों के चित्तसागर में आनन्द की लहरी अठखेलियाँ करने लगती हैं। वास्तव में स्त्री होकर इतनी मधुरिमामयी पदावली की रचना करना कोई हँसी खेल की बात नहीं; इससे विज्जका की उन्नति प्रतिभा का पता सहज ही में आलोचकों को लगता है। परन्तु दुःख तो इस बात का है कि इनकी समग्र रचनाओं से सहृदयगण सदा के लिये वञ्चित हो गए हैं; क्योंकि इनके किसी काव्य ग्रन्थ का पता अभी तक कुछ भी नहीं लगा है और न लगने की आशा है। सूक्ति ग्रन्थों में उद्धृत कविताएँ ही इनकी अवशिष्ट रचनाएं हैं जो काल के भयङ्कर प्रहार को सहकर भी किसी प्रकार बच सकी हैं। इस प्रतिभा- सम्पन्न नारी-कवि के जीवन की घटनाएं भी अभेद्य अन्धकार के अज्ञात परदे में छिपी हुई हैं, जिससे उन्हें निकाल कर सर्वसाधारण के सामने उपस्थित करना एक अत्यन्त दुःसाध्य कार्य प्रतीत होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इनका नाम कहीं विज्जका या विज्जाका मिलता है और कहीं विद्या। इनका शुद्ध नाम 'विज्जका' ही प्रतीत होता है जिसका संस्कृतीकृत रूप 'विद्या' है। शार्ङ्गधर पद्धति के एक पद्य में 'विज्जका' ने महाकवि दन्डी को डाँट बताई है। वह सर्व-प्रसिद्ध पद्य यह है:—

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं "सर्वशुक्ला सरस्वती"॥

पद्य का चतुर्थ चरण काव्यादर्श के मंगलाचरण श्लोक का अन्तिम पाद है। विज्जका का कहना है कि नील कमल के पत्ते के समान श्याम रंगवाली मुझे बिना जाने ही दण्डी ने व्यर्थ ही सरस्वती को सर्वशुक्ला कह डाला है। इस गर्वोक्ति से विज्जका के असाधारण पाण्डित्य का पता लगता है। इससे इतनी ही ऐतिहासिक बात निकलती है कि 'विज्जका' के आविर्भाव का समय 'दण्डी' के कुछ इधर है; परन्तु कितना उतरकर है, इसे निश्चय करने के यथेष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

विज्जका के कई पद्यों को संस्कृत आलंकारिकों ने उदाहरण-स्वरूप अपने ग्रंथों में उद्धृत किया है। मम्मटाचार्य ने अपने 'शब्द-व्यापार विचार' में इनके 'दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि' (नं० ५०० कवीन्द्र वचन समुच्चय) और 'धन्यासि या कथयति' (२९८ कवीन्द्र०) को उधृत किया है। दूसरा पद्य काव्य-प्रकाश के चतुर्थ उल्लास में अर्थमूलक वस्तु प्रतिपाद्य अलंकार ध्वनि के उदाहरण में दिया गया है। पहला पद्य धनिक के 'दशरूपावलोक' तथा मुकुलभट्ट के 'अभिधावृत्ति मातृका' में उद्धृत किया गया है। भट्ट मुकुल का समय लगभग ९२५ ई० है। अतएव पूर्वोक्त पद्य की रचयित्री का समय अनुमान से ८५० ई० कहा जा सकता है। विज्जका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का आविर्भाव काल दण्डी तथा मुकुल भट्ट के बीच का काल (७१० ई०—८५० ई०) माना जा सकता है।

कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि 'विज्जका' तथा कार्णाटी 'विजया।' जिसकी वैदर्भी रीति की प्रशंसा राजशेखर ने कालिदास से उपमा देकर खूब की है,[१] दोनों एक ही व्यक्ति हैं[२]। पुलकेशी द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रादित्य की महारानी 'विजयभट्टारिका' के साथ 'विजया' की एकता नाम-साम्य की भित्ति पर मानकर इनका समय ६६० ई० माना गया है; क्योंकि विजयभट्टारिका के इसी समय के लेख पाए जाते हैं। अतएव वे 'विज्जका' को भी सप्तम शताब्दी में बतलाते हैं।

उन विद्वानों की यह पूर्वोक्त सम्मति उतनी अच्छी नहीं जँचती। कर्नाट देश की रहनेवाली 'विजया' सम्भवतः महारानी विजया हो सकती है; क्योंकि इसके पोषक प्रमाण हैं। 'चन्द्रादित्य' सम्पूर्ण महाराष्ट्र

१. सरस्वतीव कार्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ।
या विदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम्॥ (शार्ङ्ग० १८४)
इससे 'विजया' का कर्णाटदेशीय होना सिद्ध होता है। इस उल्लेख के अतिरिक्त इस गर्वोक्तिमय पद्य की लेखिका भी यही जान पड़ती है:—

एकोऽभून्नलिनात् ततश्च पुलिनात् वल्मीकतश्चापरे
ते सर्वे कवयो भवन्ति गुरवस्तेभ्यो नमस्कुर्महे।
अर्वाञ्चो यदि गद्यपद्यरचनैश्चेतश्चमत्कुर्वते
तेषां मूर्ध्नि ददामि वामचरणं कर्णाटराजप्रिया॥

(कर्पूर म०, काव्यमाला, पृ० ५ भूमिका)

२. काणे-साहित्यदर्पण की भूमिका पृ० ४१;

3. Nerur plates and Kocherein plates of the Queen in Indian Antiquary vol. VII & VIII.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का राजा था, कर्नाटक उसकी राज्य-सीमा के भीतर ही था। अतएव 'महारानी विजयभट्टारिका' के कर्नाटदेशीय होने में कोई विशेष सन्देह नहीं है। दूसरे भट्टारिका शब्द तो केवल उपाधिसूचक है। जिस प्रकार महाराज को 'भट्टारक' कहा जाता था, उसी प्रकार राजमहिषी भी भट्टारिका कही जाती थी। अतएव उनका भी नाम 'विजया' हो हो सकता है। इस एकीकरण में अधिक सन्देह नहीं मालूम पड़ता। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में 'विजया' को 'विज्जका' का ही नामान्तर मानना हमारी सम्मति में उचित नहीं प्रतीत होता। एक ही प्रमाण ऐसा है जिससे 'विज्जका' और कार्नाटी 'विजया' की एकता सिद्ध हो सकती है। विज्जका ने स्वयं ही अपने को उक्त उद्धृत पद्य में 'सरस्वती' माना है तथा विजया के विषय में राजशेखर ने भी 'सरस्वतीव कार्णाटी' कहा है। अतः काव्य-प्रतिभा में दोनों ही सरस्वती के समान मानी गई हैं। इस वर्णन से सम्भव है, दोनों एक हो व्यक्ति हों। अतएव 'विज्जका' का समय ७वीं शताब्दी में मानना ठीक नहीं। ७वीं शताब्दी के अन्त में होनेवाले महाकवि दण्डी के पूर्वोक्त उल्लेख से भी इसमें सन्देह प्रकट किया जा सकता है। 'विज्जका' के विषय में इतना ही कहना अवशिष्ट है कि इनका जन्म सम्भवतः दक्षिण देश में हुआ था। इससे अधिक इनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं।

इनकी रसभावमयी कविता की चर्चा की जा चुकी है। अधिकांश कविताओं में शृङ्गार रस का ही प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है; भाव का सौष्ठव देखते ही बनता है। स्वभावोक्ति की भी मात्रा खूब है। जरा इनके काव्य रस का आस्वादन कीजिए।

विज्जका सहृदय भावुक का वर्णन कितने मार्मिक तथा सच्चे शब्दों में कर रही हैं:—

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम्।
वदद्भिरङ्गैः कृतरोम-विक्रियैर्जनस्य तूष्णींभवतोऽयमञ्जलिः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सच्चा कवि अपने भावों को अभिधा के द्वारा कभी प्रकट नहीं करता। यदि बात साफ तौर से कह दी जाय, तो उसमें आनन्द ही क्या आवेगा ? वह केवल व्यंजना की सहायता से उन्हें प्रकट करता है। शब्दों के द्वारा अभिप्राय की अभिव्यक्ति नहीं होती, वरन् कुछ रसभरे मनोहर पदों में यह भाव झलकता रहता है। ऐसे महाकवि का सच्चा आस्वादक किसे कह सकते हैं ? उर्दू कविता के भावुकों की भाँति केवल भावावेश में 'वाह वाह' कहकर ही अपनी सहृदयता का पता देना संस्कृत कविता के सच्चे रसिक का काम नहीं। कवि के गूढ़ व्यञ्जना-द्योतित अभिप्राय को समझकर जो रसिक शब्दों के द्वारा काव्यानन्द की सूचना नहीं देता, वरन् चुप रहकर भी जिसके रोमाञ्चित अवयव हृदय की आनन्द लहरी का पता साफ शब्दों में बतलाते हैं, वही सच्चा रसिक है। ऐसे सहृदय-शिरोमणि को मैं प्रणाम करती हूँ। रसिक की क्या ही सच्ची परिभाषा है ! सारांश यह है कि जिस प्रकार सच्चे कवि का कार्य ध्वनि के द्वारा भावबोधन कराना है, उसी भाँति सच्चे भावुक का कार्य व्यंजनाके द्वारा ही उसकी सराहना करना है।

कोषः स्फीततरः स्थितानि परितः पत्त्राणि दुर्गं जलम्,
मैत्रं मण्डलमुज्ज्वलं चिरमधो नीतास्तथा कण्टकाः।
इत्याकृष्टशिलीमुखेन रचनां कृत्वा तदप्यद्भुत
यत्पद्मेन जिगीषुणापि न जितं मुग्धे ! त्वदीयं मुखम्॥

हे मुग्धे ! कमल ने बड़ी-बड़ी तैयारियाँ करके तुम्हारे मुख पर धावा बोल दिया है। परन्तु फल क्या हुआ ? कुछ भी नहीं। अपना विषण्ण वदन लेकर चुपचाप बैठ गया। खिला हुआ कोश उसका खजाना (कोष) है; चारों ओर फैले हुए पत्ते पत्र (वाहन) हैं; जल दुर्ग (किला) है। उज्ज्वल मैत्रमण्डल (सूर्य मण्डल) उसका मित्र है। कण्टकों को भी उसने नीचे कर दिया है। इतना ही नहीं, उसने शिलीमुख (बाण तथा भ्रमर)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को भी खींच रखा है। परन्तु हज़रत से इतने सामान के रहते हुए भी कुछ नहीं हो सका। होता भी क्या खाक़! आज तक इस मुख को किसी ने जीता है कि वे जीतने चले हैं! कमल-विजयी मुख की प्रशंसा कितनी सुन्दर है!

केनात्र चम्पकतरो बत रोपितोऽसि,
कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम्।
यत्र प्ररूढनवशाकविवृद्धिलोभात्
गोभग्नवाटघटनोचितपल्लवोऽसि॥

हे चम्पक के पेड़! तुम्हें किसने इस वाटिका में रोपा है? जानते नहीं हो, इसके आसपास दुष्ट जनों की बस्ती है, जो इस गरज से कि उगे हुए साग—साधारण तरकारी—और भी बढ़ते जायँ, तुम्हारे पल्लव को गाय से तोड़ी हुई चहार-दीवारी की तरह बुरी दशा कर डालेंगे।

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोः कन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः।
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभकम्पितोरः-स्थल-
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डिनीगीतयः॥

धान कूटने का क्या ही सुन्दर स्वाभाविक वर्णन है! स्त्रियाँ चिकने तथा सुन्दर मूसलों से धान कूट रही हैं। इस कार्य में उनके चञ्चल हाथों के चलने से वलय आपस में टकराते हैं जिससे बहुत ही रमणीय ध्वनि होती है। वे बीच में मनोहर हुंकार कर रही हैं; उनके उरस्थल अत्यन्त कम्पित हो रहे हैं। इन धान कूटनेवालियों के गमकों-तालस्वरों-से युक्त गीत कैसे मनोहर जान पड़ते हैं। श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार की अनुपम छटा है!

गते प्रेमाबन्धे हृदयबहुमानेऽपि गलिते
निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा चैवोत्प्रेक्ष्य प्रियसखि गतान् तांश्च दिवसान्
न जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम् ॥

इसमें विरहिणी की मर्म—भरी बातें कितने साफ शब्दों में बताई गई हैं। विरहिणी अपनी प्यारी सखी से कह रही है कि हे सखि, जब प्रेम का बन्धन ढीला पड़ गया, हृदय से उसके लिये अत्यन्त सम्मान हट गया, जब सद्भाव को इतिश्री हो गई, जब वह मेरा प्राणप्यारा साधारण स्नेह–रहित मनुष्य की भाँति चला गया और इतने दिन भी बीत गए, परन्तु उसने मेरी कोई खोज खबर नहीं ली, भला कहो तो सही कि तब किस सुख की आशा से यह हृदय अभी ठहरा हुआ है? टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाता? ऐसी दशा में बस मरणं श्रेयः।

प्रिय-सखि! विपद्दण्ड-प्रान्तप्रपातपरम्परा-
परिचयचले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः।
मृदमिव बलात् पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवत्
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥

विपद की मारी हुई नायिका सखी से कह रही है:—मेरी प्यारी सखी, चतुर कुम्हार के समान ब्रह्मा के चिन्तारूपी चाक पर मिट्टी के लौंदे के तुल्य मेरे मन को बलात् रखकर विपत्ति के डंडे के कोने से जोरों से घुमा रहा है। जिस प्रकार कुलाल मिट्टी के लौंदे को चाक पर पहले खूब घुमाता है, पीछे जो चाहता है, बना डालता है, उसी प्रकार ब्रह्मा भी चिन्ता पर मेरे मन को घुमा रहा है। परन्तु न मालूम अब इसे क्या बना डालेगा! जानूँ तो कैसे जानूँ। विपत्ति में चिन्ताग्रस्त अबला की दयनीय दशा का कैसा सुन्दर चित्रण है। साङ्गरूपक की छटा भी देखते ही बनती है।

विरम विफलायासादस्माद् दुरध्यवसायतो
विपदि महतां धैर्यध्वंसं यदीक्षितुमीहसे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयि जड विधे! कल्याणाय व्यपेतनिजक्रमा
कुलशिखरिणो क्षुद्रा नैते न वा जलराशयः ॥

कोई कवि सज्जनों पर विपत्ति ढानेवाले ब्रह्मा को चेतावनी दे रहा है:- हे ब्रह्मा, मनस्वी सज्जनों पर आफत गिराने का परिश्रम क्यों कर रहे हो? यह परिश्रम बिल्कुल ही व्यर्थ होगा। इससे इनका धैर्य कभी टूट नहीं सकता। क्या ये लोग क्षुद्र कुल-पर्वत हैं या जल राशि हैं जो प्रलय काल में अपने कार्यक्रम को बिल्कुल ही छोड़ देते हैं? कल्पान्तमें। डिगनेवाले कुल पर्वतों से तथा अपनी मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले समुद्रों से विपद् में भी धैर्य न छोड़नेवाले महापुरुषों की तुलना क्या कभी की जा सकती है?

माद्यद्दिग्गजदानलिप्तकरटप्रक्षालनक्षोभिताः
व्योम्नःसीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निमलाः।
कष्टं भाग्यविपर्ययेण सरसः कल्पांतरस्थायिन—
स्तस्याप्येक बक प्रचार कलुषं कालेन जातं जलम् ॥

तालाब की दशा में कैसा विचित्र परिवर्तन हुआ है! मतवाले दिग्गजों के मद से लिप्त गण्डस्थलों के प्रक्षालन से क्षुब्ध हो कर जिसकी निर्मल तरंगें विना रोक टोक के आकाश की सीमा में विचरण करती थीं, कल्पान्तर स्थायी उसी तालाब का जल अब एक ही वगुले के चलने से कलुषित हो गया है। बड़े कष्ट की बात है! भाग्य के फेर से ही ऐसे बड़े तालाब की ऐसी दुर्दशा हो गई। क्या किया जाय! दैव सबसे बलवान् है।

(२) सुभद्रा

'सुभद्रा' नामक कवयित्री की प्रसिद्धि उतनी नहीं है; क्योंकि इनकी रचनाओं का कुछ भी पता नहीं लगता। वल्लभदेव की सुभाषितावलि में इनका केवल एक ही पद्य उद्धृत किया गया है, और वही इनकी अवशिष्ट रचना है। 'सुभद्रा' ने अवश्य ही अनेक कविताओं की रचना की होगी; नहीं तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजशेखर को इनके कविता-चातुर्य के वर्णन का अवसर ही कहां मिलता। राजशेखर ने स्पष्ट शब्दों में इनकी कविता को मनोमोहिनी बतलाया है:—

पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे खलु सुभद्रया।
कवीनां च वचोवृत्तिचातुर्येण सुभद्रया॥
(सूक्तिमुक्तावली)

जिस प्रकार सुभद्रा ने अर्जुन के मन में अपने सौन्दर्य के कारण स्थान पाया था, उसी प्रकार सुभद्रा ने भी अपनी रचनाओं की चतुरता से कवियों के मन में स्थान पाया है। इस उल्लेख से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि 'सुभद्रा' दशवीं शताब्दी के पहले हुई थी। इनकी जीवनी भी बिल्कुल अज्ञात है।

इस पद्य में इन्होंने स्नेह से होनेवाले दुष्परिणाम की वात बतलाई है:—

दुग्धं च यत्तदनु यत् क्वथितं ततो नु,
माधुर्यमस्य हृतमुन्मथितं च वेगात्।
जातं पुन घृतकृते नवनीतवृत्ति
स्नेहो निबन्धनमनर्थ परम्पराणाम्॥

स्नेह ने बिचारे दूध की कैसी दुर्दशा कर डाली है। स्नेह (घृत) के ही लिये बिचारा दूध गरम किया जाता है-खूब औंटा जाता है। काँजी डालकर उसका मीठापन भी दूर किया जाता है; फिर बड़े जोरों से मथा जाता है; तब घी के ही लिये इसे मक्खन का रूप धारण करना पड़ता है। बताइए तो सही, बिचारे दूध पर इतनी आफत क्यों? केवल स्नेह (घी तथा प्रेम) के ही लिये। वास्तव में स्नेह मनुष्यों के हजारों दुःखों का मूल है। स्नेह की इस अनर्थकारिता के विषय में किसी कवि का यह प्राचीन श्लोक भी सुभद्रा के सुभग पद्य की सत्यता का ही प्रतिपादन कर रहा है:—

स्नेहं परित्यज्य निपीय धूमं कान्ताकचा मोक्षपथं प्रपन्नाः
नितम्बसङ्गात्पुनरेव बद्धा अहो दुरन्ता विषयेषु सक्तिः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) फल्गुहस्तिनी

इनका भी नाम संस्कृत साहित्य में अधिक नहीं है। कविता की अनुपलब्धि ही इसका मूल कारण प्रतीत होती है। सुभाषितावलि में दो पद्य उद्धृत किए गए हैं जिनमें पहला पद्य (सृजति तावदशेष गुणाकरं) भर्तृहरि के नीतिशतक में भी पाया जाता है; अतएव उसके रचयिता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सूक्ति-संग्रह-कर्त्ताओं की भूल से ऐसा बहुधा देखा गया है कि किसी का पद्य किसी दूसरे के माथे मढ़ा हुआ रहता है। दूसरा पद्य शार्ङ्गधर-पद्धति में भी पाया जाता है। पद्य यह है:—

त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं मनोभवकार्मुकं
ग्रहकिसलयं सन्ध्या नारी-नितम्बनखक्षतम्।
तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृंगं निशावदनस्मितं
प्रतिपदि नवस्येन्दोर्बिम्बं सुखोदयमस्तु वः॥

आकाश में प्रतिपद्चन्द्र का उदय हुआ है। चन्द्र के वर्णन में कितने मनोरम रूपकों की उद्भावना की गई है। यह शिव की जटारूपी लता का फूल है; कामदेव का टेढ़ा धनुष है; ग्रहों का नवीन पल्लव है; संध्या रूपी नारी के नितम्ब पर लाल नखक्षत है (उदय के समय में चन्द्रमा में कुछ लालिमा रहती है और क्षत भी लाल होता है), अन्धकार को नष्ट करनेवाला आकाश का शिखर है, निशारूपी नायिका के वदन की कोमल मुसकुराहट है। ऐसे मनोरम चन्द्र का उदय तुम्हारे सुख के लिये हो। इस पद्य में रूपकों की छटा कितनी सुहावनी है।

इससे स्पष्ट है कि फल्गुहस्तिनी में उस ऊँची प्रतिभा की कमी नहीं थी जो सच्चे कवि में होनी चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४) मोरिका

'मोरिका' के नाम के सुभाषितावलि और शार्ङ्गधर-पद्धति दोनों संग्रहों में कुल चार पद्य मिलते हैं। इन पद्यों के सिवाय न तो इनके किसी काव्य का ही पता चलता है और न किसी ऐतिहासिक वृत्तान्त का। शार्ङ्गधर में उद्धृत कवि धनदेव की उक्ति में स्त्री कवियों में 'मोरिका' का भी नाम आया है:—

शीला विज्जा मारुला मोरिकाद्याः
काव्यं कर्तुं सन्ति विज्ञाः स्त्रियोऽपि।
विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं
विश्वं वक्तुं यः प्रवीणः स वन्द्यः॥

इससे स्पष्ट सूचित होता है 'मोरिका' काव्य-रचना में बड़ी प्रवीण थी। यही उल्लेख इनके विषय में ज्ञात इतिहास का सार है। इनकी कविता साधारण तथा अच्छी है। सब पद्यों में शृंगार रस ही लबालब भरा है।

यामीत्यध्यवसाय एव हृदये बध्नातु नामास्पदं
वक्तुं प्राणसमा समक्षमघृणे-नेत्थं कथं पार्यते।
उक्तं नाम तथापि निर्भरगलद्बाष्पं प्रियायाः मुखं
दृष्ट्वापि प्रवसन्त्यहो धनलवप्राप्तिस्पृहा मादृशाः॥

कोई विदेशी कह रहा है कि पहले तो जाने का अध्यवसाय ही हृदय में किसी तरह स्थान पाता है। परन्तु अपनी प्राणप्यारी के सामने भला ऐसी बात कैसे कही जा सकती है। यदि कह दूँ तो प्रिया की आँखों से वियोग के कारण आँसुओं की झड़ी बँध जाती है। परन्तु क्या करूँ? उसे भी देखकर हमारे जैसे निर्धन लोग परदेश में धन कमाने की इच्छा से आते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। क्या किया जाय; लाचारी है। नहीं तो किसी प्रकार अपनी प्रिया को दुःख-सागर में छोड़कर आना न्याय-प्राप्त नहीं।

लिखति न गणयति रेखा निर्भरबाष्पा-धौतगण्डतला।
अवधिदिवसावसानं मा भूदिति शङ्किता बाला॥

पति परदेश से कुछ ही दिनों के लिये घर आया है। बाला नायिका की आँखों से आसुओं की धारा बह रही है जिससे उसका कपोल बिलकुल धुल गया है। वह अवधि के दिनों को रेखाएँ लिखती है जरूर; परन्तु गिनती नहीं। डरती है कि कहीं ऐसा न हो कि अवधि पूरी हो जाय और प्रिय पति के जाने का दुस्सह दुःख अभी उपस्थित हो जाय। पद्य में नायिका के कोमल हृदय का पता बड़ी खूबी के साथ दिया गया है।

प्रियतमस्त्वमिमामनघार्हसि, प्रियतमा च भवन्तमिहार्हति।
नहि विभाति निशारहित: शशी, न च विभाति निशापि विनेन्दुना।

दूती नायक को समझा रही है कि हे प्रिय, तुम इस नायिका के योग्य हो और यह भी तुम्हारे ही योग्य है। देखो, बिना रात्रि के चन्द्रमा की शोभा नहीं होती और रात भी चन्द्रमा के विना कभी नहीं सोहती।

नायक परदेश जाने को तैयार है। इसकी सूचना मिलते ही नायिका की कैसी करुणाजनक दशा उपस्थित हो जाती है। दूती नायक को नायिका की इस वियोग-दशा को खबर दे रही है—

मा गच्छ प्रमदाप्रिय! प्रियशतैर्भूयस्त्वमुक्तो मया
बाला प्राङ्गणमागतेन भवता प्राप्नोति निष्ठां पराम्।
किं चान्यत् कुचभारपीडनसहैर्यत्नप्रवृद्धैरपि
त्रुट्यत्कञ्चुकजालकैरनुदिनं निःसूत्रमस्मद्गृहम्॥

हे प्रमदाप्रिय, विदेश मत जाओ, मैं हजारों बार तुम्हें निहोरा कर रही हूँ। तुम्हारी दयिता तुममें बहुत ही प्रेम धारण करती है। मैं उसकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषम दशा का वर्णन क्या करूँ ? तुम जानेके लिये आँगन में पैर रखोगे, यह सोच कर ही स्तनों के भार को सहने में समर्थ तथा यत्नपूर्वक बांधी गई उसकी कञ्चुकी बार बार टूटी जा रही है, उसके लिये हमारे घर में डोरा भी नहीं बच गया। अभी तुम्हारे जाने के समय की ऐसी दशा है। आगे न जाने क्या होगा।

(५) इन्दुलेखा

'इन्दुलेखा' का नाम भी स्त्री कवियों में है। इनका जन्म कहाँ हुआ? कब हुआ ? इन्होंने किस काव्य ग्रन्थ का निर्माण किया ? इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया जा सकता। वल्लभदेव की सुभाषितावलि में इन्दुलेखा का एक पद्य दिया गया है।

सूर्यास्त के विषय में कवियित्री की सुन्दर कल्पना है:—

एके वारिनिधौ प्रवेशमपरे लोकान्तरालोकनं
केचित् पावकयोगितां निजगदुः क्षीणेऽह्नि चण्डार्चिषः।
मिथ्या चैतदसाक्षिकं प्रियसखि प्रत्यक्षतीव्रातपं
मन्येऽहं पुनरध्वनीनरमणीचतोधिशेते रविः॥

कोई कहता है कि सायंकाल में सूर्य भगवान् समुद्र में समा जाते हैं; किसी की राय है कि वे दूसरे लोक को चले जाते हैं; दूसरे कहते हैं, अग्नि में चले जाते हैं[1]। परन्तु हे प्यारी सखि ! मुझे यह सब झूठ मालूम होता है। पूर्वोक्त घटना की सत्यता का कोई साक्षी नहीं है। पथिकों की नारियों का चित्त वियोगजनित बाधा से अधिक सन्तप्त है। मालूम होता है कि सूर्य रात को इसी कोमल चित्त में शयन करने के लिये प्रवेश करता है जिससे उसमें असह्य गर्मी पैदा हो जाती है। प्रोषितपतिका नायिकाओं का हृदय रात को पति-वियोग से अधिक सन्तप्त हो जाता है। साधारण सी बात कैसे अनोखे ढंग से कही गई है।

---

१. आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निं प्रविशति इति श्रुतिः। रघुवंश चतुर्थ सर्ग, १ श्लोक पर मल्लिनाथ की टीका में उद्धृत।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६) मारुला

यद्यपि इनके नाम से एक ही कविता सुभाषितावलि में मिलती है, तथापि धनदेव के उल्लेख से जान पड़ता है कि ये प्रवीण स्त्रियें में गिनी जाती थीं। यहाँ प्रशंसा केवल एक ही पद्य पर अवलम्बित नहीं हो सकती; अतः इन्होंने अन्य कविताओं की भी रचना की होगी, यह सहज में ही माना जा सकता है।

इनकी रचना नीचे दी जाती है—

कृशा केनासि त्वं ? प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे
मलाधूम्रा कस्माद् ? गुरुजनगृहे पाचकतया।
स्मरत्यस्मान् कच्चिन्नहि नहि नहीत्येवमगमत्
स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता ॥

कोई विरही अपने मित्र से स्त्री की बात कह रहा हैः—तुम दुबली क्यों हो ? मेरे इस पूछने पर उसने कहा कि जन्म से ही शरीर की ऐसी दशा है। जब मैंने पूछा कि तुम मैली क्यों देख पड़ती हो, तब उसनें जवाब दिया कि श्वसुर जी के घर में भोजन पकाने से। जब मैंने पूछा कि क्या तुम मुझे याद करती हो, तब तो वह मुग्धा बाला "नहीं, नहीं" कहती हुई काम-जनित पीड़ा से काँपने लगी और मेरे हृदय से लगकर जोरों से रोने लगी !

इस श्लोक में सरलता खूब है। यह पद्य कड़े दिल में भी सहानुभूति पैदा कर रहा है। नायिका की मुग्धता का क्या ही सच्चा चित्र खींचा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(७) विकटनितम्बा

विकटनितम्बा का नाम साहित्य प्रेमियोंसे छिपा नहीं है। आपने अपने सुभग जन्मसे भारत के किस प्रदेशको सौभाग्यशाली बनाया है ? यह तो निर्णय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु विद्वानों का अनुमान है कि कवि-पण्डितों की जननी काश्मीर-भूमि में—जिस के विषय में विल्हण का दावा है कि कविता काश्मीर को छोड़ अन्य देशों को अपना दर्शन नहीं देती—आपका जन्म हुआ। जन्म-काल तथा जीवनी अभी तक अन्धकाराच्छन्न है। सूक्ति-मुक्तावली में राजशेखर का यह श्लोक इनके विषय में है :—

के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन रंजिताः।
निन्दन्ति निजकान्तानां न मौग्ध्यमधुरं वचः ॥

कौन मनुष्य ऐसा है जिसे विकटनितम्बा की वाणीके गुच्छों को सुनकर अपनी स्त्रियों के मुग्धता पूर्ण मधुर बचन फीके नहीं लगते हों—उसे कान्ताके वचनों से घृणा न पैदा हो जाय। प्रसिद्ध नाटककार तथा आलोचक कविकुलशेखर राजशेखर का वचन सर्वथा सत्य है। नीचेके वाक्यों से इस कथनकी सत्यता पूरी प्रमाणित हो जायगी। विकटनितम्बा की कविता में मधुर रस तो कूट २ कर भरा हुआ है। शब्दोंकी कोमलता तथा भावों की शुद्धि मनको हठात् वश कर लेती है। पढ़नेवालेका चित्त बिना प्रसन्न हुए नहीं रहता। प्रायः सब कविता श्रृङ्गार रससे भरी हुई हैं। विकटनितम्बा अविवेकी भ्रमरको कैसी डाँट बता रही है :—

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृंग
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ॥
मुग्धामजातरजसं कलिकामकाले।
व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रे भौंरे ! तेरे मर्दनको सहनेवाली अन्य पुष्पलताओंमें अपने चंचल चित्तको विनोदित कर अनखिली केसररहित इस नवमल्लिकाकी छोटी कलीको अभी असमयमें क्यों व्यर्थ दुख दे रहा है। अभी तो उसमें केसर भी नहीं है, विचारी खिली तक नहीं है। इसे दुःख देना क्या तुझे सोहता है ? यहांसे हट जा। किसी सुस्तनी कृशमध्या युवतीको कैसा सदुपदेश है—

अय्ययि साहसकारिणि किं तव चंक्रमणेन।
टसदिति भङ्गमवाप्स्यति कुचयुगभारभरेण ॥

अयि साहस करने वाली ! भला तू इधर-उधर टहलनेकी कोशिश क्यों कर रही ? नहीं जानती हो, जरा टसकने पर ही दोनों स्तनोंके भारसे तेरा शरीर टूट जायगा। ज़रा अपनी पतली कमरको तो देख !

किं द्वारि दैवहतिके सहकारकेण
संवर्धितेन विषवृक्षक एष पापः।
अस्मिन् मनागपि विकासविकारभाजि
घोरा भवन्ति मदनज्वरसंनिपाताः ॥

कोई सखी कह रही है कि हे सखि ! दरवाजे पर इस आमके पेड़को बढ़ा कर क्या होगा ? जानती नहीं, यह विषका पेड़ है। जरा भी यह विकसना शुरू किया कि कामज्वरका सन्निपात बड़ा दुःखदायी हो जायगा। दूती नायकको कैसी अच्छी बातें कह रही है :—

बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यज्यतामद्य शङ्का
दृष्टा काचिद् भ्रमरभरतो मंजरी भग्नपुष्पा।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः कदाचित् ॥

यह कोमलाङ्गी बाला अभी कम-उम्र है। इस विचारसे शङ्का दूर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हटाओ। जानते नहीं हो ? क्या नयी मंजरी भौरों के भार से अपने फूलोंको तोड़ डालती है ? अतः समागम के अनौचित्य के सन्देह को बहा डालो। एकान्त में इसका गाढ़ आलिङ्गन करो। आलिङ्गन निर्दय होना चाहिए तभी पूर्ण आनन्द आता है। क्या धीरे-धीरे चूसने से ईख अपने रस को देती है। रस लेने के लिए तो खूब चूसना चाहिए। कामशास्त्रकी कितनी सुन्दर शिक्षा इस पद्यमें निविष्ट की गई है।

(८) शीला भट्टारिका

धनदेव नामक किसी प्राचीन कवि का यह पद्य शार्ङ्गधरपद्धति में उद्धृत किया है—

शीला विज्जा मारुला मोरिकाद्या
काव्यं कर्तुं सन्ति विज्ञाः स्त्रियोऽपि।
विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं
विश्वं वेत्तुं यः प्रवीणः स वन्द्यः।

इससे प्रतीत होता है कि इनका नाम शीला था। सम्भवतः ये काश्मीर की निवासिनी थीं। इनकी रचना में मधुरता सर्वत्र भरी है। शब्दों का सौष्ठव और अर्थों का सहृदयों के मन को मोहता है। राजशेखर शीला के काव्य को ऊँची कोटि का मानते हैं। कि वे उसे बाणभट्ट के। समक्ष का स्वीकार करने में तनिक भी पराङ्मुख नहीं होते।

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥

शब्द तथा अर्थ की समान रचना को पाञ्चाली रीति कहते हैं, जैसा विशद शब्द, वैसा मनोहर अर्थ। ऐसी रीति यदि कहीं है, तो केवल शीला की कविता में और बाणभट्ट की उक्तियों में। देखिये, किस प्रकार एक स्त्री

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की कविता एक प्रसिद्ध कवि की कविता के समान समझी गई है। शीला का दूती को दिया गया उपदेश कितना अच्छा है—

दूति त्वं तरुणो युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः
संदेशः सरहस्य एव विपिने संकेतकावासकः।
भूयो भूय इमे वसन्तमरुतश्चेतो हरन्त्यन्यतो
गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणे रक्षन्तु ते देवताः॥

हे दूती! तू जवान है और वह नायक भी जवान और चञ्चल है। तिस पर चारों ओर अन्धकार घिर आया है। मेरा सन्देश भी रहस्यपूर्ण है और जङ्गल में ही संकेत स्थल है। बारम्बार वसन्त की वायु चित्त चुराये जा रही है, अतः दूसरे रास्तासे जाओ। देवता तुम्हारी रक्षा करेंगे। नायक से उपभुक्त दूती की पहचान किस प्रकार की जा रही है:—

श्वासाः किं त्वरितागतैः पुलकिता कस्मात्प्रसादः कृतः
स्रस्ता वेण्यपि पादयोः निपतनात् नीवीगमादागमात्।
स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गलितं क्षामा किमत्युक्तिभिः
दूति! म्लानसरोरुहद्युतिधरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि।

प्रियाविरहितस्याद्य हृदि चिन्ता समागता।
इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते॥

प्रिया के वियोग में मेरे हृदय में चिन्ता घुस गई। यह जानकर कि एक प्यारी के वियोग होने पर चिन्तारूपी दूसरी नायिका पास है, निद्रा विचारी चली गई। कृतघ्न की सेवा करना कोई नहीं चाहता!

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपाः
ते चोन्मीलित-मालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोई नायिका कह रही है—कुमारावस्था को मिटानेवाला वही मेरा पति है। चैत की रातें भी वही हैं। खिली मालती के गन्ध को लिए हुए पूर्वपरिचित कदम्बवायु धीरे २ बह रही है। मैं भी वही हूं। परन्तु क्या कारण है कि नर्मदा के कूलपर अशोकके कुंजके लिये मेरा चित्त आज उत्कंठित हो रहा है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१५) उद्भट भट्ट

उनका परिचय तथा अलङ्कार-सिद्धान्त

प्रसिद्धि

संस्कृत अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों में उद्भट भट्ट का भी स्थान बड़ा ऊँचा है। पीछे के बड़े शास्त्रकारों ने बड़े आदर के साथ उनका और उनके मत का उल्लेख किया है। जो उनका मत नहीं भी मानते, बहुत बातों में उनके पूरे विरोधी हैं, वे भी जब उनका नाम अपने ग्रन्थों में लेते हैं, उनके प्रति पूरा सम्मान दिखाने का प्रयत्न करते हैं। ध्वन्यालोक के रचनेवाले आनन्दवर्द्धनाचार्य कितने बड़े पण्डित थे, यह तो बताने की आवश्यकता ही नहीं है। वे भी अपने ग्रन्थ में एक स्थान पर यों लिखते हैं—"अन्यत्र वाच्यत्वेन प्रसिद्धो यो रूपकादिरलङ्कारः सोन्यत्र प्रतीयमानतया बाहुल्येन प्रदर्शितस्तत्रभवद्भिर्भट्टोद्भटादिभिः"* । रुय्यक का अलङ्कार-सर्वस्व प्रसिद्ध ही है‡ । उसी के आधार पर अप्पय दीक्षित ने अपने अलङ्कार ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा है। इसमें भट्ट उद्भट का नाम आया है। बल्कि यह कहना चाहिये कि भामह और इनके नाम से ही ग्रन्थ आरम्भ होता है—"इह हि तावद् भामहोद्भटप्र-भृतयाश्चिरन्तनालङ्कारकारा ‡" इत्यादि। यही रुय्यक जब व्यक्तिविवेक ऐसे बड़े महत्व के ग्रन्थ की टीका लिखने बैठे, तब भी उद्भट भट्ट को न भूले थे। वहाँ वे यों लिखते हैं—"इह हि चिरन्तनैरलङ्कारतन्त्र प्रजापतिभिर्भट्टोद्भटप्रभृतिभिः शब्दधर्मा

---

* ध्वन्यालोक, पृ० १०८ (निर्णयसागर)।

‡ दक्षिण के टीकाकार समुद्रबन्ध का कहना है कि रुय्यक ने केवल सूत्र ही लिखा। उन सूत्रों की वृत्ति का ही नाम 'अलङ्कार' सर्वस्व है, जो उनके शिष्य मंखुक ने लिखी। किन्तु यह मत कई कारणों से ठीक नहीं ठहरता।

‡ अलङ्कार सर्वस्व, पृ० ३ (निर्णयसागर)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवालङ्काराः प्रतिपादिता नाभिधाधर्माः।"* इन प्राचीनों की बात ही क्या है; पीछे के जो उद्धत से उद्धत भी नवीन आचार्य हुए हैं, उन को भी भट्ट उद्भट के सामने सिर नवाना ही पड़ा है। जिसने रसगङ्गाधर एक बार भी पढ़ा है, वह अच्छी तरह जानता है कि पण्डितराज जगन्नाथ कैसे थे। किसको उन्होंने खबर न ली! अप्पय दीक्षित के धुरें उड़ा दिए; विमर्षिणीकार के छक्के छुड़ा दिए। पर वे भी जहाँ कहीं उद्भट का नाम लेते हैं, आदर ही दिखाते हैं। कहीं उनके ग्रन्थ के लगाने का प्रयत्न किया, कहीं उन पर किय गए आक्षेपों का उत्तर दिया, और कहीं अपने कथन के समर्थन में उनका उल्लेख किया। एक स्थान से लिए हुए वाक्य को नमूने के तौर पर देखिए—"अत्राहुरुद्भटाचार्याः। येन नाप्राप्ते य आरभ्यते स तस्य बाधक इति न्यायेनालङ्कारान्तर विषय एवायमारभ्यमाणोऽलङ्कारान्तरं बाधते"† इत्यादि। और कहाँ तक कहें; भट्ट उद्भट की प्रसिद्धि इतनी जोरों की हुई कि बेचारे सब से प्राचीन आचार्य भामह कोसों दूर पड़े रह गए। इनके आगे वे फीके से जँचने लगे। यही कारण है कि भामह के काव्यालङ्कार की पुस्तक तक नहीं मिलती।

देश और समय

"उद्भट" नाम सुनते ही कौन न कह बैठेगा कि ये काश्मीरी होंगे। पुराने काश्मीरियों के नाम गजब के होते थे। इस समय के लोग तो उन्हें सुनते ही फड़क उठते हैं। भला कहिए, कैयट, जैयट, वैयट, मम्मट, अल्लट, भल्लट सरीखे नाम और किस देश में निकलेंगे! ये जो नाम मैंने ऊपर दिए हैं, वे सब एक से एक बढ़े चढ़े आचार्यों के हैं। अब

* व्यक्तिविवेक टीका, पृ० ३ (अनन्तशयन)।

† रसगङ्गाधर, पृ० ६२३ (काशी)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"उद्भट" नाम को इन सब के बगल में रखिए और देखिए कि यह किस नाम से कम उद्भट है।

केवल नाम ही की बात नहीं; और भी दूसरे विश्वासार्ह प्रमाण हैं, जिनसे उनका काश्मीर का होना अच्छी तरह सिद्ध होता है।

राजतरङ्गिणी में कल्हण किसी एक भट्ट उद्भट को महाराज जयापीड़ का सभापति बतलाते हैं। महाराज जयापीड़ का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

"विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः" ॥-४ ४९५.

उस राजा के सभापति विद्वान् उद्भट भट्ट थे, जिनका दैनिक वेतन एक लाख दीनार था। यह उद्भट, जिनके संरक्षक महाराज जयापीड़ थे, और वे जिनका उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं, जहाँ तक पता लगा है, दोनों एक ही थे। इन दोनों का एक व्यक्ति होना डॉ० ब्यूलर (Buhler) को काश्मीर-रिपोर्ट में बहुत प्रमाणों से सिद्ध किया गया है *। डॉ० ब्यूलर ने ही पहले पहल काश्मीर जाकर अन्य ग्रन्थों के साथ भट्ट उद्भट के अलंकारसार-संग्रह का पता लगाया था।

महराज जयापीड़ वै० सं० ८३६ से ८७० तक राज्य करते रहे। अपने राज्य के अन्तिम काल में ये कुछ बदनाम से हो गए थे। इनसे प्रजाओं को पीड़ा होते देखकर ब्राह्मणों ने सब संबंध छोड़ दिया था। इसी कारण डॉ० जाकोबी (Jacobi) भट्ट उद्भट को इनके राज्य के पहले भाग में रखना अधिक उचित समझते हैं। यही समय इनका दूसरी तरह से भी प्रमाणित होता है। ध्वन्यालोक के रचयिता आनंदवर्द्ध-

* Dr. G. Buhler's Detailed Report of a Tour in Search of Sanskrit MSS. made in Kashmir etc. Extra number of the J. B. R. A.S., 1877.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाचार्य ने इनका नाम कई बार लिया है *। आनन्दवर्द्धनाचार्य का भी नाम राजतरंगिणी में आया है—

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥ ५-३४.

मुक्ताकण, शिवस्वामी, कवि आनन्दवर्द्धन तथा रत्नाकर ये सब अवंतिवर्मा के राज्य-काल में प्रसिद्ध हुए। महाराज अवन्तिवर्मा वै० सं० ९१२ से ९४५ तक काश्मीर का शासन करते रहे। आनन्दवर्द्धन का भी, पूर्वोक्त श्लोक के अनुसार, यही समय मानना चाहिये। इसलिये इस बात से भी भट उद्भट का पूर्वोक्त समय ही ठीक प्रमाणित होता है। एक दूसरी बात भी यहाँ ध्यान रखने योग्य है। वह यह कि भट उद्भट ने कहीं आनन्दवर्द्धनाचार्य का क्या, ध्वनि-मत का भी अच्छी तरह उल्लेख नहीं किया है। इससे यही अनुमान किया जा सकता है कि उनके समय तक ध्वनिमत की पूर्ण रूप से स्थापना नहीं हुई थी। ऐसा ही पता प्रतिहारेन्दुराज की टीका से तथा अन्य ग्रन्थों से भी चलता है÷। इन सब बातों का विचार करने से यही सिद्ध होता है कि भट्ट उद्भट वै० नवम शतक के पूर्वार्द्ध में अवश्य विद्यमान थे। †।

ग्रंथ

अभी तक भट्ट उद्भट के तीन ग्रन्थों का पता लगा है। वे ये हैं— (१) भामह विवरण, (२) कुमारसंभव काव्य और (३) अलंकारसार संग्रह।

* ध्वन्यालोक, पृ० ९६ और १०८ (निर्णयसागर)।

÷ अलंकारसार लघु विवृति, पृ० १९—"कैश्चित् सहृदयैर्ध्वनिर्नाम व्यञ्जकभेदात्मा काव्यधर्मोऽभिहितः। स कस्मादिह नोपदिष्टः। उच्यते। एष्वलंकारेष्वन्तर्भावात्।" अलंकार-सर्वस्व-टीका (अलंकारविमर्षिणी) पृ० ३ (निर्णयसागर)— "ध्वनिकारमतमेभिर्न दृष्टमितिभावः।"

† Wintenitz Geschichte der Indischen Literatur Vo- III. P, 17; Dr, S, K, De, History of Sanskrit Poeties, p. Vol I, p, 75; P, V, Kane, Introd. to साहित्यदर्पण p, XLV

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भामह-विवरण

'भामह-विवरण' का केवल नाम ही नाम मिला है; पुस्तक कहीं नहीं मिली है। प्रतिहारेन्दुराज अलंकारसार संग्रह की लघुविवृति नाम की टीका में एक स्थल पर यों लिखते हैं—"विशेषोक्ति-लक्षणे च भामह-विवरणे भट्टोद्भटेन एकदेशशब्द एवं व्याख्यातो यथैतास्माभिर्निरूपितः"*। इस कथन से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि भामह-विवरण नाम का ग्रन्थ भट्ट उद्भट ने लिखा था। इस कथन की पुष्टि अभिनव गुप्ताचार्य भी कई स्थलों पर करते हैं †। एक स्थल पर वे यों लिखते हैं-"भामहोक्तं 'शब्दछन्दोभिधानार्थः' इत्यभिधानस्य शब्दाद् भेदं व्याख्यातुं भट्टोद्भटो बभाषे †"। इससे तो साफ ही निकलता है कि भट्ट उद्भट ने भामह के ग्रन्थ पर व्याख्या लिखी थी। अन्य स्थलों से भी यही सिद्ध होता है। हेमचन्द्र भी अपने काव्यानुशासन की अलंकार-चूड़ामणि नाम की टीका में भट उद्भट कृत भामह विवरण का कई बार उल्लेख करते हैं+। रुय्यक अपने अलङ्कारसर्वस्व में इस भामह विवरण का 'भामहीय उद्भट लक्षण' कहकर उल्लेख करते हैं÷। इसी अलंकार सर्वस्व की टीका में समुद्रबन्ध इसको काव्यालंकार विवृत्ति कहते हैं×। भट्ट उद्भट के अलंकारसार-संग्रह से पता चलता है कि इन्होंने भामह के अलंकार लक्षणों को बहुत स्थलों पर वैसे का वैसा ही उठा लिया है। इससे भी यही मलूम होता है कि इनका भामह के साथ घनिष्ठ संबंध था।

---

* पृ० १३.

† ध्वन्यालोकलोचन (निर्णयसागर) पृ० १०

† " " पृ० ४०, १५९.

× काव्यानुशासन टीका (निर्णयसागर) पृ० १७, ११०,

÷ अलङ्कारसर्वस्व पृ० १९३,

× अलङ्कारसर्वस्व टीका (अनंतशयन) ० ८९,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भट्ट उद्भट के दूसरे ग्रंथ की भी यही दशा है। इस ग्रंथ का नाम था 'कुमारसंभव काव्य'। प्रतिहारेन्दुराज के कथन से उसके अस्तित्व का पता चलता है; तथा यह मालूम होता है कि अलंकारसार संग्रह में आए हुए उदाहरण बहुत करके उसी काव्य से लिए गए हैं। प्रतिहारेन्दुराज अपनी लघुविवृति में एक स्थान पर यों लिखते हैं—"अनेन ग्रन्थकृता स्वोपरचितकुमारसंभवैकदेशोऽत्रोदाहरणत्वेन उपन्यस्तः *।" जैसा कि काणे महाशय कहते हैं †, इन श्लोकों को देखने से स्पष्ट यही प्रतीत होता है कि मानों कालिदास के कुमारसंभव की नकल की गई हो। यह सादृश्य केवल शब्द और अर्थ ही का नहीं है, बल्कि घटनोल्लेख का भी है। यहां एक दो उदाहरण दिखाना अप्रासङ्गिक न होगा।

उद्भट का श्लोक—प्रच्छन्ना शस्यते वृत्तिः स्त्रीणां भावपरीक्षणे
प्रतस्थे धूर्जटिरतस्तनुं स्वीकृत्य वाटवीम्॥
(२, १० ‡

कालिदास का श्लोक—विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं
शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा। इत्यादि।
(२, १२)

उद्भट का श्लोक—अपश्यच्चातिकष्टानि तप्यमानां तपांस्युमाम्।
असंभाव्यपतीच्छानां कन्यानां का परा गतिः॥
(२, १२) ×

---

* अलंकारसारसंग्रह लघुविवृति, पृ० १३ (निर्णयसागर)।

† Introduction to his साहित्यदर्पण p. XLV.

‡ अलंकारसागरसंग्रह लघुविवृति पृ० ३३.

× " पृ० ३४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कालिदास का श्लोक—इयेष मा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमीदृशं द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥
५.२

उद्भट का श्लोक-शीर्णपर्णाम्बुवाताशकष्टेऽपि तपसि स्थिताम्।
२.१

कालिदास का श्लोक--स्वयं विशीर्ण द्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः। इत्यादि।
५.२८

अलङ्कारसार संग्रह

भट्ट उद्भट का तीसरा ग्रंथ है अलंकारसार संग्रह। इस समय एक यही साधन है, जिससे भट्ट उद्भट की विद्वता का पता चल सकता है। इसका पहले पहल पता डा० ब्यूलर ने काश्मीर में लगाया था और इसका पूरा विवरण अपनी रिपोर्ट में दिया था। इसका अनुवाद कर्नल जेकब ने निकाला था। पर ग्रंथ जब तक निर्णयसागर में न छपा, तब तक सर्व साधारण के लिये दुर्लभ ही था। वै० सं० १९७२ में पंडित मंगेश रामकृष्ण तैलंग ने प्रतिहारेन्दुराज की लघुविवृति नाम की टीका के साथ इसका संपादन कर इसे प्रकाशित किया।

यह ग्रन्थ छः वर्गों में विभक्त है। इसमें लगभग ७९ कारिकाओं द्वारा ४१ अलङ्कारों के लक्षण दिए गए हैं। इनके उदाहरण की तरह लगभग १०० श्लोक अपने कुमारसंभव काव्य से (जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है) दिए हैं।

* अलंकारसार संग्रह लघुविवृति पृ० ३७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिन अलंकारों के लक्षण और उदाहरण इसमें दिए गए हैं, उनके नाम वर्गक्रम से नीचे दिए जाते हैं।

प्रथम वर्ग—(१) पुनरुक्तवदाभास, (२) छेकानुप्रास, (३) त्रिविध अनुप्रास (परुषा, उपनागरिका, ग्राम्या या कोमला), (४) लाटानुप्रास, (५) रूपक, (६) उपमा, (७) दीपक, (आदि, मध्य, अन्त), (८) प्रति-वस्तूपमा।

द्वितीय वर्ग—(१) आक्षेप, (२) अर्थान्तरन्यास, (३) व्यतिरेक, (४) विभावना, (५) समासोक्ति, (६) अतिशयोक्ति

तृतीय वर्ग—(१) यथासंख्य, (२) उत्प्रेक्षा, (३) स्वभावोक्ति।

चतुर्थ वर्ग—(१) प्रेय, (२) रसवत्, (३) ऊर्जस्वि, (४) पर्यायोक्त, (५) समाहित, (६) उदात्त (द्विविध), (७) श्लिष्ट।

पञ्चम वर्ग—(१) अपह्नुति, (२) विशेषोक्ति, (३) विरोध, (४) तुल्ययोगिता, (५) अप्रस्तुत प्रशंसा, (६) व्याजस्तुति, (७) विदर्शना, (८) उपमेयोपमा, (९) सहोक्ति, (१०) संकर (चतुर्विध), (११) परिवृत्ति।

षष्ठ वर्ग—(१) अनन्वय, (२) ससंदेह, (३) संसृष्टि, (४) भाविक, (५) काव्यलिंग, (६) दृष्टांत।

भामह से सम्बन्ध

(१) सादृश्य

ऊपर एक स्थान पर कहा जा चुका है कि भट्ट उद्भट भामह के बड़े भक्त थे। उन्होंने भामह के काव्यालङ्कार पर भामह-विवरण नाम की टीका लिखी। इतना ही नहीं, उसी ग्रन्थ का बहुत कुछ सहारा लेकर उन्होंने अपना अलङ्कारसारसंग्रह लिखा। अब यहाँ यह देखना भी उचित होगा कि उन्होंने इस ग्रन्थ के बनाने में कहाँ तक भामह का अनुकरण किया और कहाँ तक अपनी बुद्धि लगाई। पहली बात जो देखते ही दृष्टिगत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है, वह यह है कि अलङ्कारों के लक्षण और उदाहरण जिस क्रम से भामह के काव्यालङ्कार में कहे गए हैं, उसी क्रम से यहां भी दिए गए हैं। दोनों के लक्षणों को मिलाने से पता लगता है कि आक्षेप, विभावना, अतिशयोक्ति, यथासंख्या, पर्यायोक्त, अपह्नुति, विरोध, अप्रस्तुत-प्रशंसा, सहोक्ति, ससन्देह और अनन्वय के लक्षण हूबहू वही के वही हैं। कुछ और दूसरे अलङ्कार जैसे अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रसवत, भाविक आदि ऐसे हैं, जिनके लक्षण बिल्कुल वही के वही तो नहीं हैं, पर तो भी दोनों में बहुत कुछ सादृश्य अवश्य है। यह तो हुई ऊपरी समता। भीतरी मत भी भामह और भट्ट उद्भट का करीब करीब एक सा था। दोनों अलङ्कार-मत के माननेवाले थे।

(२) विलक्षणता

इतना सादृश्य होने पर भी भट्ट उद्भट बिलकुल ही अनुकरण करनेवाले न थे। उन्होंने भामह के कहे हुए कितने ही अलंकारों के नाम तक नहीं लिए हैं; और कितने ही भामह के न कहे हुए अलंकारों को अपने ग्रंथ में स्थान दिया है। यमक, उपमारूपक, उत्प्रेक्षावयव, भामह के काव्यालंकार में आए हैं, पर उद्भट के अलङ्कारसार-संग्रह में उनका कहीं नाम भी नहीं मिलता। इसी तरह पुनरुक्तवदाभास, सङ्कर, काव्यलिङ्ग और दृष्टान्त भामह के ग्रन्थ में न आने पर भी भट्ट उद्भट के ग्रन्थ में मिलते हैं। निदर्शना को उद्भट विदर्शना कहते हैं; पर बहुत संभव है कि यह लिखने की ही भूल हो।

इसके अतिरिक्त और भी कई बातें हैं, जिनमें इनका मत भामह के मत से नहीं मिलता। प्रतिहारेन्दुराज एक स्थान पर कहते हैं—"भामहो हि ग्राम्योपनागरिकावृत्तिभेदेन द्विप्रकारमेवानुप्रासं व्याख्यातवान्। तथा रूपकस्य ये चत्वारो भेदा वक्ष्यन्ते तन्मध्यादाद्यमेव भेदद्वितयं प्राद-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र्शयत् *।" भामह ने ग्राम्या वृत्ति और उपनागरिका वृत्ति यही दो प्रकार के अनुप्रास माने हैं। रूपक के भी उन्होंने दो ही भेद दिखाए हैं। इसके विरुद्ध उद्भट भट्ट ने अनुप्रास तीन तरह के माने हैं। इन्होंने एक परुषा वृत्ति और जोड़ दी है। इसी तरह रूपक के भी इन्होंने दो भेद और जोड़कर चार भेद कर दिए हैं। प्रतिहारेन्दुराज फिर एक दूसरे स्थान पर कहते हैं—"भामहो हि 'तत्सहोत्युमाहेतु निर्देशात्त्रिविधं यथा। इति श्लिष्टस्य त्रैविध्यमाह"†। भामह ने श्लेष के तीन भेद माने हैं; पर उद्भट दो भेद मानते हैं;।

संस्कृत अलङ्कार शास्त्र में बहुत से भिन्न-भिन्न मत हो चुके हैं। अलङ्कार सर्वस्व की टीका में समुद्रवन्ध उन मतों के यों विभाग करते हैं—"विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्। तद्वैशिष्ट्यं धर्ममुखेन, व्यापारमुखेन, व्यंग्य-मुखेन च"†। विशिष्ट शब्द अर्थ को काव्य कहते हैं। इस विशिष्टता का प्रकाश तीन तरह से होता है—धर्म से, व्यापार से और व्यंग्य से। धर्म के दो भेद होते हैं—स्थायिधर्म अर्थात् गुण; और अस्थायिधर्म अर्थात् अलङ्कार। जो लोग अलङ्कार ही को काव्य में सब से प्रधान समझते हैं, उनका मत अलङ्कार मत कहा जाता है। इस मत के माननेवाले उद्भट को छोड़कर भामह, दण्डी, रुद्रट, प्रतिहारेन्दुराज आदि कहे जा सकते हैं।

विशेषताएँ

उद्भट के मत से कई बातें सबसे विलक्षण हैं। यहाँ उनका संग्रह कर देना अनुचित न होगा। प्रतिहारेन्दुराज एक स्थान पर कहते हैं—"अर्थभेदेन तावच्छब्दा भिद्यन्ते इति भट्टोद्भटस्य सिद्धान्तः"†। अर्थभेद

* अलङ्कारसार लघुवृत्ति, पृ० १.
† " " पृ० ४७.
† अलङ्कारसर्वस्व टीका (अनन्तशयन), पृ० ४.
× अलङ्कारसार लघुवृत्ति, पृ० ५५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से शब्दों का भेद होता है, यह भट्टोद्भट का सिद्धान्त है। ये दो तरह का श्लेष मानते हैं—शब्दश्लेष और अर्थश्लेष; और दोनों को अर्थालङ्कार ही मानते हैं *। श्लेष को यह प्रधान अलङ्कार मानते हैं और सब अलङ्कारों का बाधक समझते हैं ‡। ये साफ ही कहते हैं—"अलङ्कारान्तरगतां प्रतिभां जनयत् पदैः"। ये अभिधा व्यापार तीन तरह का मानते थे ‡। अर्थ ये दो तरह का मानते थे—अविचारित सुस्थ और विचारित रमणीय। गुणों को ये संघटना के धर्म मानते थे÷। व्याकरण के विचार पर जो बहुत से उपमा के भेद पाए जाते हैं, वे सब बहुत करके उद्भट के ही निकाले हुए हैं †।

इतना कहने के बाद अब यह फिर दोहराने की आवश्यकता नहीं कि भट्ट उद्भट बड़े भारी विद्वान् और धुरंधर आलङ्कारिक थे। जिस किसी बड़े अलङ्कार ग्रन्थ को उठाकर देखिए, कहीं न कहीं भट्ट उद्भट का नाम अवश्य देखने में आवेगा। इनका मत पीछे से उड़ सा गया। जब लोक 'व्यंग्य' ही को काव्य का आत्मा मानने लगे, तब अलङ्कारों का बाहरी उपकरण ठहराया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इतना होने पर भी उनकी कीर्ति अक्षुण्ण बनी रही, यह क्या बहुत बड़ी बात नहीं है?

---

* काव्यप्रकाश, ९ उल्लास,

† ध्वन्यालोक, पृ० ९६.

‡ काव्यमीमांसा, पृ० २२.

+ काव्यमीमांसा, पृ० ४४; व्यक्तिविवेक टीका, पृ० ४

÷ ध्वन्यालोकलोचन, पृ० १३४.

×P.V.Kane. Introduction. to साहित्यदर्पण, P.XLIV

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१६) शिंग भूपाल

भारत में संगीत शास्त्र की उत्पत्ति अत्यन्त प्राचीन काल में हुई थी। वह काल वैदिक काल से भी प्राचीन होना चाहिए, क्योंकि वेद के समय में तो संगीत की ख़ासी उन्नति दिखाई पड़ती है। सामवेद से हम संगीत शास्त्र की विशिष्ट उन्नति का यथोचित पता पा सकते हैं। परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि सङ्गीत विषयक अधिकांश ग्रंथ कराल काल के ग्रास बन गए हैं। यदि समग्र ग्रंथ इस समय उपलब्ध रहते तो इस शास्त्र के क्रमवद्ध विकाश का इतिहास सहज में ही लिखा जा सकता था। 'सङ्गीत मकरन्द'* के द्वितीय परिशिष्ट पर एक सरसरी निगाह डालने से यह शीघ्र पता लग सकता है कि भारतीय संगीत-शास्त्र का अध्ययन तथा अध्यापन कितने जोरों के साथ प्राचीन काल में हुआ करता था। यह शास्त्र किसी भी शास्त्र के तनिक भी पीछे न था। संगीत धर्म के साथ सम्बद्ध था, प्राचीन अनेक ऋषि—नारद, हनुमान; तुम्बरु, कोहल, मातंग, बेणा,—इसके आचार्य थे जिन्होंने संगीत पर ग्रन्थों की रचना की थी। परन्तु संगीत की अनेक पुस्तकें अब तक तालपत्रों पर हस्तलिखित प्रतियों के रूप में ही पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रही हैं। केवल एक दर्जन से कम ही पुस्तकों को प्रकाशित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

यद्यपि 'भारतीय नाट्य-शास्त्र' में संगीत के अनेक रहस्य बतलाए गए हैं तथापि 'संगीत रत्नाकर' ही संगीत शास्त्र का सबसे बड़ा उपलब्ध ग्रन्थ है। इस अमूल्य ग्रन्थ में संगीत की जैसी सुगम तथा सर्वांगीण व्याख्या की गई है वैसी दूसरे किसी ग्रन्थ में नहीं पाई जाती। प्राचीनता के लिये भी

---

* गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़ नं १६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'नाट्यशास्त्र' तथा नारदरचित 'संगीतमकरन्द' को छोड़कर 'संगीतरत्नाकर' सबसे पुराना ग्रन्थ है। ऐसे सुन्दर ग्रन्थ के लिये इसके रचयिता 'शार्ङ्गदेव'* समग्र संगीत प्रेमियों के आदर के पात्र हैं। इस ग्रन्थ के ऊपर अनेक प्राचीन टीकाएँ हैं जिनमें 'चतुर कल्लिनाथ' (लगभग १४००–१५००) रचित टीका आनन्दाश्रम सीरीज में प्रकाशित हुई है तथा दूसरी टीका जो प्राचीनता तथा सरल व्याख्या की कसौटी के ख्याल से पूर्वोक्त से कहीं अच्छी है कलकत्ते से प्रकाशित हुई थी। इस टीका का नाम है—संगीत सुधाकर। इसकी विशेषता यह है कि इसमें अनेक प्राचीन ग्रन्थों (जिनका अब नामोनिशान बाकी नहीं है) से उद्धरण लिए मिलते हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्व नितान्त आदरणीय है। इस टीका के रचयिता 'शिङ्गभूपाल' इस लेख के विषय हैं।

'शिङ्गभूपाल' के समय के विषय में अनेक मत दीखते हैं। डाक्टर रामकृष्ण भांडारकर ने लिखा‡ है कि 'शिङ्ग अपने को 'आंध्रमण्डल' का अधिपति लिखता है; इसके विषय में ठीक-ठीक कहना तो अत्यन्त कठिन है तथापि अधिक सम्भावना इसी बात की है कि यह तथा देवगिरि के यादव राजा 'सिंघण' दोनों एक ही व्यक्ति थे। 'सिंघण' के आश्रित शार्ङ्गदेव ने 'सङ्गीतरत्नाकर' बनाया था; सम्भव है कि शार्ङ्गदेव अथवा अन्य किसी पंडित ने टीका लिखकर अपने आश्रयदाता नरेश के नाम से उसे विख्यात किया हो। अतएव इनका समय १३ वीं शताब्दी का मध्य-भाग मानना समुचित है।

श्रीयुत पी. आर‡ भांडारकर ने कल्लिनाथ की टीका का उल्लेख पाने से 'सिङ्गभूपाल' को १६ वीं सदी का माना था परन्तु कलकत्ता की एक

* देवगिरि के प्रसिद्ध राजा सिंह या सिंघण (१२१८-४९) की सभा में शार्ङ्गदेव रहते थे। यह राजा संस्कृत भाषा का बड़ा प्रेमी था। इसके धर्माध्यक्ष 'वादीन्द्र' ने 'महाविद्या विडम्बन' नामक नैयायिक ग्रन्थ की रचना की है।

‡ डाक्टर भांडारकर की संस्कृत पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट (१४८२-८३)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हस्तलिखित प्रति में कल्लिनाथ का उद्धरण बिल्कुल ही नहीं है। कलकत्ते की हस्तलिखित प्रति से सिङ्गभूपाल के जीवन तथा समय की अनेक बातें ज्ञात हुई हैं। कलकत्ते की प्रति की पुष्पिका यों हैं—

(१) इति श्रीमदन्ध्रमण्डलाधीश्वर प्रतिगुणभैरव श्रीयनबान नरेन्द्र-नन्दन भुजबलभीम श्रीसिङ्गभूपाल विरचितायां संगीतरत्नाकर टीकायां सुधा-कराख्यायां रागविवेकाध्यायो द्वितीयः।

(रागविवेकाध्याय का अन्त)

(२) भैरव श्रीअमरेन्द्रनन्दन.......(प्रकीर्णाध्याय का अन्त)

एक 'सिंगपाल' कृत 'रसार्णव सुधाकर' नामक ग्रन्थ की सूचना प्रो. शेषगिरि शास्त्री ने अपनी संस्कृत पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट (१८९६-९७) में दी थी। उस पर उन्होंने बहुत कुछ कहा भी था। सौभाग्य से वह पुस्तक ट्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज (५० अं०) में प्रकाशित हुई है। उस ग्रन्थ की आलोचना करनेसे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि 'रसार्णव सुधाकर*' के रचयिता तथा पूर्वोक्त टीका के लेखक दोनों एक ही व्यक्ति हैं। सुधाकर के पुष्पिका में भी वे ही बातें दी गई हैं जो पूर्वोक्त उद्धरण में हैं—इति श्रीमदन्ध्रमण्डलाधीश्वर प्रतिगुणभैरव श्री अन्नप्रोतनरेन्द्रनन्दन भुजबलभीम श्री शिङ्गभूपाल विरचिते रसार्णव-सुधाकर नीम्नि नाट्यालङ्कारे रञ्जकोल्लासो नाम प्रथमो विलासः।

ये दोनों पुष्पिकायें एक ही ग्रन्थकार की हैं। रसार्णव-सुधाकर के आरंभ में 'शिङ्गभूपाल' के पूर्व पुरुषों का इतिहास संक्षेप में वर्णित है। उससे जान पड़ता है कि 'रेचल्ल' वंश में इनका जन्म हुआ था। शिंगभूपाल अपने ६ पुत्रों के साथ 'राजाचल' नामक राजधानी में रहता था और विन्ध्याचल से

* यह ग्रन्थ 'दशरूपक' की कोटि का है। इसमें बड़ी सरलता से नाटक के विभिन्न अंगों को—वस्तु, नेता, रस—आदि की व्याख्या की गई है। दक्षिण में इसका प्रचार दशरुपक से कहीं अधिक है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेकर 'श्रीशैल' नामक पर्वत के मध्यस्थित देश पर राज्य करता था। शेष गिरि शास्त्री ने 'Biographical sketches of the Rajahs of Venkatgiri नामक पुस्तक के आधार पर शिंगभूपाल को सिंगम नायडू से अभिन्न माना है। शास्त्री जी का यह कथन सर्वथा उचित है क्योंकि 'रसार्णव सुधाकर' के आरम्भ में शिंग ने स्वयं अपने को शूद्र बतलाया है तथा दक्षिण देश में आज भी 'नायडू' की गणना उसी वर्ण में होती है। इस जातिगत ऐक्य से दोनों व्यक्ति अभिन्न ठहरते हैं।

सिंगम नायडू का समय १३३० के आस पास था जिससे हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि संगीत-सुधाकर की रचना चौदहवीं सदी के मध्य-काल में हुई थी।

पूर्वोक्त बातों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट है कि शिंगभूपाल का सन्बन्ध दक्षिण देश से था, उत्तरीय भारत से नहीं। अतएव मैथिलों का यह प्रवाद कि शिंग मिथिला के राजा थे केवल कल्पना-मात्र है—संकीर्ण प्रान्तीयता के सिवाय और कुछ नहीं है। श्रीश्याम नारायणसिंह ने अपने 'History of Tirhut' में इस प्रवाद का उल्लेख किया है*। रसार्णव सुधाकर की हस्तलिखित प्रतियों के दक्षिण में मिलने तथा पुस्तक के दक्षिण में सातिशय प्रचार से शिंगभूपाल वास्तव में दक्षिण देश के ही सिद्ध होते हैं।

---

* "He (Shinga Bhupal) is identified with some Mithila ruler of 14th. century, but the question is much disputed," H. 167.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१७) आशाधर भट्ट

संस्कृत साहित्य के किसी प्राचीन कवि या लेखक का ऐतिहासिक विवरण देने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी अनेक समस्याएँ आकर उपस्थित हो जाती हैं जिनके सुलझाए बिना सच्चा विवरण मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। कारण यह है कि प्राचीन गण्यमान्य लेखकों ने अपने जीवन चरित के विषय में अधिकतर मौनव्रत का ही अवलम्बन करना उचित समझा है। कभी-कभी ग्रन्थ के आरम्भ या अन्त में वे अपने आश्रयदाता के नाम, वंश तथा गुणों का संकेत मात्र कर देते हैं; अथवा कभी-कभी अपने पिता या गुरु का नामोल्लेख कर दिया करते हैं। तथापि उनके जीवन की अधिकांश घटनाएँ—प्रधानतः उनका आविर्भाव-काल—ऐसे दुरूह अज्ञानान्धकार में छिपा रहता है कि नवीन आविष्कार के सतत प्रयत्न करने पर भी वह गाढ़ तम पूर्णतया तिरोहित नहीं होता। हाँ, उसका कोई अंश भले ही दूर हो जाय; फिर भी जैसा चाहिए; वैसे सच्चे इतिहास की उपलब्धि नहीं होती। समय निरूपण करने की यह समस्या उस समय और भी जटिल बन जाती है; जब उसी नाम के अन्य भी कई लेखकों के ग्रन्थों की प्राप्ति होने लगती है। एक नाम रखने वाले लेखकों में पार्थक्य है या नहीं, यह बतलाना—खास कर जब उनमें से बहुतों के ग्रन्थ प्रकाशित होकर सर्व साधारण के सामने नहीं आए हैं—बहुत ही कष्टसाध्य, कभी-कभी तो बिल्कुल असम्भव भी-हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो आशाधर—उनकी एकता मानने में भ्रान्ति

हमें इन कठिनाइयों का सामना इस लेख के चरितनायक आशाधर भट्ट का जीवन चरित लिखते समय अधिक मात्रा में करना पड़ा है। संस्कृत अलङ्कार-साहित्य में आशाधर नामवाले दो व्यक्तियों का पता लगता है। इनमें से प्रथम आशाधर का पता डाक्टर पीटरसन (Dr. Peterson) ने १८८३ ईसवी में लगाया था; और दूसरे आशाधर के ग्रन्थ का पता डाक्टर बूलर (Dr. Buhler) के अनुग्रह से १८७१ ईसवी में लगा। इस नाम-सादृश्य के कारण अनेक लेखकों को इनके पार्थक्य के विषय में सन्देह उत्पन्न हो गया है। डाक्टर औफ्रेक्ट ने दोनों आशाधरों का साथ ही साथ उल्लेख किया है अवश्य, परन्तु फिर भी उनके एक व्यक्ति मानने में उन्होंने सन्देह प्रकट किया है। आश्चर्य तो यह है कि औफ्रेक्ट के बहुत वर्षों के अनन्तर जब संस्कृत साहित्य के विषय में अनेक प्रामाणिक सिद्धान्तों की उद्भावना हो गई है तथा अनेक नवीन आविष्कार हो चुके हैं, डाक्टर हरिचन्द शास्त्री ने भी इन दोनों लेखकों की एकता स्वीकृत की है। यदि इन दोनों लेखकों के चरित तथा ग्रन्थों का कुछ भी अध्ययन किया जाय, तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि नाम-सादृश्य के अतिरिक्त इनको एक व्यक्ति मानने का और कोई यथार्थ प्रमाण या कारण नहीं है।

प्राचीन आशाधर का संक्षिप्त परिचय

प्राचीन आशाधर जैन थे। व्याघ्रेरवाल वंश में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम सल्लक्षण था। अजमेर प्रदेश में इनका जन्म हुआ। अनन्तर किसी कारण से ये मालवा की प्रधान नगरी धारा में आकर रहने लग गए थे। इन्होंने बहुत से ग्रन्थ बनाए थे। इनके 'त्रिषष्टि स्मृति चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ के बनने का समय ईसवी सन् १२३६ दिया हुआ है, जिससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इनका तेरहवीं सदी में होना सिद्ध होता है। अनेक जैन ग्रंथों के अतिरिक्त इस आशाधर ने 'रुद्रट' के 'काव्यालङ्कार' पर एक टीका का भी निर्माण किया है। यह तो हुई प्राचीन आशाधर के समय की चर्चा। परन्तु वे आशाधर भट्ट जिनके चरित तथा ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण इस लेख का मुख्य उद्देश्य है, जैन आशाधर से बहुत पीछे के हैं—लगभग चार सौ वर्ष पीछे के हैं। इसका यथेष्ट प्रमाण आगे चलकर दिया जायगा।

जीवन-चरित

ऊपर कहा जा चुका है कि आशाधर भट्ट के वंश, देश, समय आदि ऐतिहासिक विवरण के उपयुक्त बातों का पता अभी तक नहीं चला है। इनके ग्रन्थ में सौभाग्यवश इनके पिता तथा गुरु के नाम उल्लिखित हैं*। इनके पिता का नाम 'रामजी भट्ट' तथा गुरु का 'धरणीधर' था। इन्होंने अपने पिता को 'पद-वाक्य-प्रमाण-पारावारीण' लिखा है, जिससे प्रतीत होता है कि रामजी भट्ट व्याकरण, न्याय तथा मीमांसा के उत्कृष्ट पण्डित थे। आशाधर ने यद्यपि अपने को कवि कहा है, तथापि व्याकरणादि इतर शास्त्रों में इनकी व्युत्पत्ति खूब अच्छी थी। त्रिवेणिका में वैयाकरणों तथा तार्किकों के शब्द-भक्ति विषयक मत का उल्लेख बड़ी खूबी से संक्षेप में दिया गया है। सम्भवतः इन विषयों का अध्ययन इन्होंने अपने पिता से किया था तथा अलङ्कारादि विषयों का अपने गुरु धरणीधर से। अनुमान है कि ये गुजरात प्रान्त के निवासी थे; क्योंकि इनके ग्रन्थों की उपलब्धि अधिकतर उसी प्रान्त

---

* शिवयोस्तनयं नत्वा गुरुं च धरणीधरम्।
आशाधरेण कविना रामजी भट्टसूनुना।
—अलंकारदीपिका; पृ० १,

धरणीधरपादाब्जप्रसादासादितस्मृतेः।
आशाधरस्य वागेषा तनोतु विदुषां मुदम्।
—अलंकारदीपिका; पृ० ९४,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में हुई है। 'भट्ट' उपनाम से इनके ब्राह्मण होने की बात स्पष्ट प्रमाणित होती है।

समय

दुर्भाग्यवश आशाधर ने अपने किसी ग्रन्थ में रचना-काल का उल्लेख नहीं किया है। अतः इनके समय का निरूपण करने में केवल भीतरी साधनों पर ही सर्वथा अवलम्बित होना पड़ता है❋। आशाधर ने अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानन्द' नामक प्रसिद्ध अलंकार ग्रन्थ पर 'अलङ्कार दीपिका' नामक टीका लिखी है। इससे इनका अप्पय दीक्षित के अनन्तर होना प्रमाण-सिद्ध है। संस्कृत साहित्य के प्रेमी पाठक जानते होंगे कि दीक्षित जो दर्शन के प्रचण्ड व्याख्याता थे; तथा उनका समय १६ वीं सदी का उत्तरार्द्ध तथा १७ वीं का आरम्भ माना जाता है। 'त्रिवेणिका' में भट्टोजी दीक्षित का उल्लेख है। सिद्धान्त कौमुदी, मनोरमा आदि व्याकरण ग्रन्थों के रचयिता भट्टोजी दीक्षित का भी समय १६ वीं सदी का अन्त तथा १७ वीं का आरम्भ माना जाता है। सम्भवतः आशाधर भट्टोजी दीक्षित के भतीजे कोण्ड भट्ट से भी परिचित थे; क्योंकि 'त्रिवेणिका' में वैयाकरणों के शब्द-शक्ति विषयक जिस मत का उल्लेख पाया जाता है, वह कोण्ड भट्ट रचित 'वैयाकरण भूषण' के तद्विषयक मन्तव्य से पूरी तौर से मेल खाता है। कोण्ड भट्ट का काल १७ वीं सदी का मध्य भाग माना जाता है। इन प्रमाणों से सिद्ध हो गया होगा कि आशाधर का समय १७ वीं सदी के पहले कदापि नहीं हो सकता।

❋ अब तक आशाधर का समय निरूपित करने का प्रयत्न बहुत कम पाया जाता है। बन्धुवर पं० बटुकनाथजी शर्म्मा ने इसका विवेचन त्रिवेणिका की भूमिका में उचित रीति से किया है। इस अंश के लिये उनके ही तर्कों का उपयोग किया गया है। इसके लिये लेखक उनका बहुत आभार मानता है। जिन्हें आशाधर के विषय में और बातें जानने की जिज्ञासा हो, वे उनका Introduction देखने का कष्ट उठावें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह तो हुई ऊपरी सीमा। अब इनके समय की निम्नतम सीमा के विषय में कुछ विचार करना चाहिए। इनके कोविदानन्द नामक ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति का काल शक सं० १७८३ (१८६१ ई०) दिया हुआ है। इनकी 'अलङ्कारदीपिका' की प्रति का समय १७७५ शक (१८५३ ई०) लिखा हुआ है, जिससे १९ वीं सदी में इनका प्रसिद्ध होना साफ तौर से जान पड़ता है। किसी लेखक के ग्रन्थों के लोक-प्रिय तथा प्रसिद्ध होने में एक शताब्दी या इससे कुछ अधिक समय अनुमान से माना जा सकता है। यदि यही मानें, तो कह सकते हैं कि आशाधर का समय १७ वीं सदी का अन्तिम काल अथवा १८ वीं सदी का आरम्भिक भाग होगा। इस अनुमान के लिये त्रिवेणिका में एक पर्याप्त प्रमाण भी है, जिसका यहाँ उल्लेख करना उचित जान पड़ता है। वैयाकरणों में नागेश भट्ट ने ही स्पष्ट शब्दों में व्यंजना की सत्ता स्वीकार की है*। उनके पहले वाले वैयाकरण तो उसे अभिधा के दीर्घ व्यापार के अन्तर्गत ही मानते थे। परन्तु नागोजी का कहना है कि निपातों का द्योतकत्व तथा स्फोट का व्यंग्यत्व स्वीकार करनेवाले पतं-जलि, भर्तृहरि आदि वैयाकरणों ने भी अस्पष्ट रूप से व्यंजना मानी है। वैयाकरणों के लिये व्यंजना का मानना अत्यावश्यक है—उसके बिना उनका काम चलना कठिन हो जायगा। अतएव नागेश ने स्पष्टतः व्यञ्जना को वृत्य-न्तर माना है। परन्तु आशाधर को इस मत का बिल्कुल पता नहीं। यदि ऐसा होता, तो वैयाकरणों के मत का खण्डन करके व्यञ्जना सिद्ध करने के लिये वे उद्योग ही न करते†। इस 'सिद्ध साधन' से लाभ ही क्या होता?

---

* अतएव निपातानां द्योतकत्वं स्फोटस्य व्यंग्यता च हर्यादिभिरुक्ता।
द्योतकत्वञ्च स्वसमभिव्याहृतपदनिष्ठशक्तिव्यञ्जकत्वमिति।
वैयाकरणानामप्येतत्स्वीकार आवश्यकः।
—परम लघुमञ्जूषा; पृ० २०,

† त्रिवेणिका; पृ० २७-२८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः कहना पड़ता है कि नागोजी के मत का आशाधर को कुछ भी पता नहीं था। नागेश का समय १७ वीं सदी का अन्त तथा १८ वीं का आरम्भ माना गया है। अतः हम कह सकते हैं कि कोण्ड भट्ट और नागोजी भट्ट के समय के बीच में आशाधर उत्पन्न हुए थे; अर्थात् आशाधर का समय अनुमानतः १७ वीं सदी का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

आशाधर के ग्रन्थ

पूर्वोक्त समय-निरूपण के अनन्तर इनके ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। इनके निम्नलिखित प्रकाशित या अप्रकाशित ग्रन्थों का उल्लेख पाया जाता है—

(१) कोविदानन्द
(२) त्रिवेणिका
(३) अलङ्कारदीपिका
(४) अद्वैतविवेक
(५) प्रभापटल

(१) कोविदानन्द

इस ग्रन्थ का उल्लेख 'त्रिवेणिका' में अनेक स्थलों पर आया है, जिससे ज्ञात होता है कि कोविदानन्द में 'वृत्ति' का विवेचन बड़े विस्तार के साथ किया गया था। त्रिवेणिका के पहले ही श्लोक के 'पुनः'† शब्द से जान पड़ता है कि कोविदानन्द में वृत्तियों का विशिष्ट वर्णन था, जिसका एक प्रकार का सारांश 'त्रिवेणिका' में उपस्थित किया गया है। इस अनुमान की पुष्टि भी यथेष्ट रीति से हो सकती है। डाक्टर भांडारकर ने 'कोविन्दानन्द'

† प्रणम्य पार्वतीपुत्रं कोविदानन्दकारिणा।
आशाधरेण क्रियते पुनर्वृत्तिविवेचना॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ का नामोल्लेख किया है†। उसके नीचे लिखे श्लोक से उपर्युक्त अनुमान को सर्वथा पुष्टि होती है—

प्राचां वाचां विचारेण शब्द-व्यापारनिर्णयम्।
करोमि कोविदानन्दं लक्ष्यलक्षणसंयुतम्॥

भांडारकर ने यह भी बता दिया है कि ग्रन्थकार की लिखी हुई 'कादम्बिनी' नाम की एक टीका भी इस पर है। यदि यह सटीक ग्रन्थ प्रकाशित हो जाय, तो सम्भवतः 'शब्दवृत्ति' विषयक ग्रन्थों में अत्युत्तम होगा†।

(२) त्रिवेणिका

त्रिवेणिका या शब्द-त्रिवेणिका आशाधर की महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसका उद्धार प्रिय बन्धुवर प्रोफेसर पं० वटुकनाथ शर्म्मा तथा पं० जगन्नाथ शास्त्री होशिंग ने अभी हाल में ही किया है। यह पुस्तक हाल में ही सरस्वती भवन से प्रकाशित होनेवाली Saraswati Bhavan Texts नामक संस्कृत ग्रन्थमाला में प्रकाशित की गई है। पं० वटुकनाथजी ने इस ग्रन्थ में एक अत्युत्तम महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना भी जोड़ने की दया की है, * जिसके कारण इस ग्रन्थ का महत्त्व और भी बढ़ गया है। डाक्टर औफ्रेक्ट ने इसे व्याकरण ग्रन्थ लिखा था, जिससे भ्रम में पड़कर अलङ्कार शास्त्र के इतिहास लिखनेवाले डाक्टर दे (Dr. S. K. De) तथा श्रीयुत काणे (P. V. Kane) ने इस ग्रन्थ का उल्लेख तक नहीं किया है। परन्तु है यह अलङ्कार-ग्रन्थ, जैसा कि इसके विषय-विवरण से स्पष्ट प्रतीत हो जायगा।

इस ग्रन्थ का नाम-करण भी बहुत ही उपयुक्त हुआ है। इसमें शब्द की अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना नामक तीनों वृत्तियों का समुचित वर्णन किया

† List of Sanskrit Mss. Part I. 1853, Bombay P. 68,

* See Introduction to Trivenika by Batuknath Sarma P 11.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुआ है। इस ग्रन्थ तथा प्रसिद्ध त्रिवेणी के साथ केवल संख्या-मात्र की ही समानता नहीं है, बल्कि यह सादृश्य कई अंशों में और भी सूक्ष्म है। अभिधा गङ्गा के समान है। जिस प्रकार प्रयाग में प्रधान स्थान भागीरथी को ही दिया जा सकता है, उसी प्रकार शब्द की वृत्तियों में अभिधा ही प्रधान है। यमुना जिस तरह गङ्गा के ही आश्रित रहती है, उसी प्रकार लक्षणा भी अपनी स्थिति के लिये अभिधा ही पर अवलम्बित है। सहृदय-हृदय-संवेद्य व्यंग्य अर्थों की प्रतिपादिका व्यञ्जना की समानता गुप्त सरस्वती के अतिरिक्त किसके साथ उचित रीति से की जा सकती है? जिस प्रकार इस पवित्र सङ्गम पर सरस्वती है अवश्य, परन्तु साधारणतया दृष्टिगोचर नहीं होती, उसी प्रकार व्यञ्जना भी रसिक मनुष्यों के द्वारा ही जानी जा सकती है। यह तो इस ग्रन्थ के नामकरण के विषय में हुआ। अब इसके विषय की ओर ध्यान दीजिए।

अपने नाम के अनुसार यह ग्रन्थ तीन परिच्छेदों में बाँटा गया है। प्रथम परिच्छेद में अभिधा का वर्णन बड़ी विशद रीति से किया गया है। सब से पहले ग्रन्थकार ने अर्थज्ञान को चारु, चारुतर तथा चारुतम भाग में विभक्त किया है। अभिधा-जन्य अर्थ चारु, लक्षणा से उत्पन्न चारुतर तथा व्यञ्जनागम्य चारुतम बतलाया गया है। शक्ति का लक्षण लिखकर उसे योग, रूढ़ि तथा योगरूढ़ि इन तीनों विभागों में उदाहरण के साथ विभक्त किया है। इसके अनन्तर उन साधनों का वर्णन किया है, जिनके द्वारा शक्ति का ग्रहण हुआ करता है। आशाधर ने शक्ति-ग्राहक साधनों के व्याकरण, कोश, निरुक्त, मुनिवचन, व्यवहार, व्याख्यान, वाक्यशेष, प्रसिद्ध अर्थवाले पद की सन्निधि तथा उपमान ये नव विभाग किए हैं। प्रसङ्गवश अनेकार्थक शब्दों का एक अर्थ में नियन्त्रण करनेवाले लिङ्ग, प्रकरण, फल आदि प्रसिद्ध साधनों का भी उल्लेख उचित रीति से किया गया है। उनके छोटे-छोटे उदाहरण भी इतनी कुश-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लता से समझाए गए हैं कि साधारण बालक भी भली-भाँति समझ जाय।

दूसरे परिच्छेद में लक्षणा का विस्तृत विवेचन उपस्थित किया गया है। प्रथमतः लक्षणा का लक्षण दिया गया है। इसके अनन्तर समस्त भेदों का उल्लेख एक साथ ही कर दिया गया है। जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, जहदजह-लक्षणा—निरूढ़ा, फलवती—गूढ़, अगूढ़, व्यधिकरणविषया, तथा समाना-धिकरण-विषया—गौणी, शुद्धा तथा इनके और भी उपभेदों का सोदाहरण विवेचन बहुत ही सन्तोषजनक है। इस परिच्छेद में प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थों से भी उदाहरण दिए गए हैं तथा वामन आदि आचार्यों के मत का भी उचित स्थान पर उल्लेख किया गया है। लक्षणा के प्रयोजक सम्बन्धों की सूक्ष्म विवेचना करके ग्रन्थकार ने अपनी सूक्ष्म विषयग्राहिणी बुद्धि का अच्छा परि-चय दिया है। यह परिच्छेद अन्य दोनों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण तथा आकार में भी बड़ा है। अन्त में ग्रन्थकार ने इन तीनों वृत्तियों के ग्राहक मनुष्यों में भी क्या ही अच्छा भेद प्रदर्शन कराया है—

शक्तिं भजन्ति सरला लक्षणां चतुरा जनाः।
व्यञ्जनां नर्ममर्मज्ञाः कवयः कमना जनाः।

अन्तिम प्रकरण में व्यञ्जना का विषय है। व्यञ्जना के लक्षण के अनन्तर उसके शक्तिमूलक तथा लक्षणामूलक भेदों का विवेचन उदाहरण के साथ उपयुक्त रीति से किया गया है। नैयायिकों ने अनुमान के अन्तर्गत व्यञ्जना मानने का जो प्रयास किया है, उसकी किंचित् सूचना देकर आशाधर ने इस मत का आलंकारिकों की शैली से खण्डन किया है। इसी प्रकार वैया-करणों के शक्ति के अन्तर्गत व्यञ्जना मानने के सिद्धान्त का भी खण्डन किया गया है। बस इस प्रकरण का यही सार है। व्यञ्जना-प्रकरण जितने अच्छे ढङ्ग से होना चाहिए, न तो उतने अच्छे ढङ्ग से दिया गया है, न व्यञ्जना-स्थापन या व्यञ्जना के भेद प्रभेदों का ही विशेष हाल है। सचमुच

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकरण से निराश होना पड़ता है। सब के अन्त में आशाधर ने 'प्रभा-पटल' से दो पद्य उद्धृत किए हैं, जो उनकी काव्य कला के अच्छे निदर्शन माने जा सकते हैं। वे पद्य नीचे दिए जाते हैं—

यदिह लिखतामव्युत्पत्त्या पतेल्लघु दूषणं
निपुणधिषणैरुज्झित्वा तत् कृतिर्मम सेव्यताम्।
सरसविमले वातक्षिप्तं निवार्य तु शैवलं
सलिलममृतप्रायं प्रायः पिबन्ति पिपासवः ॥१॥
यदि मम सरस्वत्यां कश्चित्कथञ्चन दूषणं
प्रलपति, तदा प्रौढप्रज्ञैः स किं कविभिः समः ?।
रघुपतिकुटुम्बिन्यां सत्यामवद्यमुदाहरन्
हतकरजकः साम्यं लेभे स किं सह राजभिः ॥२॥

'त्रिवेणिका' का जो सारांश दिया गया है, उससे पाठकों को इसके महत्त्व का पता अवश्य लग गया होगा। शब्दवृत्ति विषयक जितने ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, उन सब में यह ग्रन्थ उत्तम है। अलङ्कार शास्त्र पढ़नेवालों के लिये तो यह और भी उपयुक्त है। यदि आरम्भ में यह पढ़ा दिया जाय तो काव्य-प्रकाश आदि कठिन ग्रन्थों की सूक्ष्म विवेचना बालकों की समझ में सरलता से आने लगेगी।

(३) अलंकार दीपिका

आशाधर भट्ट का यह तीसरा ग्रन्थ एक प्रकार से त्रिवेणिका की पूर्ति करता है। इस ग्रन्थ के विषय-विवेचन को ठीक रीति से समझने के लिये इसके आधार-ग्रन्थ कुवलयानन्द की संक्षिप्त चर्चा करना अप्रासङ्गिक न होगा। ईसवी तेरहवीं सदी में जयदेव नामक पंडित ने अलङ्कार शास्त्रविषयक 'चन्द्रालोक' नामक अत्युत्तमग्रन्थ की रचना की इसमें अल्प परिमाण में ही अलङ्कार शास्त्र की ज्ञातव्य बातें एकत्र कर दी गई हैं। अलंकारों के लक्षण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा उदाहरण देते समय जयदेव ने एक ही पद्य में दोनों का समावेश कर पाठकों के लिये बहुत ही उपकार किया है। १७ वीं सदी में अप्पय दीक्षित ने इसी ग्रन्थ की सहायता से 'कुवलयानन्द' नामक एक लोकप्रिय ग्रन्थ की रचना की, जिसमें अर्थालङ्कारों के लक्षण तथा उदाहरण एक ही श्लोक में समाविष्ट करने के अतिरिक्त प्राचीन काव्य ग्रन्थों से तद्विषयक दृष्टान्त भी दिए गए हैं। स्थान-स्थान पर प्राचीन सिद्धान्तों का खंडन मंडन भी उचित रीति से किया गया है। अपने कथनानुसार ही*, अप्पय दीक्षित ने अनेक अर्थालङ्कारों को चन्द्रालोक से हू बहू अपने ग्रन्थ में उद्धृत कर लिया है। भाविकसन्धि, उदारसार आदि चन्द्रालोक के कतिपय अलङ्कारों को छोड़ दिया है; तथा बहुत से नवीन अलङ्कारों की उद्भावना कारिका के रूप में कर दी है। इस प्रकार १०० अलङ्कारों का वर्णन तो ठीक ढङ्ग पर कारिका के रूप में किया गया है; परन्तु अन्त में लगभग नवीन २४ अलङ्कारों का नाम निर्देश किया गया है। प्राचीन ग्रन्थों से उदाहरण भी दिये गये हैं; परन्तु उनके लक्षण तथा दृष्टान्त कारिकाओं में नहीं दिए गए हैं।

अब आशाधर के ग्रन्थ पर दृष्टिपात कीजिए। यह ग्रन्थ तीन प्रकरणों में समाप्त हुआ है। पहले प्रकरण में कुवलयानन्द में लिखित कारिकाओं की सरल रीति से व्याख्या की गई है। मूल ग्रन्थ के अलङ्कार-विषयक सूक्ष्म विवेचन बालकों के लिये अनुपयोगी समझ कर इसमें छोड़ दिए गए हैं— केवल मूल कारिका पर सरल व्याख्या ही दी गई है। आशाधर ने स्वयं ही इस प्रकरण के अन्त में इन कारिकाओं को अप्पय दीक्षित विरचित मूल कारिका बतलाया है।

दूसरे प्रकरण का नाम 'उद्दिष्टालङ्कार प्रकरण' है। कुवलयानन्द के अन्त

* येषां चन्द्रालोके दृश्यन्ते लक्ष्यलक्षणश्लोकाः।
प्रायस्त एव तेषामितरेषां त्वभिनवा विरच्यन्ते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में रसवत्, प्रेम आदि जिन अलंकारों के केवल नाम ही गिनाए गए हैं, उन पर आशाधर ने तदनुरूप ही कारिकाएँ बनाई हैं। इस प्रकरण के अन्त में† उन्होंने इसे स्पष्ट प्रकार से अपनी बतलाया है। इन कारिकाओं में ठीक कुवलयानन्द की शैली पर प्रथमार्द्ध में लक्षण तथा उत्तरार्द्ध में दृष्टांत उपस्थित किए गए हैं। पश्चात् इनकी समुचित व्याख्या भो की गई है।

तीसरा 'परिशेष प्रकरण' कहा गया है। इसमें संसृष्टि तथा सङ्कर अलङ्कार के पांच प्रकार के भेद सन्निविष्ट किए गए हैं। दूसरे प्रकरण के समान ही इस प्रकरण की समग्र कारिकाएँ आशाधर की खास अपनी रचना हैं‡। व्याख्या भो उसी रीति से ऐसी सुगमता से की गई है कि साधारण विद्यार्थी भी यथेष्ट लाभ उठा सकता है।

आशाधर ने ग्रन्थ का नाम 'कुवलयानन्दकारिका' तथा अपनी टीका का नाम 'अलङ्कारदीपिका' रखा है। ऊपर के वर्णन से पाठकों ने इसका संक्षिप्त परिचय अवश्य पा लिया। इसमें जितने अलङ्कार माने गए हैं, उतने सम्भवतः किसी अन्य अलङ्कार ग्रन्थ में नहीं हैं। अलङ्कारों की संख्या लगभग १२५ की है। अलङ्कार शास्त्र में प्रवेश करने के लिये—विशेषतः अलङ्कारों के लक्षण सुगमता से याद करने के लिये—यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकता है। परन्तु इसका जितना प्रचार अपेक्षित है, दुर्दैववश उतना इस समय नहीं है।

(४) अद्वैत विवेक

त्रिवेणिका के ११ वें पृष्ठ में इसका उल्लेख पाया जाता है। इस ग्रन्थ से एक पद्य भी उद्धृत किया गया है। यह ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला है। इसके नाम से अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः यह कोई वेदान्त ग्रन्थ होगा।

---

† आशाधरभट्ट कृतमुद्दिष्टनामकं द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम्।

‡ इति...आशाधरभट्ट विरचितं तृतीयं परिशेषप्रकरणं समाप्तम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(५) प्रभापटल

'प्रभापटल' का नाम अभी तक किसी को मालूम नहीं था। जहां तक जान पड़ता है, सब से पहले श्रीबटुकनाथजी शर्म्मा ने ही अपनी बृहत् भूमिका में इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ से हरिणी छन्द में दो पद्य त्रिवेणिका के अन्त में उद्धृत किए गए हैं। ये दोनों श्लोक इसी लेख में पहले दिए जा चुके हैं।

उपसंहार

आशाधर के समय और जीवन चरित के विषय में जो कुछ अभी तक ज्ञात हुआ है, वह निवेदन कर दिया है। इनके ग्रन्थों का भी संक्षिप्त परिचय ऊपर दे दिया है, जिससे पाठक इनसे स्थूलतः परिचित हो जायँ। स्पष्ट विदित होता है कि अलङ्कार शास्त्र को सर्व साधारण के लिये सुगम कर देने के ही विचार से प्रेरित होकर इन्होंने अपने अधिकांश ग्रन्थों की रचना की है। ग्रन्थों की उपादेयता के विषय में सन्देह करने की तनिक भी जगह नहीं है। जिस उद्देश्य को सामने रखकर इन प्रारम्भिक ग्रन्थों की रचना की गई है, लेखक की विनीत सम्मति में उसकी पूर्ति उचित मात्रा में हुई है। इस गए गुजरे समय में, जब कि पाठक प्राचीन आलङ्कारिकों को यथोचित समझने का कष्ट उठाना नहीं चाहते, इन पुस्तकों के पठन-पाठन से उचित लाभ उठाया जा सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१८] पाली रामायण
(दशरथ जातक)

मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र की गुण-गरिमा की मनोहर कहानो किसे नहीं भाती ? कौन ऐसा भारतीय है जो रामचन्द्र के अनुपम आदर्श पर लट्टू नहीं हो जाता ? जिसके मनोहर चरित को गाकर आदि-कवि वाल्मीकि को सुधामयी वाणी पवित्र हो गई, जिसके कीर्ति-कलाप की मनोहर आभा दशों दिशाओं में फैलाकर कवि कुल-गुरु कालिदास की रसवती कविता-कामिनी अपनी मनोहरता को धन्य समझती है, जिसके आदर्श चरित्र, आदर्श-मनुष्यत्व, आदर्श वात्सल्य और आदर्श पितृ-भक्ति की छाप सर्व-साधारण के हृत्पटल पर डालने के अभिप्राय से भवभूति की करुणामयी वाणी रामचरित को नाटक के रूप में दिखला कर अपने को कृतकार्य समझती है, भला कौन ऐसी जाति होगी, कौन ऐसा धर्म होगा जो रामचन्द्र के गुणानुवाद करने में अपनी प्रतिष्ठा न समझता हो। हिन्दुओं ने राम के आदर्श चरित्र के विमल सात्विक भाव से मुग्ध होकर इन्हें जगदीश का एक अनुपम अवतार माना है। इनके चरित्र को सर्व साधारण के लिएसुलभ करने के लिए महर्षि बाल्मीकि के समय से लेकर आजतक रामायण विषयक हजारों ग्रन्थों का निर्माण हो चुका है और भविष्य में भी ऐसा ही होता रहेगा। रामलीला के द्वारा हिन्दू समाज अशिक्षितों के भी श्रद्धालु हृदय पर असीम प्रभाव डालता है। कौन ऐसा भारतीय प्रान्त होगा, कौनसी प्रान्तीय भाषा होगी जिस में राम की विमल कीर्ति न गाई जाती हो ? जल सुदूर में मेकसिको को तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पेरु के आदिम निवासी आज भी बुरे धार्मिक युग में भी, दशहरे के अवसर पर उत्सव मना कर 'सीताराम' के पवित्र नामका याद दिलाते हैं तब भला आर्य-भूमि, राम की जन्मभूमि, इस भारतभूमि में राम का गुणानुवाद किया जाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? बुद्धधर्म तथा जैन मत के आचार्यों ने भी पवित्र रामचरित्र को अपनाने में तनिक भी उदासीनता नहीं दिखाई। बौद्ध मतावलम्बियों ने दशरथ जातक में रामचन्द्र के जीवनवृत्त को परिवर्तित करके तथा रामको बुद्ध-भगवान काही एक मनोहर अवतार मान कर उनके आदर्श सिद्धान्त को अपनाने में जरा भी सङ्कोच नहीं किया। हिन्दी पाठकों के समक्ष संक्षेप में, इसी 'दशरथ जातक' के अनुवाद तथा तद्विषयक ऐतिहासिक आलोचना की चर्चा की जायगी।

(१) जातक का काल

जातकों के विषय में इस स्थान पर कुछ लिखना अनुचित न होगा क्योंकि हिन्दी पाठक ज्यादातर इन विषयों से परिचित नहीं है। जातक बौद्ध त्रिपिटक के एक भाग खुद्दनिकाय में दिये गए हैं। इनकी संख्या ५४७ तक प्रहुंची हुई है। इनमें बुद्धभगवान के पूर्व जन्म में किये गये शुभ कार्यों का विशेष रूप से वर्णन है। प्रारम्भ प्रायः प्रत्येक जातक का कथानक एक ही सा है। वह भगवान बुद्ध के वर्तमान जीवन की किसी घटना से सम्बन्ध रखता है। भगवान अपने शिष्यों को धर्म के विषय में दया, संसार को अनित्यता, दान आदि का उपदेश देते हैं और इसे हृदयङ्गम कराने के लिए कोई प्राचीन कथा कहते हैं। अपने ही पूर्व जन्म में (जब कि वे बोधिसत्व थे) अनुभूत की गई घटना का वर्णन करते हैं। इन कथाओं का अभिप्राय धार्मिक सिद्धान्त को सुखपूर्वक हृदयङ्गम कराना है। अतएव इनमें किसी धार्मिक व्यक्ति का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रधान वर्णन है। अन्त में बुद्ध भगवान समझाते हैं कि यह धार्मिक व्यक्ति मैं ही था। इस प्रकार जातकों में बुद्ध के पूर्व जीवन के सत्कार्य उल्लिखित हैं।

जर्मन विद्वान् डा० बेनफी ने पञ्चतन्त्र की भूमिका में लिखा है कि समस्त भारतीय आख्यान-साहित्य बौद्धों से ही प्रारम्भ हुआ। पञ्चतन्त्र में बौद्ध सिद्धान्तों की इतनी झलक मिलती है कि इन्हीं के आधार पर बेनफी ने लिखा था कि वास्तव में पञ्चतन्त्र बौद्ध-साहित्य का ही एक अंश था। पीछे ब्राह्मणों ने इसे अपनाकर उसमें हिन्दू धर्म के सिद्धान्त भर दिये। परन्तु आज इस सिद्धान्त-वृक्ष को जड़ में स्वयं ही दीमक लग गया है। आख्यान-साहित्य के अपूर्व ज्ञाता जर्मन विद्वान् डाक्टर हर्टल (Hertel) ने अपनी खोजों से दिखलाया है कि पञ्चतन्त्र का मूलभूत ग्रन्थ 'तन्त्राख्यायिका' था जिस में बौद्ध सिद्धान्तों की छाया तक भी नहीं देख पड़ती। पीछे बौद्धों ने 'तन्त्राख्यायिका' के नए संस्कार किये जिसमें अपने धर्म के अनेक सिद्धान्तों को स्थान दिया।

जैनों ने भी ऐसे संस्करण निकाले।—विद्वानों की यह सम्मति है कि जातकों का आधार तत्कालीन ब्राह्मण आख्यान है। बौद्धों ने उसे अपने ढङ्ग पर ढाल लिया परन्तु नए रूप से ढाले जाने से मूल आख्यान में विषमता आ गई है। इससे उनके मूल आधार का पता स्वयं लग जाता है। डाक्टर हर्टल की यह सम्मति कई वर्षों के खोज का फल है। पाठक इसी से समझ सकते हैं कि संसारके आख्यान-साहित्य पर इन जातकों का क्या प्रभाव पड़ा है ? खास कर उस समय जब उन्हें यह सूचना दी जाय कि इसी पञ्चतन्त्र के अनुवाद पहले-पहल नौशेरवांने (५३१ ई०) पहलवी भाषा में कराया, जिसका अनुवाद सिरिक, अरेबिक, लैटिन तथा यूरुप को समस्त भाषाओं में हुआ और जिसके द्वारा पञ्चतन्त्र कहानी 'विपई की कथाओं' के नामसे यूरुप में आज भी विख्यात हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जातकों का समय लिख कर यह आवश्यक प्रस्तावना समाप्त की जायगी। ऊपर कहा जा चुका है कि जातक 'खुद्द निकाय' में दिये गये हैं। इस निकाय का समय अधिकतर ई० पूर्व पहले चौथी शताब्दी समझा जाता है। समय वास्तव में सत्य है। इसका पता भरहुत के स्तूप से लगता है। भरहुत के स्तूप पर अनेक जातकों के विषय चित्रित किये गये हैं। इन स्तूपों का समय तत्कालीन लेख सामग्री के आधार पर २५० बी० सी० से लेकर २०० तक नियत किया है। अतएव निश्चित है कि इस समय के बहुत पहले जातकों की रचना हो चुकी होगी। उस समय तीसरी सदीं में तो ऐसे प्रसिद्ध थे कि एक कारीगर भी उन्हें पत्थरों पर खींच सकता था। अतएव चौथी अथवा पाँचवी सदी ई० ५० जातककों का समय हो सकता है।

दशरथ जातक भी इन्हीं जातकों में अत्यन्त प्रसिद्ध जातक है। इसके विषय में पश्चिमी तथा पूर्वी विद्वानों में बड़ा वाद-विवाद हुआ था। रामायणीय कथा के विषय में इससे बड़ी सहायता मिलती है अतएव अब इसकी चर्चा प्रारम्भ की जाती है।

(२) पाली से अनुवाद

बहुत दिन हुए वाराणसी नगरी में दशरथ नामक राजा कुमार्ग को छोड़ कर धर्म से राज्य करता था। उसकी सोलह हजार रानियों में पटरानी ने दो पुत्र और एक कन्या को पैदा किया। ज्येष्ठ पुत्र का नाम रामपण्डित था छोटे का लक्ष्मण कुमार और लड़की का सीता था। कुछ दिनों के अनन्तर पटरानी मर गई। उसकी मृत्यु से राजा बहुत दिनों तक शोक-सागर में डूबा रहा, परन्तु मंत्रियों के समझाने पर उसकी चिन्ता छोड़ दूसरी रानी को अग्र महिषी के उन्नत पद पर नियुक्त किया। यह राजा की हृदयहारिणी थी। कुछ दिनों के बाद उसने गर्भ धारण कर पुत्र पैदा किया। उसका नाम 'भरत'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रखा गया। राजा ने उससे कहा—"हे भद्रे, मैं वर देता हूं इसे स्वीकार करो। उसने राज प्रतिज्ञा करा के लड़के के छठें वर्ष में राजा से यही कहा—'देव तुमने मेरे पुत्र को वर दिया था, इस समय उसे हमें दो"। राजा ने कहा, "लो मैं तैयार हूं।" रानी ने कहा? मेरे पुत्र को राज्य दीजिये।" राजा ने प्रतिज्ञा भूल कर रानी को डरवाया—"हे प्यारी, ऐसा न होगा, मेरे दो पुत्र अग्निस्कन्ध की तरह जलते हैं (चमकते हैं), उन्हें मरवा कर तुम अपने पुत्र के लिए राज्य माँग रही हो। रानी डर कर महलों में चली गई परन्तु दूसरे दिन राजा से बारम्बार राज्य ही माँगा। राजा ने उसे वर न देकर सोचा.—'कृतघ्न तथा मित्र का द्रोह करने वाला पुरुष स्त्रियों की तरह है। सम्भव है कि यह मेरी ओर से कूट पत्र लिखवा कर या छिपे-छिपे घूस देकर मेरे पुत्रों को मरवा डाले'। अतः उसने पुत्रों को बुलवा कर वह बात कही, "हे तात, यदि तुम यहाँ रहोगे तो विघ्न की सम्भावना है अतएव सामन्त राज्य या अरण्य में जाकर मेरी मृत्यु के मौके पर आना और सम्पूर्ण राज्य लेना।" इतना कह राजा ने ज्योतिषियों को बुलवा कर अपनी मृत्यु के विषय में पूछा। उन्होंने कहा कि आप बारह वर्ष और जीयेंगे। यह न कर राजा ने कहा, "हे वत्स, बारह वर्ष के बीतने पर यहाँ आ जाना और राज्य भोग करना। पिता के कथन को स्वीकार कर वे दोनों लड़के रोते हुए महल से नीचे उतरे। सीतादेवी—"मैं भी भाइयों के साथ जङ्गल में जाऊँगी" ऐसा कहती हुई पिता को प्रणाम कर रोती हुई घर से निकली। वे तीनों बहुत नौकरों के साथ निकले परन्तु नौकरों को लौटा कर पूर्व की ओर हिमालय में गये। वहाँ पर फल-फूल सुलभता से मिल सकता था और जल भी खूब था, ऐसे स्थान पर आश्रम बना कर विविध फलों से समय बिताते हुए ठहरे। लक्ष्मण पण्डित और सीता ने राम से यह प्रार्थना की कि आप हमारे पितृ-स्थानीय हैं, अतएव आप आश्रम में ही ठहरिये हम जङ्गली फल लाकर आप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को देंगे। उन्हें भेजकर राम पण्डित उसी जगह रहते थे। और दोनों फल लाकर उन्हें देते थे। इस तरह जब वे फलों को खाकर समय बिताते थे तभी नौवें वर्ष में महाराज दशरथ पुत्र शोक से मर गये। उनके शरीर—कृत्य को समाप्त कर देवी ने अपने पुत्र भरत को सिंहासन पर बैठने के लिए कहा।

परन्तु मन्त्रियों ने 'राज्य के स्वामी तो जङ्गल में है, ऐसा कह कर भरत को गद्दी नहीं दी। अपने भाई राम पण्डित को जङ्गल से लाकर मैं सिंहासन दूँगा, ऐसा विचार कर भरत ने चतुरङ्गिनी सेना के साथ उनके निवासस्थान के नजदीक पड़ाव डाल कर और कुछ मन्त्रियों को साथ लेकर आश्रम में गये। उस समय लक्ष्मण और सीता जङ्गल में फल लाने के लिए गये थे। आश्रम के द्वार पर सुन्दर सुवर्णकान्ति वाले निडर राम को सुख से बैठे देख कर भरत ने उन्हें प्रणाम किया। शीघ्र ही राजा के दुःखद समाचार सुनाकर मन्त्रियों के साथ उनके पैरों पर गिर पड़े। राम पण्डित ने न तो शोक मनाया और न वे रोये ही। उसको इन्द्रियों में कुछ भी विकार नहीं उत्पन्न हुआ। जब सन्ध्या हुई तब लक्ष्मण और सीता फल लेकर जङ्गल से लौटे। राम ने सोचा कि ये अभी नौजवान हैं, मेरी तरह इन्हें समझने की शक्ति नहीं है। अतएव यदि पिता के मरने की खबर सहसा सुना दी जायगी तो सम्भव है कि शोक के मारे इनका हृदय फट जाय। अतएव किसी उपाय से इन्हें जल में उतरवा कर यह ख़बर दूँगा। उनके सामने एक जलाशय दिखला कर कहा कि तुम आज बड़ी देर करके आये हो। मैं तुम्हें दण्ड दूँगा। इस जल में घुस कर तुम कुछ देर तक ठहरो। यह कह कर उन्हें यह आधी गाथा सुनाई "हे लक्ष्मण और सीता, आओ इस जल में पैठो"। वे वचन सुनते ही जल में घुसे, तब राम ने उन्हें खबर सुना कर गाथा के शेष अंश को समाप्त किया, 'भरत ने कहा है कि राजा दशरथ मर गये'।

वे पिता के मरने की ख़बर सुन कर अचेत हो गये। फिर रामने ख़बर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दी जिससे वे फिर भी अचेत हो गये। इस तरह बारम्बार मूर्च्छित होने वाले इन दोनों को मन्त्रियों ने जलके बाहर निकाला। जब इनकी सांस चलने लगी तब आपस में शोक मनाने लगे। तब कुमार भरत ने सोचा कि मेरा भाई लक्ष्मण और बहन सीता तो पिता की मृत्यु सुन कर ही शोक के सहने में असमर्थ हुए। परन्तु राम पण्डित न तो शोक करते हैं, न सोचते हैं; उनकी उदासीनता का कारण क्या हो सकता है मैं इन से पूछूँगा। यह सोच भरत ने यह गाथा कही,—"हे राम, किस प्रभाव से तुम इस शोचनीय घटना से शोकयुक्त नहीं होते? पिता की मृत्यु सुनकर भी क्यों तुम्हें दुःख नहीं होता?"

तब राम पण्डित ने कतिपय गाथाओं से संसार की अनित्यता सिद्ध की। उन्होंने कहा—

"जिसे हम किसी भी उपाय से बचाने में असमर्थ हैं उसके लिए मेधावी पुरुष अपनी आत्मा को व्यर्थ में सन्ताप क्यों पहुँचावे?

"जवान हों या बुड्ढे, बालक हों या पंडित, धनी हों या ग़रीब-सब पुरुष मौत के मुख में जाने वाले हैं। जिस प्रकार पके हुए फलों को गिरने से सदा भय बना रहता है इसी भाँति उत्पन्न हुए मनुष्य को मृत्यु से हमेशा भय विद्यमान रहता है।

"अनेक लोग जो सबेरे दिखाई पड़ते हैं, सायंकालसे नहीं दीखते। बहुत लोग जो सायंकाल देखे गये, प्रातःकाल नष्ट हो जाते हैं।

"यदि शोक करने से कुछ भी मतलब सिद्ध होता हो, तो विद्वान् अपने शरीर को नष्ट करता हुआ शोक करे। पर वास्तव में शोक से कुछ भी लाभ नहीं होता। मनुष्य जब अपने शरीर को नष्ट करने लगता है, तब स्वयं कृश हो जाता है, उसका चेहरा पीला पड़ जाता है, उसे कोई चीज़ भी नहीं मिलती। अतः शोक करना व्यर्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"धीर मनुष्य उड़ी हुई रुई को हवा की तरह उत्पन्न शोक को नष्ट कर दे।

"अकेला ही मनुष्य संसार में पैदा होता है और अकेला ही छोड़ता है। केवल सम्भोग के लिए ही मनुष्यों का एक दूसरे से संयोग होता है।

"इस प्रकार इस लोक तथा परलोक देखने वाले बहुश्रुत धीर पुरुष के धर्म को, हृदय को तथा मन को बड़े-बड़े भी शोक सन्ताप-युक्त नहीं कर सकते।"

राम पण्डित के अनित्यता-प्रकाशक इस धर्मोपदेश को सुन कर सब किसी का शोक जाता रहा। तब भरत कुमार ने राम पण्डित को प्रणाम कर वाराणसी का राज्य करने को कहा। राम ने कहा कि मेरे पिता ने हमें बारह वर्ष के बाद आनेको कहा था। अभी तीन वर्ष बाक़ी हैं, यदि इस समय वाराणसी जाऊँ तो मैं पिता की आज्ञा का पालने वाला नहीं हो सकता। भरत ने पूछा कि तो इतने दिनों तक राज्य कौन करे। राम ने यह कह कर कि तब तक मेरी यह पादुका ही राज करेगी तृण की अपनी पादुका दे दी। वे तीनों लोग पादुका को लेकर घर लौटे। तीन वर्षों तक पादुका ने राज किया। अमात्य राजसिंहासन पर तृण-पादुका रख कर निर्णय किया करते थे। यदि निर्णय ठीक नहीं होता था, तो पादुकाएँ आपस में टकराने लगतीं, तब वे लोग फिर से निर्णय करते थे। यदि निर्णय ठीक होता, तो पादुका चुप रहतीं। राम पण्डित तीन वर्षों के बाद जङ्गल छोड़ कर वाराणसी में आये। उनका आना जान कर दोनों मन्त्रियोंके साथ भरत उनसे बगीचे में मिले और सीता को पटरानी बनाकर राम का अभिषेक किया। अभिषेक हो जाने पर राम अलंकृत रथ पर सवार होकर नगर को प्रदक्षिणा करते हुये 'सुचन्दक' महल में आये। राम ने सोलह हजार वर्षों तक धर्म से राज्य कर स्वर्ग पाया।

कम्बग्रीव महाबाहु राम ने सोलह हजार वर्ष तक राज्य किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) विवेचना

दशरथ जातक के विषय में बहुत वाद विवाद हुआ है—बड़ी छान बीन की गई है। सब से पहिले जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर बेवर ने दशरथ जातक को रामायणीय कथा के इतिहास के लिए अत्यन्त महत्त्व दिया। उनको यह सम्मति थी कि दशरथ जातक की राम-कथा अत्यन्त प्राचीन है—वह वाल्मीकीय रामायण से भी पुरातन है। जातक की कहानी में सीता राम की बहिन है जिससे अन्त में राम का विवाह होता है। भाई और बहिन की शादी अत्यन्त प्राचीन समाज की लुप्तप्राय प्रथा को सूचित करती है। यह प्रथा आगे चल कर बिल्कुल ही लुप्त हो गई; परन्तु प्रत्येक जाति के प्राचीनतम इतिहास में इस प्रथा की सत्ता के विषय में अनेक प्रमाण हैं। अतएव दशरथ जातक के राम पण्डित ही वास्तव में रामायणीय कथा के मूल–पात्र हैं। जब वाल्मीकि रामायणमें राम-कथा लिखी गई तब इस प्रथा का नामो निशान भी न था। अतः जातक रामायण से पहले का जान पड़ता है। बेवर ने एक और भ्रान्त सिद्धान्त निकाला था। वह यह था कि जातक की मूल=भूत राम-कथा में सीताहरण और लङ्का विजय की घटनाओं का कहीं उल्लेख नहीं है। अतएव ग्रीस देशीय महाकवि होमर के इलियड नामक महाकाव्य का अनुकरण कर वाल्मीकि ने इन दोनों घटनाओं को पीछेसे जोड़ दिया है। अर्थात सीताहरण और लङ्का विजय होमर के काव्य (जिस में हेलन का पेरिस के हाथों हरण किया जाना और ट्राय पर विजय पाना महत्व–शालिनी घटनायें हैं) से लिए गये हैं। इनकी उत्पति भारतीयों के मस्तिष्क से कदापि नहीं हुई। जिस समय इस सिद्धान्त का प्रचार हुआ था उस समय विद्वानों में एक कोलाहल मच गया था। जस्टिस काशीनाथ तैलङ्ग ने 'Is Ramayan copied from Homer' नामक लेख लिखकर इसका मुँहतोड़ जवाब दिया। पीछे से चिन्तामणि वैद्य ने भी अपने रामायण रहस्य 'Riddle

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

of Ramayan' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ में इसका खण्डन किया। अब तो यह सिद्धान्त—रामायण पर होमर का प्रभाव—बिल्कुल ही भ्रान्त माना जाता है।

राम-कथा के विकास का भी इतिहास पूरी तौर से लिखा जा सकता है। ऐसे अनेक प्रमाण हैं, जिससे विभिन्न राम कथाओं के क्रम का निर्णय भली भाँति किया जा सकता है। यद्यपि राम-कथा का प्रादुर्भाव महर्षि वाल्मीकि के ही अलौकिक काव्यरत्न से हुआ, तथापि परवर्ती ग्रन्थकारों ने राम को विष्णु भगवान् के साक्षात् अवतार माने जाने के कारण उनके जीवन चरित में अनेक आश्चर्यमय परिवर्तन कर डाला। इन परिवर्तनों के विषय में कुछ कहने के लिए यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं है परन्तु क्रमबद्ध इतिहास जानने की आवश्यक कुञ्जी को यहाँ बताना सर्वथा उचित है। वह कुंजी है—कथामें अलौकिकता का पुट। जिस रामायण कथा में जितनी ही आश्चर्यमयी, कृत्रिमतापूर्ण घटनाओं का वर्णन अधिक होगा, वे उतनी ही आधुनिक होंगी। और जिसमें स्वभाविकता की मात्रा होगी वह प्राचीन होगी। रामायणीय विद्वान् इस सिद्धान्त से सर्वथा सहमत हैं। इसी जाँच के मूल नियम का उपयोग यहाँ किया जाय तो स्पष्ट मालूम हो जायगा कि जातक की कहानी कुछ पीछे की ही होगी। ऊपर वर्णन आया है कि अधिक शोक के अशोचनीय दुष्परिणाम के भय से राम पण्डित ने लक्ष्मण कुमार तथा सीता को पानी में उतरवा कर पितृमरण के दुःखद समाचार सुनाये। सुनते ही उन्हें मूर्छा आ गई। शीतल जल की सहायता से कहीं उनकी मूर्छा छूटी। इस प्रकार की आश्चर्यमयी घटना का विशेष प्रयोजन है जो आगे दिखाया जायगा। परन्तु इतना निश्चित है कि इस प्रकार अस्वाभाविक घटना के उल्लेख करने से जातक वाल्मीकि रामायण से (जिस में इस घटना का कही सङ्केत नहीं है) सर्वथा पीछे का जान पड़ता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जातक में ऐसी घटनाएँ उल्लिखित हैं जो सर्वथा एक दूसरे के विरुद्ध हैं। राम और लक्ष्मणके लिए महाराज दशरथका उद्वेग सर्वथा प्रशंसनीय तथा समुचित है। अतएव यदि ये जङ्गल में कैकेयी के कपट व्यवहार की आशङ्का से भेजे जांय तो यह बिल्कुल ठीक है। परन्तु कुमारी सीता को जिसके लिए कुछ भी राजनैतिक आशङ्का नहीं हो सकती, बन में कई वर्षों के लिए भेजना बिल्कुल असम्बद्ध है। एक युवति कुलीन कन्या को अपने भाई के साथ १३ वर्ष जङ्गलों में बिताना बिल्कुल बुरा है। सीता को राम की बहिन तथा पत्नी मानने का कारण आगे बतलाया जायगा परन्तु सीता को बन में भेजना बिल्कुल ही ठीक नहीं जँचता। परन्तु वाल्मीकि रामायणमें यह घटना बिल्कुल न्यायसङ्गत है। सीता राम की व्याही स्त्री हैं। आर्य महिला पति के दुःख में उसका साथ कभी भी नहीं छोड़ सकतीं। अतएव पतिप्राणा व्याही सोता का राम का सहगमन बिल्कुल ही ठीक है। परन्तु जातक को कहानी में यह घटना असम्बद्धता के पंजे से कभी नहीं निकल सकती अब ज़रा दूसरी घटना पर दृष्टिपात कीजिये। जिस में असम्बद्धता स्पष्टरूप में दीख पड़ती है। वह है जङ्गल में वास करने के समय का नियत करना। राम को बनवास देते समय दशरथ ने कहा मेरी मृत्यु के अनन्तर आना। बस लौट आने की इतनी ही आज्ञा थी। दशरथ ने अपने शेष जीवन वर्षों के विषय में दैवज्ञ से पूछा। ज्योतिषी महोदय के कहने पर १२ वर्ष ही जङ्गलमें निवास की अवधि ठहराई गई। परन्तु अचानक महाराज पुत्रशोक से विह्वल होकर मर गये। उन्होंने राम से लौट जाने की अनेक प्रार्थना की। बारहवें वर्ष में ही लौटने के लिए राज़ी थे, इसे ही उन्होंने पिता की आज्ञा का पालन समझा। घटनायें बिल्कुल असम्बद्ध हैं। महाराज का स्नेह कैसा अनोखा दिखाया गया है। जब पुत्र को बनवास दिया तब आप मजे में सुख भोग करते थे परन्तु नवें वर्ष में शोक का प्रवाह इतना उमड़ आया कि उन्हें ले बीता। और देखिये दशरथ को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आज्ञा तो इतनी ही थी कि मेरी मृत्यु हो जाने पर लौट आना। जब दशरथ की मृत्यु सचमुच हो गई, तब राम पण्डित का वन से न लौटने का कारण मुझे तो कुछ भी नहीं जान पड़ता। ज्योतिषी ने केवल अनुमान से १२ वर्ष बतलाया था, परन्तु जब प्रत्यक्ष से अनुमान की असत्यता सिद्ध कर दी-जब वास्तविक मृत्यु ने ज्योतिषी की कल्पना को झूठा ठहरा दिया, तब राम का न लौटना बिल्कुल ही ठीक नहीं! उस समय तो राम के लिए वन से लौट आकर राज्य कार्य करने में ही पिता की आज्ञा का पूरा पालन हो सकता था। परन्तु जो जातक ऐसी असम्बद्ध घटनाओं का वर्णन करता है उसकी कथा स्वभाविक मूल कहानी नहीं हो सकती; इस के विपरीत वाल्मीकीय राम-कथा बिल्कुल सम्बद्ध और स्वाभाविक है, अतएव जातक को प्राचीन मानना नितान्त अनुचित है।

एक प्रमाण और लीजिये। जातक के अन्त में जो पाली गाथा दी गई है वह भी तो रामायण के एक संस्कृत श्लोक का पाली बनाया गया रूप है। वह गाथा यों है :—

दस वस्स सहस्सानि सट्ठि वस्ससतानि च ॥
कम्बुग्गीवो महाबाहु रामो रज्जमकारयीति ॥

इसका मूलभूत संस्कृत श्लोक यों है :—

दश वर्ष सहस्राणि षष्टिवर्ष-शतानि च।
कम्बुग्रीवो महाबाहू रामो राज्यमचीकरत् ॥

कहने का तात्पर्य यही है कि जातक की कथा वाल्मीकि रामायण से पहले की हो नहीं सकती।

सच पूछा जाय तो राम के आदर्श जीवनकी बौद्धों ने अपनाया है। समय,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देश, पात्र, आदि उपचार से मूल राम-कथा में उचित परिवर्तन दिये गये हैं। बौद्ध-इतिहास से जिन्हें कुछ परिचय होगा वे अवश्य जानते होंगे कि शाक्य के पूर्वज इक्ष्वाकुवंशीय थे जो अयोध्या से भाई वहिनों के साथ निकाल दिये गये थे। अन्य के न मिलने पर भाइयों ने बहिनों से शादी कर कुल चलाया। वस इसी कारण सीता राम की वहिन वतलाई गई। प्राचीन सम्प्रदाय की रक्षा के लिए यह परिवर्तन किया गया है। जातक-परम्परा की रक्षा के लिए महाराज दशरथ को राजधानी अयोध्या से हटा कर काशी में लाई गई है। राम सीता का वनवास दक्षिण के दण्डकारण्य में न होकर बौद्ध सम्प्रदाय के अनुसार हिमालय की तराई में--जहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था और जहाँ समग्र बौद्ध साहित्य के ऋषिगण तपस्या किया करते थे--दिखलाया गया है। ऊपर कहा गया है कि जातक में प्राचीन कथा के पात्र तथा काल का हिसाब बिल्कुल वदल दिया गया है। दशरथ जातक इसका उज्ज्वल प्रमाण है। वुद्ध भगवान पिता की मृत्यु से व्याकुल कुटुम्ब को सान्त्वना दे रहे हैं। अतएव वे ऐसे प्राचीन उदाहरण उपस्थित करते हैं जिस में पुत्र ने असीम यातना को सहकर भी शोक नहीं मनाया। जातक में राम पिता की मृत्यु से तनिक भी विह्वल नहीं हुए। बस, इस काल के औचित्य के विचार से रामायण का केवल एक अंश यहाँ कहा गया—शेष अंश (सीताहरण तथा लङ्का विजय) बिल्कुल छोड़ दिया गया है। महाभारत में भी ऐसा ही परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। द्रौपदी के हरण के साथ किसी ऋषि ने पाण्डवों में जोश पैदा करने के वास्ते सीताहरण तथा राम के अद्भुत उद्योग की कहानी सुनाई थी। वाल तथा अयोध्या काण्डों की कथा छोड़ दी थी। संक्षेप करने में ऐसा ही होता है; मतलब की बात ले ली जाती है और सब छोड़ दिया जाता है। ढाढ़स बधाने के लिए ही लक्ष्मण के मूर्छित होने तथा जल की सहायता से मूर्च्छा भङ्ग की घटनाएँ उल्लिखित हैं। अतएव हमारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आलोचना यही बतलाती है कि दशरथ जातक रामायण से लिया गया है। परन्तु अपने अभिप्राय से कुछ अंशों में परिवर्तन कर दिया गया है और कुछ अंशों को बिल्कुल छोड़ दिया गया है। जातक में कोई ऐसी बात नहीं जो इसे वाल्मीकीय रामायण से प्राचीन सिद्ध करे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१६) वाल्मीकि और उनके प्राकृत सूत्र

जो विद्वान् प्राकृत भाषा और साहित्य से कुछ भी परिचित हैं, उनको यह बताने की आवश्यकता नहीं कि संस्कृत व्याकरण के शास्त्रीय ढङ्ग पर लिखे हुए प्राकृत के एक दो नहीं बल्कि अनेक व्याकरण वर्तमान हैं। पहले पहल उपलभ्य व्याकरणों में भरत-कृत नाट्य-शास्त्र में संक्षिप्त रूप से दिए हुए प्राकृत व्याकरण का नाम लिया जाना चाहिए*। किन्तु उपलब्ध पाठ इतना थोड़ा और भ्रष्ट है कि उसका उपयोग करना अभी सम्भव नहीं है। इसलिये प्राकृत व्याकरणों में वररुचि ही सब से प्रथम तथा श्रेष्ठ समझे जाते हैं। यद्यपि इनके बाद अनेक आचार्यों ने बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे, पर इनकी कीर्ति उसी तरह अक्षुण्ण चली आती है।

किन्तु प्राकृत व्याकरणों का यदि ऐतिहासिक ढंग से विचार किया जाय, तो ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी बड़े महत्व की मालूम पड़ती हैं। इन शताब्दियों में बड़े-बड़े आचार्यों ने अनेक प्रकार से विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे। इन सब में जैनाचार्य हेमचन्द्र का स्थान बहुत ऊँचा है। इन्होंने पाणिनि का अनुकरण करते हुए आठ अध्यायों का वृहत् व्याकरण लिखा। इस व्याकरण के आखिरी अध्याय में इन्होंने प्राकृत भाषाओं का भी विशद रूप से वर्णन किया है। यह व्याकरण जैनों में बहुत प्रसिद्ध रहा है। इन्हीं के सूत्रों से मिलते हुए सूत्र अन्य कई प्राकृत व्याकरणों में भी पाए जाते हैं।

इन ग्रन्थों में तीन ग्रन्थ ऐसे हैं जिनके सूत्र अविकल वही के वही हैं। सूत्रों की व्याख्या भिन्न-भिन्न ढङ्ग और भिन्न-भिन्न क्रम से की गई

* भारतीय नाट्यशास्त्र, अध्याय १७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं, इसलिये सूत्रों के एक रहने पर भी ये ग्रन्थ एक दूसरे से बिल्कुल विभिन्न से हो गए हैं। इन ग्रन्थों में से सब से प्रथम त्रिविक्रम का प्राकृत व्याकरण है। यह ग्रन्थ इस समय दुर्लभ सा हो रहा है। यह विजिगापट्टम से निकलने वाली ग्रन्थ प्रदर्शिनी सीरीज में प्रकाशित होना शुरू हुआ था। किन्तु इस समय उसका कुछ पता नहीं लगता। हस्तलिखित प्रतियाँ कई पुस्तकालयों में वर्तमान हैं। स्वर्गीय डाक्टर लड्डू इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि अपने हाथ से करके जर्मनी से लाए थे। यह प्रतिलिपि उनकी मृत्यु के बाद काशी में नीलाम हुई थी। अब वह कहाँ तथा किसके पास है ? इसका पता नहीं। त्रिविक्रम का ठीक-ठीक समय निर्दिष्ट करना कठिन है। इतना ही कहा जा सकता है कि ये १२ वीं शताब्दी में होनेवाले हेमचन्द्र के अनन्तर और मल्लिनाथ के पुत्र कुमारस्वामी के पूर्व हुए। अतः ये वैक्रमी तेरहवीं शताब्दी के आसपास के किसी समय में हुए होंगे।

इनका व्याकरण अन्य व्याकरणों से कहीं बड़ा है। उसमें १०८५ सूत्रों पर बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण ढङ्ग से विशद टीका लिखी गई है। यह व्याकरण किसी समय बड़े ही आदर की दृष्टि से देखा जाता था। 'षड्भाषा चन्द्रिका' के लिखनेवाले लक्ष्मीधर स्वयं बहुत उच्च कोटि के विद्वान् थे। वे अपने ग्रन्थारम्भ में यों लिखते हैं—

"वृत्तिं त्रैविक्रमीं गूढ़ां व्याचिख्यासन्ति ये बुधाः।
षड्भाषाचन्द्रिका तैस्तत् व्याख्यारूपा विलोक्यताम्" ॥

अर्थात्—जो विद्वान् त्रिविक्रम की गूढ़ वृत्ति को समझना और समझाना चाहते हों, वे उसकी व्याख्यारूप इस षड्भाषाचन्द्रिका को देखें।

त्रिविक्रम ने अपने ग्रन्थ में सूत्रों के क्रम से व्याख्या की है। इनकी यह टीका पाणिनीय अष्टाध्यायी की टीका काशिका वृत्ति के ढङ्ग की है।

इनके बाद पूर्वोल्लिखित लक्ष्मीधर का नाम आता है। लक्ष्मीधर का भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठीक समय निर्दिष्ट करना दुष्कर है। इतना ही कहा जा सकता है कि वे त्रिविक्रम के अनन्तर और अप्पयदीक्षित के पूर्व हुए। अप्पयदीक्षित ने अपने 'प्राकृत-मणिदीप' में अन्यों के साथ इनका भी नाम दिया है।

लक्ष्मीधर ने भी उन्हीं १०८५ सूत्रों पर टीका लिखी है; किन्तु इस व्याख्या का क्रम त्रिविक्रम की व्याख्या का—अर्थात् सूत्रों का—क्रम नहीं है। इनकी व्याख्या विषय-क्रम से की गई है। इनके ग्रन्थ की तुलना भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी से की जा सकती है। इस ग्रन्थ का सम्पादन पण्डित कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी ने किया है और प्रकाशन बॉम्बे संस्कृत सीरीज में हुआ है। इस मण्डल के तीसरे व्यक्ति सिंहराज हैं। सिंहराज का समय भी पूर्वोक्त ढङ्ग से साधारण तरह से ही निश्चित किया जा सकता है। हुल्श महाशय का कहना है कि इनके ग्रन्थ में भट्टोजि की सिद्धान्तकौमुदी और नागोजि भट्ट के परिभाषेन्दुशेखर से उद्धरण मिलते हैं। यदि यह बात ठीक हो, तो वे दो अढ़ाई शतक से पुराने नहीं माने जा सकते।

इनके ग्रन्थ का नाम है—प्राकृतरूपावतार। इस ग्रन्थ में भी उन्हीं पूर्वोक्त सूत्रों पर लक्ष्मीधर की तरह विषय-क्रम से व्याख्या लिखी गई है। यह व्याख्या पूरे १०८५ सूत्रों पर नहीं की गई है। इन सूत्रों में से केवल ५७५ सूत्र चुन लिए गए हैं और उन पर संक्षेप से टीका लिखी गई है। यह ग्रन्थ एक तरह से लक्ष्मीधर की षड्भाषाचन्द्रिका का संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है। इसकी तुलना वरदराज की मध्यकौमुदी या लघुकौमुदी से हो सकती है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डाक्टर हुल्श ने तथा प्रकाशन विलायत की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने किया है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट ही है कि इन तीनों ग्रन्थों में जिन सूत्रों पर व्याख्या लिखी गई है, वे बिल्कुल वही हैं। यहाँ अब यह प्रश्न उठता है कि ये प्राकृत व्याकरण के सूत्र किस के और कब के बनाए हुए हैं। इस प्रश्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर बहुत कुछ वाद-विवाद हो चुका है, जिसका सारांश नीचे दिया जाता है।

श्रीयुक्त भट्टनाथ स्वामी ने इण्डियन एण्टिक्वेरी के ४० वें भाग (१९११ ई०) में Trivikrama and his followers नामक एक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखा है। उसमें उन्होंने बहुत सी युक्तियों द्वारा यह प्रमाणित करना चाहा है कि इन सूत्रों के निर्माता त्रिविक्रम ही हैं। त्रिविक्रम विरचित ग्रन्थ के आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक भी मिलते हैं—

प्रकृतेः संस्कृतात् साध्यमानात् सिद्धाच्च यद् भवेत्।
प्राकृतस्यास्य लक्ष्यानुरोधि लक्ष्म प्रचक्ष्महे॥
प्राकृतपदार्थसार्थप्राप्त्यै निजसूत्रमार्गमनुजिगमिषताम्।
वृत्तिर्यथार्थसिध्यै त्रिविक्रमेणागमक्रमात् क्रियते॥

ग्रन्थ के अन्त में यह श्लोक मिलता है—

सप्रत्यय प्रकृतिसिद्धिमदीर्घसूत्र—
सत्कारकं बहुविधिक्रियमाणदेश्यम्।
शब्दानुशासनमिदं प्रगुणप्रयोगं
त्रैविक्रमं जपत मन्त्रमिवार्थसिद्धयै॥

पहले श्लोक का आशय यह है—संस्कृत से पूर्वसिद्ध या सिद्ध होने वाले जो प्राकृत शब्द हैं, लक्ष्य के अनुसार उनके लक्षण हम कहते हैं।

भट्टनाथ स्वामी का कहना है कि यहाँ आया हुआ 'प्रचक्ष्महे' शब्द और 'देश्यमार्षम्' इत्यादि श्लोक में प्रयुक्त 'प्रचक्ष्महे' शब्द से स्पष्ट मालूम होता है कि इन सूत्रों के रचयिता त्रिविक्रम ही थे।

दूसरे श्लोक का तात्पर्य है—अपने सूत्र के मार्ग पर चलने की इच्छा रखनेवालों के प्राकृत समझने के लिये आगम के क्रम से त्रिविक्रम यह वृत्ति बनाते हैं।

इस श्लोक को लेकर भट्टनाथ स्वामी ने यह प्रमाणित करना चाहा है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कि इन सूत्रों के रचयिता त्रिविक्रम ही हैं। उनका कहना है कि इस श्लोक में आए हुए 'निज' शब्द का त्रिविक्रम को द्योतन करने के अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं हो सकता।

तीसरे श्लोक से भी उन्होंने यही बात सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि यदि ये सूत्र त्रिविक्रम के बनाए हुए न होते, तो वे 'त्रैविक्रमं शब्दानुशासनमिदम्' कभी न लिखते।

इन युक्तियों का खण्डन बड़े ही मार्मिक ढङ्ग से अपनी 'षड्भाषा चन्द्रिका' की भूमिका में पण्डित कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी जी ने किया है। उनकी युक्तियों का भी ऊपर के क्रम से ही संक्षेप में हम यहाँ उल्लेख करते हैं--

(१) 'प्रचक्ष्महे' शब्द से जो भट्टनाथ स्वामी त्रिविक्रमको सूत्रकार मानना चाहते हैं, यह ठीक नहीं। जिस दूसरे श्लोक का उन्होंने उल्लेख किया है, उसमें 'प्रचक्ष्महे' शब्द है ही नहीं। वह पूरा श्लोक यह है—

देश्यमार्षं च रूढत्वात् स्वतन्त्रत्वाच्च भूयसाम्।
लक्षणं वक्ष्यते तस्य सम्प्रदायोपबोधकैः॥

ऊपर दिए हुए पहले श्लोक में जो 'प्रचक्ष्महे' शब्द आया है, उससे यदि त्रिविक्रम का अभिप्राय अपने को सूत्रकार बतलाने का था, तो उन्होंने अपने ग्रन्थ को वृत्ति क्यों लिखा? उसके बादवाला ही श्लोक जो ऊपर दिया हुआ है, उसके 'वृत्तिर्यथार्थसिद्ध्यै' इत्यादि शब्दों से ग्रन्थ के वृत्ति होने की सूचना मिलती है। उसी के अनन्तर यह श्लोक आता है—

तद्भवतत्समदेश्यप्राकृतरूपाणि पश्यतां विदुषाम्।
दर्पणतयेयमवनौ वृत्तिस्त्रैविक्रमी जयति।

इस श्लोक में यह ग्रन्थ 'वृत्ति' ही कहा गया है।

(२) ऊपर दिए हुए श्लोकोंमें जो प्राकृत पदार्थ इत्यादि दूसरा श्लोक है, उसमें आए हुए 'निज सूत्र' इत्यादि शब्दों का श्रीयुत भट्टनाथ स्वामी को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बड़ा सहारा है; किन्तु उसका अर्थ उन्होंने कुछ भी नहीं समझा। 'निजसूत्र' से वे 'अपना बनाया हुआ सूत्र' ऐसा अर्थ समझते हैं। उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि जैनों में कुछ धर्म-ग्रन्थ सूत्र के नाम से प्रचलित हैं। उनमें से अधिकांश प्राकृत में लिखे गए हैं, अतः उनका 'निजसूत्र' इत्यादि से अपने जैन-धर्म ग्रन्थ की ओर ही संकेत है। अन्यथा 'अनुजिगमिषताम्' पद का भी क्या स्वारस्य होगा! ऊपर दिए हुए श्लोकों के पहले त्रिविक्रम ने यह श्लोक दिया है। उसमें सूत्र शब्द का दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता। वह श्लोक यह है—

अनल्पार्थः सुखोच्चारः शब्दः साहित्यजीवितम्।
वचः प्राकृतमेवेति मतं सूत्रानुवर्तिनाम्॥

इससे स्पष्ट विदित होता है कि 'निज' शब्द का 'अपना' (अर्थात् त्रिविक्रम का) अर्थ करना ठीक नहीं है। हुल्श साहब (Dr. Hultzsch) ने 'निज' शब्द का तामिल भाषानुसार 'उचित' 'वास्तविकता' अर्थ किया है; पर उसकी भी आवश्यकता नहीं है।

(३) तीसरे श्लोकमें 'त्रैविक्रमं शब्दानुशासनम्' इत्यादिसे श्री युक्त भट्टनाथ स्वामी ने त्रिविक्रम को जो सूत्रकार निर्धारित किया है, वह भी ठीक नहीं है। यदि शब्दानुशासन शब्द लिख देने से ही कोई सूत्रकार बन सके, तो यह पद पहले महर्षि पतंजलि को मिलना चाहिए; क्योंकि उनका महाभाष्य 'अथ शब्दानुशासनम्' से प्रारम्भ होता है।

ऊपर दी गई युक्तियों से स्पष्ट ही है इन सूत्रों के रचयिता त्रिविक्रम नहीं हैं। फिर वही पहला प्रश्न उपस्थित होता है कि इन सूत्रों के रचयिता कौन हैं। सच पूछिए तो इस प्रश्न का उत्तर लक्ष्मीधर ने अपनी 'षड्भाषा चन्द्रिका' में स्पष्ट दे दिया है। उनका एक श्लोक इस प्रकार है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाग्देवी जननी येषां वाल्मीकिर्मूलसूत्रकृत्।
भाषाप्रयोगा ज्ञेयास्ते षड्भाषाचन्द्रिकाध्वना ॥

उनके लिखने से यही प्रतीत होता है कि इनके रचयिता कोई 'वाल्मीकि' नामके व्यक्ति थे। लक्ष्मीधर को इस विषय में कुछ भी सन्देह नहीं था कि इन सूत्रों के रचयिता वाल्मीकि हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं या तो उन्होंने गुरु-परम्परा से यह बात सुनी होगी या स्वयं ग्रन्थ देखा होगा। यदि केवल सुनी सुनायी ही बात होती, तो वे 'वाल्मीकिः किल सूत्रकृत्' ग्रन्थों के सूचीपत्र में लिखते, न कि 'वाल्मीकिर्मूलसूत्रकृत्'। रावबहादुर रंगाचार्य के हस्तलिखित एक ऐसे ग्रन्थ का वर्णन आया है। इस ग्रन्थ में सूत्र वे ही हैं जिन पर त्रिविक्रम आदि ने टीका लिखी है; किन्तु इसमें दो ही अध्याय हैं। इसके आदि और अन्त के वाक्य ध्यान देने योग्य हैं।

इस ग्रन्थ का आरम्भ इन श्लोकों से होता है—

येन श्रीरामचरितमधिगम्य सुरर्षितः।
श्रीमद्रामायणं प्रोक्तं तस्मै वाल्मीकये नमः॥
येन निर्मलिता ना (गा) वः षड्भाषाकृतयो नृणाम्।
विमलैः सूक्तकतकैस्तस्मै वाल्मीकये नमः॥
स्वान्तस्य काव्ये गिरां च षण्णां सूत्रैर्नराणां कलुषं प्रपत्त्या।
पराकरोद् य प्रथमः कवीनां वाल्मीकिमेनं मुनिमानतोऽस्मि॥

और अन्त में यह लिखा हुआ है—

श्रीवाल्मीकीयेषु सूत्रेषु द्वितीयाध्यायस्य पादश्चतुर्थः।

यद्यपि इसमें रामायण के रचयिता ही इन प्राकृत सूत्रों के कर्त्ता माने गए हैं, तथापि यह बात विवादशून्य नहीं है। वाल्मीकीय रामायण के काल के सम्बन्ध में यदि युरोपीय विद्वानों के मत को भी मानकर हम चलें, तो भी महर्षि वाल्मीकि को इन प्राकृतों के काल तक खींच लाना असम्भव है। ऊपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहा गया है कि इन सूत्रों का हेमचन्द्र के सूत्रों के साथ बहुत कुछ सादृश्य है; किन्तु इस सादृश्य से पौर्वापर्य का ठीक-ठीक विचार करना दुष्कर है।

त्रिवेदी महाशय का तो मत है कि ये सूत्र हेमचन्द्र के बाद बने होंगे; क्योंकि ये सूत्र अधिक संक्षिप्त और ज्यादा अच्छे हैं। कुछ भी हो, रामायण के रचयिता वाल्मीकि इन सूत्रों के कर्त्ता नहीं हो सकते। किन्तु इतना निश्चित है कि वाल्मीकि नामक किसी व्यक्ति ने इनकी रचना अवश्य की। यह समझ में नहीं आता कि प्राचीनों में इन दोनों के एक होने का प्रवाद कसे प्रचलित हो गया। 'शम्भुरहस्य' नामक एक प्राचीन प्रचण्ड ग्रन्थ है। उसमें २६८ वाँ अध्याय बिलकुल प्राकृत की प्रशंसा में लिखा गया है। उस अध्याय में कहा गया है कि जिस तरह गार्ग्य, गालव, शाकल्य तथा पाणिनि आदि संस्कृत व्याकरण के आचार्य हैं उसी तरह वाल्मीकि प्राकृत व्याकरण के आचार्य हैं। उन्होंने संस्कृत रामायण की तरह प्राकृत रामायण भी लिखा है। उस ग्रन्थ से इस अंश का अविकल उद्धरण नीचे दिया जाता है—

को विनिन्देदिमां भाषां (प्राकृतों) भारतीमुग्धभाषितम्।
यस्याः प्रचेतसः पुत्रो व्याकर्ता भगवानृषिः॥
गार्ग्यगालवशाकल्यपाणिन्याद्या यथर्षयः।
शब्दराशेः संस्कृतस्य व्याकर्तारो महत्तमाः॥
तथैव प्राकृतादीनां षड्भाषाणां महामुनिः।
आदिकाव्यकृदाचार्यो व्याकर्ता लोकविश्रुतः॥
यथैव रामचरितं संस्कृतं तेन निर्मितम्।
तथैव प्राकृतेनापि निर्मितं हि सतां मुदे॥
पाणिन्याद्यैः शिक्षितत्वात् संस्कृती स्यात् यथोत्तमा।
प्राचेतसव्याकृतत्वात् प्राकृत्यपि तथोत्तमा॥
प्राकृतं चार्षमेवेदं यद्धि वाल्मीकिशिक्षितम्।
तदनार्षं भवेद्यो वै प्राकृतः स्यात् स एव हि॥

——*:——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२२) अपभ्रंश साहित्य

बहुत दिनों से यूरोपीय भाषातत्त्ववेत्ताओं की दृष्टि भारतकी प्राकृत भाषाओं की ओर लगी हुई है। सब प्रकारसे वे उनकी परीक्षा में निरत हैं। प्राकृत भाषाओंके ज्ञाताओंमें जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर पिशेल (Pischel) का नाम अग्रगण्य है। इनका प्राकृत भाषाका असीम ज्ञान उनके प्राकृत व्याकरण के प्रत्येक पृष्ठ से स्पष्ट ज्ञात होता है। इस व्याकरण का जर्मन नाम Grammatik der Prakrit Sprachen है। इस पुस्तक में पिशेलने १८९० तक मिले हुए अपभ्रंशमें लिखे गये ग्रन्थोंका भी यथेष्ट परिचय दिया है। उस समय से लेकर आजतक अनेक अपभ्रंश ग्रन्थोंका पता लगा है, कितने तो अब प्रकाशित हो गये हैं और कितने अब तक हस्तलिखित ही हैं; उन्हें प्रकाशन का सौभाग्य अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। इधर अपभ्रंश के अध्ययन ने अनेक भारतीय विद्वानों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया है। पूनाके डाक्टर गुणे भाषा विज्ञानके एक अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने पूर्वोक्त विषय पर प्रथम ओरियेन्टल कान्फ्रेन्स में एक लेख पढ़ा था; जिसमें इन्होंने अबतक मिले हुए अपभ्रंश ग्रन्थोंका विवरण दिया है। उसीका सारांश उपस्थित किया जाता है।

साधारण रूपसे निम्नलिखित ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में लिखे गये मुख्यतः सर्वत्र विख्यात हैं :—

(१) कालिदासके विक्रमोर्वशीय नाटक के चौथे अङ्कमें बहुतसे अपभ्रंश में रचित पद्य उपलब्ध होते हैं। श्रीयुत एस० पी० पण्डित तथा डाक्टर ब्लाकने इन पद्योंके विषयमें अत्यन्त सन्देह प्रकट किया था; परन्तु अब ऐसा सन्देह दूर हो गया है। हाँ, इन पद्योंका अच्छा संस्करण निकलना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) पिंगलके 'प्राकृत पिंगल' सूत्रमें भी अनेक अपभ्रंश पद्य मिलते हैं।

(३) हेमचन्द्रने अपने सिद्धहेम व्याकरण के अन्तिम अध्याय में केवल अपभ्रंश का व्याकरण ही नहीं दिया है; बल्कि उस समय के प्रचलित साहित्य से अनेक अपभ्रंश उद्धरण भी दिये हैं। सौभाग्य से इन सब पद्योंका हिन्दी अनुवाद स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'पुरानी हिन्दी' के नामसे नागरी प्रचारिणी पत्रिका के दूसरे वर्षके चौथे अङ्कमें विवरण के साथ दिया है।

(४) 'कुमारपाल' चरितके आठवें अध्याय में भी कुछ अपभ्रंश के उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

(५) सरस्वती-कण्ठाभरण, ध्वन्यालोक, दशरूपालोक आदि अनेक ग्रन्थों में इधर उधर बिखरे हुए अनेक अपभ्रंश पद्य मिले हैं।

इनके अतिरिक्त जो ग्रन्थ अब प्रकाशित हुए हैं उनकी सूची दी जाती है :—

१ (क) **भविसयत्त कहा**—यह ग्रन्थ बिलकुल अपभ्रंश में लिखा गया है। इसमें २२ सन्धि या परिच्छेद हैं तथा प्रत्येक सन्धि में १० से २० तक पद्य हैं। गायकवाड ओरियन्टल सीरीज (नं० २०) में यह ग्रन्थ सम्पादित हुआ है। इसके लेखक धनवाल या धनपाल (१० श०) हैं; इनका जन्म वैश्य वंश में हुआ था; इनके पिताका नाम माएसर तथा माता का धनश्री देवी है। प्राकृत साहित्य में प्रसिद्ध जैन विद्वान् धनपाल से इस अपभ्रंश कथाके लेखक सर्वथा भिन्न जान पड़ते हैं। यह धनपाल ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न हुए थे तथा उनकी रचना—ऋषभपंचाशिका, पाइअलच्छी कोश तथा तिलक मंजरी—सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और यह मुञ्ज के समय धारा नगरी की शोभा बढ़ाते थे।

(ख) **कुमारपाल प्रतिबोध**—सोमप्रभाचार्य का बनाया हुआ बृहत् ग्रन्थ अभी जिन विजयजीके सम्पादकत्व में बड़ोदा से प्रकाशित हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें कुमारपाल को जैन धर्म के सिद्धान्तों के समझाने के लिए प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कहानियां सुनाई गई हैं—जैसे जुआ खेलने से जो हानि होती है उसे दिखलाने के लिए नलकी कथा तथा व्यभिचार के दोष दिखाने के लिए प्रद्योतकी कथा वर्णित है। यह ग्रन्थ अधिकतर महाराष्ट्रीमें लिखा गया है परन्तु स्थान-स्थान पर कई अपभ्रंश पद्य भी सन्निविष्ट हैं तथा कुछ कथाएँ शुद्ध अपभ्रंश में लिखी गई हैं। ग्रन्थ की रचना ११८५ ई० में हुई थी। इस ग्रन्थ के समग्र अपभ्रंश पद्यों का अनुवाद नागरी प्रचारणी पत्रिका के द्वितीय वर्ष के दूसरे अङ्क में गुलेरीजीने प्रकाशित किया है। जिज्ञासु पाठक उसे पढ़ अपनी जिज्ञासा तृप्त कर सकते हैं।

(ग) दूसरा ग्रन्थ जिसमें कुछ अपभ्रंश है रत्नमन्दिरगणिका बनाया हुआ **'उपदेश तरङ्गिणी'** है। इस ग्रन्थमें प्राकृत तथा संस्कृतके उपदेशमय पद्य उद्धृत किये गए हैं। संस्कृत पद्य तो अधिकांशमें महाभारत तथा शतकसे लिये गये हैं और प्राकृत पद्य जैनोंके आगम ग्रन्थोंसे। इसमें २५ छन्द ऐसे हैं जो निश्चित रूपसे अपभ्रंश कहे जा सकते हैं; अन्य पद्योंमें पुरानी गुजरातीकी छाया दीखती है। यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है। इसके लेखक 'नन्दिरत्न' के शिष्य थे।

(घ) लक्ष्मणगणि के **'सुपासनाह चरियम्'** नामक ग्रन्थमें भी यत्रतत्र अपभ्रंश पाया जाता है। यह ग्रन्थ हरगोविन्द दासकी सम्पादकतामें काशीसे प्रकाशित हुआ है।

इन प्रकाशित ग्रन्थोंके अतिरिक्त ऐसे अनेक हस्तलिखित जैन ग्रन्थ हैं जो बिलकुल अपभ्रंशमें ही लिखे गये हैं—

२ (क) महेश्वर सूरिकी **'संयम मंजरी'**—यह ग्रन्थ भंडारकर इंस्टिट्यूट के पुस्तकालयमें हस्तलिखित रूपमें है। यह पूर्णतया अपभ्रंशमें ही रचित है। इसमें ३५ पद्य शुद्ध दोहे हैं; जिनकी भाषा शुद्ध अपभ्रंश है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरणार्थ :—

संजमु सुर सिद्धिहिं धुम्मड, संजमु मोक्ख दुवारु।
जेंहि न संजमु मणि धरेड, तह दुत्तर संसारु॥

शान्ति सूरिके कहनेपर यह प्रति १५०५ ई० में लिखी गई थी; जिससे जान पड़ता है कि महेश्वर सूरीका समय सोलहवीं सदीके उधरका ही है।

(ख) इसकी विस्तृत टीका हेमहंस सूरिके शिष्यने लिखी है, जो अपभ्रंश भाषाके लिये अत्यन्त महत्त्व की है। टीकाकी हस्तलिखित प्रति भी १५०५ ई० में लिखी गई है। इसमें अनेक लम्बे उद्धरण अपभ्रंश भाषामें दिये हुए हैं; बहुतसे पद्य तो सुभाषितके ढंगपर हैं, जो टीकाकारके समयमें सर्वत्र प्रसिद्ध थे। उदाहरणके लिये 'किये हुए कर्मका फल सबको भोगना पड़ता है' इस विषयपर नीचेका पद्य उद्धृत है :—

रासहु कंधि चड़ावि अइ लब्भइ लत्त सहस्स।
आपहठो करि कम्मडां हिया विसूरहि किस्स॥

देखकर भी जो न तो प्रसन्न होता है और न कुशल ही पूछता है, उसके पास मनुष्यको कभी न जाना चाहिये—इसी अर्थके द्योतक इस दोहे पर दृष्टि डालिये। कितना सुन्दर है :—

दिट्ठइं जो नवि आलवइ कुसल न पुच्छइ वत्त।
तसुतणइ नवि जाइई रे हियडा नीसत्त॥

इस टीकामें भी अनेक संस्कृत ग्रन्थोंसे—महाभारत, वायु पुराण आदिसे—अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं।

महत्त्व

इस अपभ्रंश साहित्यका महत्त्व भारतकी वर्तमान भाषाओंके लिये विशेष है। संस्कृतसे आधुनिक भाषाओंकी उत्पत्ति कैसे हुई? इसका पूरा ज्ञान बिना इस साहित्यके नहीं हो सकता; सच पूछिये तो यह साहित्य भाषाओंकी विकाश-शृंखलाकी एक आवश्यक कड़ी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) इनसे पता चलता है कि पुरानी हिन्दी तथा पुरानी गुजरातीके मूल शब्द तथा विभक्तियां कैसी होती थीं। उदाहरणार्थ--अल्पार्थक 'ड' प्रत्यय यथा हियडा, भूतकालके अर्थमें 'उ' प्रत्यय यथा गयउ (गतः), कर्त्ताके एक वचनमें उ या ऊ प्रत्यय आदिको देखकर प्राचीन हिन्दी तथा प्राचीन गुजरातीके शब्द अकस्मात् याद आ जाते हैं।

(२) इस साहित्यसे अपभ्रंशके व्याकरणके विषयमें भी अनेक ज्ञातव्य बातें जानी जाती हैं। जिन रूपोंको न तो हेमचन्द्रने अपने व्याकरणमें लिखा है और न पिशेलने, ऐसे अनेक शब्दरूप दृष्टिगोचर होते हैं—

(क) हेमचन्द्रने लिखा है कि अकारान्त शब्दोंके पुलिंग कर्त्ता एकवचनमें उ या ऊ प्रत्यय लगता है; परन्तु पूर्वोक्त ग्रन्थोंकी आलोचनासे यह भी जान पड़ता है कि 'ओ' प्रत्यय भी हुआ करता है।

(ख) हेमचन्द्रके अनुसार अकारान्त शब्दोंके तृतीया एकवचनके लिये 'आहिं' या 'एहिं' प्रत्यय जोड़ा जाता है, परन्तु कभी 'इहिं' भी अवश्य जोड़ा जाता था यथा—पुण्णिहिं (पुण्यसे), कम्महिं (कर्मसे)। सप्तमी एकवचनके 'एति' के स्थानमें भी 'इहिं' होता है।

(ग) सप्तमीके एकवचनमें 'म्मि' प्रत्यय भी होता है।

(घ) सम्बन्धार्थक 'तण' के स्थानमें 'घेर' भी होता है।

(ङ) 'भविष्यति' के स्थानसे 'होसइ' के साथ-साथ 'होहि' रूपका भी पता लगता है।

(च) अपभ्रंशमें भाववाचक प्रत्यय 'त्तणं' या 'प्पाणं' है, परन्तु यहां इसका रूप 'प्पुण' भी मिलता है तथा कभी-कभी 'त्त' भी जोड़ा जाता है।

(छ) प्रेरणाके अर्थमें 'आल' प्रत्यय भी जोड़ा जाता है। हेमचन्द्र में 'आद्' जोड़नेकी ही व्यवस्था है यथा—दिक्खालमि (दर्शयामि)।

अपभ्रंश का साहित्य बहुत बड़ा है, परन्तु अभी तक वह प्रकाश में नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आया है। कतिपय ग्रन्थ हो अब तक प्रकाशित हो पाये हैं और इनसे उसके साहित्य की महत्ता का परिचय हमें मिल सकता है। अपभ्रंश में तीन प्रकार के साहित्यग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं—(१) दोहा-साहित्य, (२) खण्ड-काव्य, (३) महाकाव्य। अपभ्रंश के प्राचीन ग्रन्थ 'दोहा' छन्द में ही निबद्ध हैं। इस छन्द की रचना दो प्रकार की है—एक, भावात्मक मुक्तक पद्य और दूसरा, सन्तों द्वारा रचित आध्यात्मिक ग्रन्थ। पहले प्रकार में शृंगार, वीर, करुण आदि रसों से ओतप्रोत रचनायें हैं, दूसरे प्रकार में अध्यात्म चिन्तन तथा उपदेश की प्रधानता है। इस द्वितीय प्रकार के प्रधान ग्रन्थ हैं—जोइन्दु रचित 'परमप्पयासु' और 'योग सार' (छठीं शताब्दी); रामसिंहमुनि रचित पाहुड दोहा (प्राभृत दोहा—१० म श०); देवसेन कृत सावयधम्म (श्रावक धर्म) दोहा (१० वीं शतक) और सुप्रभाचार्य कृत 'वैराग्यसार'। वज्रयानी सिद्धों की रचनायें भी दोहों में हैं और मगध की अपभ्रंश भाषा में रचित हैं।

अपभ्रंश में खण्ड काव्य

इस काव्य प्रकार में स्तुति, संलाप, आख्यान तथा कथानक पाये जाते हैं। 'सोमप्रभ' रचित 'कुमारपाल प्रतिबोध' (सं० १२४१) में ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं। इनमें 'जीवमनः करणसंलाप कथा' एक आध्यात्मिक रूपक है। रइधू कविकृत 'दहलक्खण जयमाल' (दशलाक्षणिक जयमाल) तथा 'सोलह कारण जयमाल' जैनधर्म के सिद्धान्त-प्रतिपादक ग्रन्थ हैं। अब्दुल-रहमान नामक मुसलमान कवि के द्वारा रचित 'संदेश रासय' ('सन्देश रासक') मेघदूत के आदर्श पर लिखा गया दूत-काव्य है।

अपभ्रंश में महाकाव्य

अपभ्रंश का यह अंग बड़ा ही पुष्ट तथा सम्पन्न है। ये महाकाव्य सचमुच कविप्रतिभा के उत्कृष्ट निदर्शन हैं। वर्णन की रीति बड़ी ही सजीव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा प्रभावशालिनी है। ग्रन्थों का विस्तार भी अपेक्षाकृत अधिक है। (१) सब से प्राचीन महाकाव्य है स्वयंभू कवि रचित 'पउम चरिउ' अर्थात् पद्म चरित। यह जैनियों का 'रामायण' है। इनकी दूसरी रचना है—'हरिवंस पुराणु' जिसमें महाभारत की कथा विस्तार से वर्णित है। इनकी कविता बड़ी ही सुन्दर, प्रभावशाली तथा हृदयावर्जक है। कवि के पिता का नाम था मारुतदेव तथा माता का पद्मिनी। ये दाक्षिणात्य प्रतीत होते हैं। इनके कनिष्ठ पुत्र 'त्रिभुवन स्वयंभू' भी एक महान् कवि थे। उन्होंने अपने पिता की कृतियों में दोष देखकर उनमें नये सर्ग स्वयं जोड़ दिये हैं जिन से पूर्वोक्त ग्रन्थ पिता तथा पुत्र दोनों की सम्मिलित रचनायें हैं। इनका समय ७३४ वि० से ८४० वि० के बीच माना जा सकता है†।

(२) पुष्पदन्त—स्वयंभू के अनन्तर अपभ्रंश के महान् कवि ये ही हैं। ये पहले शैवमतानुयायी ब्राह्मण थे, पीछे जैनमत में दीक्षित हुए। इनके तीन ग्रन्थ हैं और तीनों प्रकाशित हैं—जसहर चरिउ (यशोधर चरित), णायकुमार चरिउ (नागकुमार चरित) तथा महापुराणु इन तीनों में अन्तिम ग्रन्थ जैन धर्मानुयायी ६३ महान् व्यक्तियों के जीवन चरित के विषय में है। इस ग्रन्थ का श्लोक परिमाण बीस हजार के लगभग है। इनके आश्रय दाता थे—भरत तथा नन्न। ये दोनों पिता-पुत्र थे और राष्ट्रकूट वंशी कृष्णराज (तृतीय) के मन्त्री थे। इनका समय विक्रमी नवम शतक का मध्यभाग है। आदिम दोनों खण्डकाव्य हैं जो प्रसिद्ध जैन आख्यानों के आधार पर निर्मित हैं‡। ये अपभ्रंश के उच्च कोटि के महाकवि हैं।

---

†विशेष के लिए देखिए—नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास पृ० ३७०—३८७,

‡वही पृ० ३०१—३२५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) **मुनि कनकामर**—इनके काव्य का नाम है—**करकंड चरिउ** जिसमें करकण्डू राजा का चरित्र वर्णित है। यह सुन्दर तथा अपेक्षा-कृत सरल काव्य है।

(४) **धनपाल**—इनके काव्य का नाम है—भविसयत्त कहा (भविष्यद् दत्त कथा)। इस में एक सेठ की भविष्यद्दत्त का चरित्र वर्णित है। इसके पराक्रम तथा वीरता की कथायें उत्साहवर्धक हैं। कविके पिता का नाम महेश्वर तथा माता का धनश्री था। 'धक्कड़' (धाकड़) नामक वैश्य वंश में उत्पन्न था। वर्णन की दृष्टि से यह महाकाव्य बड़ा ही सुन्दर है।

(५) **हरिभद्र**—इन का 'णेमिणाह चरिउ' (नेमिनाथ चरित) उत्कृष्ट परन्तु कुछ क्लिष्ट काव्य है। इसकी रचना 'रड्डा' छन्द में हुई है। रचना-काल—१३ विक्रमी।

(६) **विद्यापति**—इनकी 'कीर्तिलता' अपभ्रंश की एक विशिष्ट रचना है। इसमें 'कीर्तिसिंह' नामक नरपति का यश वर्णित है। रचना का समय १४ शतक। अबतक निर्दिष्ट काव्य ग्रन्थ जैन कवियों के द्वारा निर्मित थे तथा प्रधानतया धार्मिक थे, परन्तु यह ग्रन्थ ऐतिहासिक व्यक्तिके विषय में ब्राह्मण कविकी रमणीय कृति है।

अप्रकाशित अपभ्रंश काव्यों की संख्या भी कम नहीं है। इन ग्रन्थों के प्रकाशन से जनता का विशाल साहित्य हमारे सामने उपस्थित हो जायगा और साहित्य रसिकों के मनोरञ्जन तथा ज्ञानवृद्धि की एक बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत हो जायगी।*

---

* द्रष्टव्य डा० हीरालाल जैन—'अपभ्रंश भाषा और साहित्य (नागरी-गरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, अंक ३–४, पृ० १००—१२१।) उपर्युक्त विवरण के लिए हम इस लेखक के विशेष ऋणी हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

97

वाल्मीकिविद्यापीठपुस्तकालयः

प्रत्यावर्तनतिथिः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF
Acc. No. 128
Class No 891:2109 Book No U.P.A.
Author उपाध्याय, बलदेव
Title कवि और काव्य

Due on	Borrower's Name	Returned on

891:2109
UPA
128
महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय
बाल्मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu